हिंदी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय की पीएच.डी.(हिंदी)
की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशकः

डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय
सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय
जांट-पाली, महेन्द्रगढ़।

शोधार्थीः

रीना यादव
अनुक्रमांक- 1353

हिंदी विभाग
भाषा, भाषा विज्ञान, संस्कृति और विरासत संस्थान
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, जांट-पाली (महेन्द्रगढ़)- 123029

पंजीयन संख्या- CUH-28/2011 **वर्ष- 2015**

घोषणा-पत्र

मैं, **रीना यादव** यह घोषणा करती हूँ कि डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय के शोध निर्देशन में ''**हिंदी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान**'' विषय पर पीएच.डी. (हिन्दी) की उपाधि प्राप्ति के लिए शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत कर रही हूँ। मेरा शोध कार्य पूर्णतः मौलिक है और यह अन्यत्र अप्रकाशित है। यह पूर्णतः अथवा आंशिक रूप में किसी भी संस्था अथवा विश्वविद्यालय में किसी भी उपाधि के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है। इस शोध-प्रबन्ध के लेखन में प्रयुक्त संदर्भ पुस्तकों का यथास्थान उल्लेख कर दिया गया है।

शोधार्थीः

रीना यादव
अनुक्रमांक- 1353
पंजीयन संख्या- CUH-28/2011
हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय
जांट-पाली, महेन्द्रगढ़।

<u>प्रमाण - पत्र</u>

प्रमाणित किया जाता है कि **रीना यादव** ने मेरे निर्देशन में पीएच.डी. (हिंदी) उपाधि हेतु **''हिंदी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान''** शीर्षक पर शोधकार्य किया है। यह शोध कार्य इनके मौलिक प्रयास का प्रतिफलन है।

मैं शोध प्रबन्ध की मौलिकता और प्रतिपादित तथ्यों की उपयोगिता को दृष्टिगत कर इसे मूल्यांकन हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

शोध निर्देशकः

डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय
सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय
जांट-पाली, महेन्द्रगढ़।

आभार

आदरणीय शोध निर्देशक डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय का धन्यवाद करने की क्षमता मेरे शब्दों में नहीं है, जिन्होंने इस कार्य को पूर्ण करने की प्रेरणा एवं सहयोग मुझे दिया। मैं सदा आभारी रहूँगी डॉ. कमलानन्द झा का, जिन्होंने मुझे यह विषय चुनने की प्रेरणा दी और समय-समय पर कार्य करने का हौंसला दिया। मैं धन्यवाद करती हूँ डॉ. रामनरेश मिश्र का, जिन्होंने इस कार्य को आगे बढ़ाने में मेरी सहायता की। मैं धन्यवादी रहूँगी विभागीय शिक्षक डॉ. अरविन्द तेजावत एवं डॉ. अमित मनोज का, जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन किया। डॉ. रमेश कुमार अध्यक्ष हिंदी विभाग श्री वाष्णैव विद्यालय, अलीगढ़ (यू.पी.) का आभार मैं शब्दों में व्यक्त कर पाऊँगी क्योंकि जिन्होंने इतनी दूरी होने पर भी जो सहयोग दिया है उसकी मैं सदा ऋणी रहूँगी। मैं धन्यवाद करती हूँ मेरे सहपाठियों कृष्णा आर्य, प्रीति यादव, मनीषा ठाकुर, रईस खान, कविता और एम.फिल छात्र प्रदीप कुमार का जिन्होंने हर समय मेरा सहयोग किया।

मैं नमन करती हूँ अपने आदरणीय माता-पिता का और सास-ससुर का जिन्होंने आरंभ से लेकर अंत तक मुझे स्नेह, दुलार एवं सहयोग दिया जिसके बिना इस शोध-प्रबंध की पूर्णता संदिग्ध थी। शोध कार्य की सम्पन्नता हेतु मैं अपने पति नरेश कुमार के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने में असमर्थता पाती हूँ, क्योंकि यदि उनका सहयोग एवं प्रेरणा नहीं मिली होती तो यह कार्य असंभव था। अपनी दोनों पुत्रियों खुशी और निष्ठा के अमूल्य वात्सल्य के क्षणों में कटौती करके इस कार्य को सम्पन्नता प्रदान की है। इसलिए उनको अपार स्नेह देती हूँ। अपने परिवार के अन्य सदस्यों के साथ-साथ भाई-भाभी को भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने विशेष सहयोग दिया और इस कार्य को करने में सहयोग दिया। साथ-साथ हरियाणा संस्कृति एवं इतिहास अकादमी एवं बाबू बालमुकुंद पत्रकारिता साहित्य संरक्षण परिषद् की विशेष ऋणी रहूँगी जिन्होंने मुझे शोध से संबंधित सभी रचनाएँ उपलब्ध कराई।

साथ-साथ हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय के सभी शिक्षण एवं गैर शिक्षण कर्मचारियों का जिन्होंने मुझे अमूल्य सहयोग दिया।

अन्त में मैं जितेन्द्र शर्मा, शर्मा कम्प्यूटर्स, रेवाड़ी का भी आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने इस शोधग्रन्थ को सही व सुन्दर ढंग से कम्प्यूटर पर तैयार करने में सहायता की है।

धन्यवाद सहित।

रीना यादव
पीएच.डी. (हिंदी)

भूमिका

तमाम बहसों और विवादों के बावजूद हिन्दी नवजागरण की अवधारणा को अभी तक सर्वमान्य स्वीकृति नहीं मिली है। भारतीय नवजागरण की शुरूआत के संकेत काफी पहले से मिल जाते हैं। 19वीं सदी के जागरण काल में पराधीन भारतीय समाज में एक चेतना आई थी। यह चेतना नवीन नहीं थी। प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न धर्म और संस्कृतियाँ आती-जाती रही है। विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय से चेतना आई है। रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है:- ''भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई। पहली क्रान्ति आर्यों के आने से हुई, दूसरी क्रान्ति तब हुई जब गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने धर्म के विरूद्ध विद्रोह छेड़ा। तीसरी क्रान्ति इस्लाम के आने से हुई और चौथी क्रान्ति यूरोपीय शासकों के आने से हुई।''

भारतीय नवजागरण को नई अवस्थाओं से गुजरना पड़ा है। भारतीय नवजागरण बंगाल से आरम्भ होता हुआ, महाराष्ट्र की सीमाओं को छूता हुआ, दक्षिण के माध्यम से उत्तर में प्रवेश करता है। भक्ति आन्दोलन जिसे लोकजागरण कहा जाता है, नवजागरण का मुख्य अंग है। भक्ति आन्दोलन सांस्कृतिक उत्थान था। लोकभाषाएं अस्तित्व में आ चुकी थी। कला के क्षेत्र में नए परिवर्तन हो रहे थे। दक्षिण में ब्राह्मण विरोध चल रहा था। मंदिरों में शूद्रों के प्रवेश को लेकर आन्दोलन हो रहे थे। इसके लिए आवश्यकता थी, अंग्रेजी भाषा के ज्ञान की। अंग्रेजी भाषा के ज्ञान द्वारा बुद्धिजीवियों ने अपनी और विदेशी संस्कृति की तुलना की। विदेशी संस्कृति के सकारात्मक प्रभाव ग्रहण करने की वकालत की और इस दिशा में कार्य करना आरम्भ किए। ब्रहा समाज, आर्य समाज, प्रार्थना सभा, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि संस्थाओं ने समाज सुधार की दिशा में आंदोलन छेड़ा।

भारतीय नवजागरण की अनेक विवादास्पद स्थापनाओं में एक स्थापना हिन्दी नवजागरण की रही है। बहुत से विचारकों और चिंतकों का मानना है कि हिन्दी

नवजागरण जैसी कोई अवधारणा का कोई महत्व नहीं है और न ही अवधारणा भारतीय नवजागरण से जुड़ी है। सर्वप्रथम डॉ. रामविलास शर्मा ने 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में हिन्दी नवजागरण की व्यापक अवधारणा प्रस्तुत की है। हिन्दी नवजागरण को हिन्दी प्रदेश से जोड़ा और हिन्दी प्रदेश को 1857 की क्रान्ति से। हिन्दी नवजागरण का केन्द्र उन्होंने 1857 के विद्रोह को माना है। उन्होंने हिन्दी नवजागरण को चार चरणों में विभक्त किया है पहला 1857 का विद्रोह, दूसरा भारतेन्दु युग, तीसरा महावीर प्रसाद द्विवेदी युग और चौथा निराला का युग और उनके बाद का साहित्य। 1857 के विद्रोह को नवजागरण का केन्द्र मानने का मुख्य कारण यह था कि इस विद्रोह का प्रभाव समाज, साहित्य, संस्कृति, आचार-विचार, राजनीति, विदेश नीति आदि पर जितना पड़ा उतना अन्य विद्रोहों का नहीं। भारतीय नवजागरण का स्वरूप जहाँ बंगाल में बुद्धिवाद के रूप में दिखाई देता हैं, वहीं महाराष्ट्र में सुधारवाद के रूप में, दक्षिण में जहाँ ब्राह्मण विरोध होता है, वहीं हिन्दी पट्टी में इसका राष्ट्रीय स्वरूप निर्धारित होता है। नवजागरण को सिर्फ सुधारवादी परम्परा से जोड़ कर न देखा जाए, नवजागरण जातीय निर्माण से भी जुड़ा है। यह जातीय निर्माण हिन्दी प्रदेश के नवजागरण में दिखाई पड़ता है। इसकी सामंत विरोधी दृष्टि इसकी मुख्य विशेषता रही है। 1857 के विद्रोह का असर भारतेन्दु युगीन साहित्य पर प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता है। इसीलिए नवजागरण और आधुनिकता का मिश्रण हम भारतेन्दु युगीन और उनके बाद वाले साहित्य में पाते है। नई भाषा, नया विषय, नई विधाएं और नया उत्साह इस युग के साहित्य में दिखाई देता है। अंग्रेजों की शक्ति और विरोध का मिला-जुला स्वरूप आधुनिक काल के आगमन के साथ आरम्भ हो जाता है। भारतेन्दु को अपना आदर्श मानते हुए प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, प्रेमधन और बालमुकुंद गुप्त जैसे लेखकों ने नवजागरण की धारा को तीव्रता से आगे बढ़ाया। परन्तु वर्तमान में हिन्दी नवजागरण से सम्बन्धित लेखकों की रचनाओं की सम्पूर्ण सामग्री प्रकाश में नहीं

आने से विवाद लम्बे चले आ रहे है। नवजागरण से सम्बन्धित सामाजिक, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक परिप्रेक्ष्य का मानचित्र स्पष्ट रूप से उभर कर सामने नहीं आया है। जिससे हिन्दी नवजागरण पर वाद-विवाद बढ़ते चले जा रहे हैं। राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य पर सही मूल्याकंन होने पर भी हिन्दी नवजागरण का वास्तविक स्वरूप सामने आएगा। नवजागरण कालीन आधी से भी अधिक सामग्री दुर्लभ पत्र-पत्रिकाओं में दबी पड़ी है, जिन्हें खोज कर निकालने पर ही हिन्दी नवजागरण का उजला रूप हमारे सामने आएगा।

हिन्दी नवजागरण की एक ऐसी कड़ी के रूप में बालमुकुंद गुप्त का नाम लिया जाता है। भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की संधि बेला में कार्य करने वाले गुप्त जी की रचनाएं दो युगों का प्रतिनिधित्व करती हैं। जितनी सच्चाई इनकी पत्रकारिता में थी, उतना ही उत्साह इनकी रचनाओं में पाया जाता है। निर्भीकता, स्पष्टवादिता और स्वाभिमानता उनके व्यक्तित्व के मुख्य गुण थे। जो बात उनके दिल में रहती थी, वही कलम से भी निकलती थी। आरम्भ से ही 'उर्दू' में 'शाद' उपनाम से कविता करते थे। उर्दू के प्रतिष्ठित अखबारों में कार्य करने के पश्चात हिन्दी की तरफ आकर्षित हुए। हिन्दी और नागरी के महत्व को स्वयं समझा और अपनी रचनाओं के माध्यम से दूसरों को भी समझाया। दर्जनों लेख, आलोचनाएँ और निबंध हिन्दी भाषा के समर्थन में लिखी। परन्तु विशेष बात यह रही कि इन्होंने कभी भी उर्दू अथवा मुसलमानों का विरोध नहीं किया। हिन्दी और उर्दू को गुप्त जी सगी बहने कहा करते थे। स्वयं कट्टर सनातन हिन्दू धर्मी थे, परन्तु अन्यों धर्मो का विरोध और अपने धर्म का अंध समर्थन कभी भी नहीं किया।

इनकी रचनाओं में एक ही भाव झलकता है। साम्राज्यवाद का तीखा विरोध और मानवता के प्रति संवेदना। हिन्दी के जिस जातीय स्वरूप की संकल्पना डॉ. राम विलास शर्मा ने की है, वह इनकी भाषा में दिखाई पड़ती है। 'शिवशंभु के चिट्ठों' के

माध्यम से इनकी अंग्रेजी राज की बखियां उधेड़ी थी, जिसकी गूंज आज भी सुनाई देती है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ हुआ 'अनिस्थरता विवाद' और 'वेकंटेश्वर समाचार' के संपादक हुआ 'शेष विवाद' गुप्त जी की निर्भीकता एवं विलक्षण प्रतिभा को दर्शाता है। आज हम जिस हिन्दी भाषा का आधुनिक स्वरूप पाते हैं, उसकी आरम्भिक रूप हमे गुप्त जी की भाषा में दिखाई देता है। सीधी, सरल, विनोदप्रिय, मुहावरेदार, उर्दू-फारसी के सरल शब्दों से मिश्रित भाषा का आविष्कार करने का श्रेय गुप्त जी को जाता है। गुप्त जी के इसी महत्व को रेखांकित करने के लिए यह शोध कार्य किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य पाँच अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय 'नवजागरण की अवधारणा' में नवजागरण का अर्थ, व्युत्पत्ति और परिभाषा दी गई है। यूरोपीय नवजागरण का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, भारतीय नवजागरण के संदर्भ में समझाया गया है। यूरोपीय पुनजागरण किन परिस्थितियों में आया और भारतीय नवजागरण से उसके बुनियादी अंतर क्या है? दोनों की सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में क्या समानताएँ और असमानताएँ रही है। इन तत्वों पर प्रकाश डाला गया है। भारत में नवजागरण का विकास किन परिस्थितियों में हुआ, कैसे नवजागरण लोकजागरण से गुजरता हुआ, 1857 की क्रान्ति के प्रभाव ग्रहण करता हुआ, भारतेन्दु युग तक जा पहुँचता है और द्विवेदी युग में कैसे उसका विकास होता है? भारतीय नवजागरण की भूमिका में कुछ प्रेरक तत्वों की भूमिका रही है जैसे- अंग्रेजों का आगमन, ईसाई मिश्नरियों की स्थापना, प्रेस और पत्रकारिता का उद्‌भव, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनुवाद कार्य सुधारवादी आन्दोलन, 1857 का विद्रोह ओर मुस्लिम नवजागरण। इन तत्वों पर प्रकाश इस अध्याय में डाला गया है। अंत में हिन्दी नवजागरण और उसका 1857 की क्रान्ति, भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग से उसका सम्बन्ध दिखाया गया है।

दूसरा अध्याय 'हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु युग' चार भागों में विभक्त है। प्रेस, पत्रकारिता, नया पाठक वर्ग और हिन्दी समाज पर प्रभाव। प्रेस और पत्रकारिता का नवजागरण में मुख्य स्थान रहा है। नवजागरण और पत्रकारिता एक-दूसरे के पूरक है। प्रेस की स्थापना में जिन कारकों की भूमिका रही जैसे पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज। इस अध्याय में इनकी चर्चा की गई है। प्रेस की स्थापना भारत में कैसे हुई? हिके गजट ने प्रेस को प्रचारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पत्रकारिता के प्रारम्भ में उसकी चर्चा विस्तार से की गई है। अंग्रेजी पत्रकारिता के बाद देशी, फिर हिन्दी पत्रों का विकास होने लगा। 1850 के बाद की पत्रकारिता में नयी चेतना आने लगी थी। पत्रकारिता के स्वरूप में परिवर्तन आने लगा था। अंग्रेजों का पत्रों पर विभिन्न एक्ट लगाना, फिर भी पत्रकारिता ने नवजागरण की गति को तीव्रता दी। हिन्दी के माध्यम से एक नया पाठक वर्ग तैयार हो रहा था, जो स्वदेशी संस्कृति को बचाने के लिए तैयार था। हिन्दी के माध्यम से नई जातीय संस्कृति का विकास हो रहा था, जोकि सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान के लिए प्रयासरत थी। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के योगदान की चर्चा इस अध्याय में की गई है।

तीसरा अध्याय 'बालमुकुंद गुप्तः व्यक्तित्व और प्रतिरोध का स्वर' बालमुकुंद गुप्त के जीवन वृत और नवजागरण से उनके सम्बन्ध को दर्शाता है। हिन्दी नवजागरण और बालमुकुन्द गुप्त का सम्बन्ध किन अवस्थाओं में हुआ है? उनकी किन विशेषताओं के कारण उनका नाम नवजागरण के निर्माताओं में आता है? यह अध्याय चार भागों में विभक्त है। बालमुकुन्द गुप्तः एक परिचय, शिवशंभु के चिट्ठे में जातीय चेतना, भारत मित्र में सामाजिक जागरण और भाषा चिंतनः अनास्थिरता विवाद। 'शिवशंभु के चिट्ठे' और 'भारतमित्र' दोनों ही गुप्त जी की ख्याति का आधार रहे है। 'शिवशंभु के चिट्ठे' में जिस जातीय चेतना की अभिव्यक्ति हुई है, वह मुख्यतः साम्राज्यवाद विरोधी है। और साम्राज्यवाद विरोध नवजागरण का एक पहलू है। सामाजिक सुधार भी नवजागरण की परिधि में आते हैं। समाचार पत्र एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा यह

चेतना सम्पूर्ण समाज तक पहुँचती है। भारतमित्र ने सामाजिक सुधार जो कार्य किए थे, उनका वर्णन इस अध्याय में है। भाषा हमारी सामाजिक संस्कृति का अंग रही है। भाषा सम्बन्धी जागरण को भी इसी परिधि में लाया गया है। जिन विवादों के कारण गुप्त जी और भारतमित्र को ख्याति मिली थी, उनमें से एक 'अनस्थिरता विवाद' भी रहा है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे युग प्रवर्तकों से टक्कर लेने का साहस हर किसी के बस में नहीं था। परन्तु गुप्त जी अंत तक अपनी बात पर कायम रहे और 'आत्माराम' के नाम से कई लेख लिखकर 'द्विवेदी जी' को उत्तर दिया। इस चर्चा-परिचर्चा में बहुत से विद्वानों ने भाग लिया। हिन्दी के इस ऐतिहासिक विवाद ने बहुत सी भ्रांतियों को दूर किया। गुप्त जी की विलक्षण प्रतिभा का लोहा उस युग के अन्य विद्वानों ने भी माना था।

चतुर्थ अध्याय 'हिन्दी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान' गुप्त जी के साहित्य का महत्व प्रतिपादित करता है। स्वाधीनता की चेतना, अंग्रेजी राज की आलोचना हिन्दी की जातीय चेतना के निर्माण में योगदान, हिन्दी गद्य का निर्माण और हिन्दी का आलोचनात्मक विवेक इस अध्याय के मुख्य पहलू है। गुप्त जी के साहित्य का विभिन्न दृष्टिकोणों से अवलोकन किया गया है। गुप्त जी की रचनाओं में विदेशी शासन के प्रति आक्रोश था। स्वाधीनता का भाव उनमें विधमान था। यह स्वाधीनता की चेतना उनके साहित्य में भी परिलक्षित होती है। विदेशी शासन को उखाड़ने का भाव और एक जुट होकर अंग्रेजों का विरोध, यह परिणिती गुप्त जी की रचनाओं में पाई जाती है। विभिन्न कविताओं, निबन्धों, लोकगीतों और चरित लेखों के माध्यम उनका यह विरोध स्पष्ट झलकता है। हिन्दी की जिस जातीय चेतना के निर्माण की बात रामविलास शर्मा करते हैं, वह हमें गुप्त की रचनाओं में दिखाई देती है। हिन्दी और उर्दू की एकता, हिन्दी को सरल-सुगम बनाने के लिए और नागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि बनाने के लिए वे कितने प्रयत्नशील थे, यह उनकी हिन्दी और नागरी सम्बन्धी लेखों में देखने को मिलता है। 'हिन्दी भाषा का इतिहास' लिखने का प्रयास उन्होंने

किया, परन्तु उनकी मृत्यु के कारण यह पुस्तक पूरी नहीं हो चुकी। गुप्त जी की आलोचनात्मक रचनाओं को पढ़ने से आलोचना के सिद्धान्तों का ज्ञान होता है। मित्र अथवा शत्रु दोनों की कृतियों में बिना किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त हुए बिना उन्होंने अपने आलोचनात्मक विवेक का परिचय दिया है।

पंचम अध्याय 'बालमुकुंद की कविताई एवं अन्य लेखन' तीन भागों में विभक्त है। पहला भाग बालमुकुंद गुप्त का काव्य, दूसरा भाग 'संपादित एवं अनूदित रचनाएँ और तीसरा भाग 'चरित चर्चा एवं इतिहास दृष्टि' है। बालमुकुंद गुप्त को प्रायः एक पत्रकार एवं निबंधकार के रूप में जाना जाता है, परन्तु उनकी कविताओं की चर्चा नहीं होती। परन्तु उनके काव्य को पढ़ने के पश्चात ज्ञान हुआ उसमें युगानुसार नवीनता है। जीवन संघर्ष और समकालीन परिस्थितियाँ तो साथ-साथ चल रही थी शिल्प की दृष्टि से नए प्रयोग हो रहे थे। गुप्त जी स्वयं अपनी कविताओं को तुकबन्दी कहा करते थे। 'अनुवाद एवं संपादन कार्य' में उन पुस्तकों का ब्यौरा है जो गुप्त जी ने विभिन्न भाषाओं जैसे बांग्ला, उर्दू संस्कृत आदि से अनुवादित की थी। संपादित और मौलिक पुस्तकों में रास पंचाध्यायी और भंवर गीत, हरिदास, खिलौना, खेल-तमाशा, सर्पाधान चिकित्सा, हिन्दी भाषा, शिवशंभु के चिट्ठे, चिटठे और खत, रत्नावली नाटिका आदि आती है। मडेलभगिनी, सती प्रताप और जहाँगीरनामा की प्रतियाँ उपलब्ध नहीं होने के कारण इन पर चर्चा विस्तार से नहीं की गई। गुप्त जी द्वारा लगभग 22 महापुरूषों के जीवन चरित लिखे गए थे। जिनमें से 14 हिन्दी-उर्दू के विद्वान, 3 विदेशी चिंतक, 3 ऐतिहासिक शासक और 2 संत थे। इनमें से कुछ को श्रृद्धाजलियाँ दी गई है और कुछ के संस्मरण लिखे गए है। मुस्लिम रचनाकारों, अकबर जैसे शासक और शाइस्ता खाँ जैसे नवाब का चरित चित्रण लिख कर गुप्त जी ने अपनी असंप्रदायिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है। विदेशी चिंतकों जैसे हरबर्ट स्पेन्सर और मैक्समूलर का महत्व बताकर आधुनिक दृष्टिकोण का परिचय दिया है।

विषयानुक्रमणिका

- घोषणा पत्र i
- प्रमाण पत्र ii
- आभार iii
- भूमिका iv-xi

प्रथम अध्याय : हिंदी नवजागरण की अवधारणा 1-37

1.1 नवजागरणः

जागरण : अर्थ, व्युत्पत्ति और परिभाषा

नवजागरण : अर्थ, व्युत्पत्ति, परिभाषा और स्वरूप

नवजागरण : परिभाषा

नवजागरण : स्वरूप

1.2 भारतीय नवजागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण में भिन्नता

1.3 लोकजागरण और नवजागरण में भिन्नता

1.4 नवजागरण के प्रेरक तत्व

1.5 भारतीय नवजागरण

1.6 हिंदी नवजागरण का परिप्रेक्ष्य

द्वितीय अध्याय : हिंदी नवजागरण और भारतेंदु युग 38-82

2.1 हिंदी नवजागरण और प्रेस

2.2 पत्रकारिता का योगदान

2.3 नया पाठक वर्ग

2.4 हिंदी समाज पर प्रभाव

तृतीय अध्याय : बालमुकुंद गुप्तः व्यक्तित्व एवं प्रतिरोध का स्वर 83–135

3.1 बालमुकुंद गुप्त : एक परिचय

जीवन परिचय

व्यक्तित्व

क) बाह्य व्यक्तित्व

ख) आन्तरिक व्यक्तित्व

3.2 शिवशंभु के चिट्ठों में जातीय चेतना

3.3 भारतमित्र और सामाजिक जागरण

3.4 भाषा चिंतन : अनस्थिरता विवाद

स्वभाषा

स्वलिपि

अनस्थिरता विवाद

चतुर्थ अध्याय : हिंदी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान 136–171

4.1 स्वाधीनता की चेतना

4.2 अंग्रेजी राज की आलोचना

4.3 हिंदी की जातीय चेतना के निर्माण में योगदान

4.4 हिंदी गद्य का निर्माण

4.5 हिंदी का आलोचनात्मक विवेक

पंचम अध्याय : बालमुकुंद गुप्त की कविताई एवं अन्य लेखन 172–215

5.1 बालमुकुंद गुप्त का काव्य

रूप विधान

विषय वस्तु

नवीन प्रयोग

युग बोध

5.2 चरित चर्चा एवं इतिहास दृष्टि

हिंदी/उर्दू के साहित्यकार

विदेशी चिंतकों का महत्त्व

इतिहास लेखक

5.3 संपादित/अनूदित रचनाएँ

- उपसंहार 216–223
- पुस्तकानुक्रमणिका 224–232

प्रथम अध्याय :
हिंदी नवजागरण की अवधारणा

1.1 नवजागरण

1.2 भारतीय नवजागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण में भिन्नता

1.3 लोकजागरण और नवजागरण में भिन्नता

1.4 नवजागरण के प्रेरक तत्व

1.5 भारतीय नवजागरण (1857 के संदर्भ में)

1.6 हिंदी नवजागरण का परिप्रेक्ष्य

अध्याय प्रथमः

हिंदी नवजागरण की अवधारणा

1.1 नवजागरण :

जागरणः-

जागरण का अर्थ है जागृत होना, नींद से जागना, सुषुप्त जनमानस में नवचेतना, स्वतन्त्र चिंतन, ऐसी चेतना जो पहले कभी न आई हो। यहाँ जागरण का अर्थ नींद से शारीरिक रुप से जागना नहीं, अपितु मानसिक रुप से जागना है। ''पारिभाषिक रुप से जागरण शब्द संस्कृत भाषा के नव उपसर्ग 'जागृ' धातु में ल्युट प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न है।''[1] इसका अभिप्राय है जागृत अवस्था या जागते रहने की चेतना। ''लाक्षणिक अर्थ में 'जागरण' वह अवस्था है जिसमें किसी जाति, देश, समाज आदि को अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्नति और रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है।''[2]

जागरण की कोई समय सीमा या कालखंड निर्धारित नहीं की जा सकती। जागरण किसी भी समय, किसी भी परिस्थितियों में हो सकता है। जब मनुष्य तत्कालीन समाज, युग और परिस्थितियों में जकड़ी हुई मानसिक रुढ़ियों से स्वतन्त्र होकर आत्मविवेक से निर्णय लेता है, तो उस अवस्था को जागरण कहा जाता है।

नवजागरण : परिभाषा और स्वरूप

परिभाषाः-

नवजागरण के लिए प्रायः कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, नवजीवन, नवजागृति, नवोत्थान आदि। परन्तु यदि आधुनिक संदर्भ में देखें तो अंग्रेजी शब्द रिनेसाँ का पर्यायवाची ही नवजागरण को माना जाता

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.18

2 वहीं, पृ.18

है। भिन्न-भिन्न देशों में नवजागरण की अवधारणा का विकास, विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों, कालों और विभिन्न रुपों में हुआ है। नवजागरण एक अवधारणा है। नवजागरण की कल्पना के प्रचार का श्रेय स्विस विचारक बर्कहार्ट को है। ''जैकब बुर्कहार्ट की कृति 'सिविलिजेशन ऑफ दि रिनेसाँ इन इटली' (इटली की पुनर्जागरण कालीन सभ्यता) के प्रकाशन 1860 के साथ यह मान्यता अपने चरम शिखर पर पहुँच गई।''[1]

यद्यपि ऐसा माना जाता है कि रिनेसाँ शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांसिसी इतिहासकार 'मिशेसेट' ने 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में किया। लेकिन डॉ. मीरा रानी बल के अनुसार ऐसा माना जाता है कि ''आधुनिक संदर्भ और अर्थ में 'रेनेसाँ' शब्द का प्रयोग संभवतः पहली बार बाल्जाक ने 1829ई0 में अपनी नाट्य कृति "Blade Sceaux" में किया था।''[2]

नवजागरण : स्वरूप

रिनेसाँ प्रायः पश्चिमी यूरोप जिसमें इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, स्पेन, जर्मनी जैसे देश आते हैं इनकी सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति का काल माना जाता है। इस काल में कला, संगीत, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन हुआ। सर्वप्रथम पुनर्जागरण का आरम्भ इटली से माना जाता है। इसी संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि- ''सोलहवीं सदी में इटली के लोगों ने नए युग को ला रिनास्विता (पुनर्जन्म) कहना शुरु किया। अठारहवीं सदी में फ्रांस के विद्वानों ने उसे रेनैसान्स कहा। वहाँ से यह शब्द अंग्रेजी में आया। इटली के लोगों ने संस्कृति के पुनर्जन्म की बात इसलिए सोची थी कि तीसरी, चौथी, पाँचवीं सदियों में जर्मन हमलावरों ने उनकी प्राचीन रोमन सभ्यता का नाश कर दिया था। अब वह सभ्यता मानो नए सिरे से

---

1 (सं.) पार्थ सारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ.1

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.19-20

जन्म ले रही थी। इसलिए पुनर्जन्म की बात उनके मन में आई।''[1] और इटली की भाँति अन्य देशों ने भी नई सभ्यता के युग को पुनर्जन्म कहा।

यूरोपीय सन्दर्भ में यदि देखें तो यूरोप में नवजागरण की जगह पुनर्जागरण अधिक तर्कसंगत मालूम पड़ता है। यूरोप के रिनेसाँ को पुनर्जागरण अथवा पुनर्जन्म कहने का मुख्य कारण यह है कि यूरोप ने लम्बे अँधकार युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था। पुनर्जागरण की परिभाषा यूरोपीय संदर्भ में हिन्दी विश्वकोष (नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी) ने दी है- ''पुनर्जागरण का अर्थ पुनर्जन्म होता है। मुख्यतः यह यूनान और रोम के प्राचीन शास्त्रीय ज्ञान की पुनः प्रतिष्ठा का भाव प्रकट करता है। यूरोप में मध्य युग की समाप्ति और आधुनिक युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है।''[2] 14वीं सदी के आरम्भ तक यूरोप में प्राचीन रोमन साम्राज्य के विनाश से उत्पन्न अव्यवस्था और गडबड़ी में शांति आ चुकी थी। यूरोपीय संस्कृति में एक नए जीवन का संचार हो रहा था। धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत आदि के नए-नए अन्वेषण हुए। नई सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना का संचार होने लगा था। जिसका प्रथम उन्मेष इटली में दिखाई पड़ता है। ''इस प्रकार यूरोप का एक प्रकार से नया जन्म हुआ और इसी कारण उस युग को नवजन्म या पुनर्जन्म के पर्यायभूत नवजागरण या पुनर्जागरण का अभिधान प्रदान किया गया है।''[3]

यूरोप में पुनर्जागरण के कारणों का उल्लेख करते हुए पार्थ सारथि गुप्ता ने कहा है,'' सामान्यतः तुर्कों के हाथों कुस्तुनतुनिया की पराजय की तिथि (सन् 1453) से यूरोप में पुनर्जागरण का आरंभ माना जाता है। जिसके बाद यूनान के विद्वान

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.192

2 हिन्दी विश्वकोशः खंड-7, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ.240 उद्धृत डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन पंचकूला, 1996, पृ.73

3 डॉ. अमरनाथ, हिन्दी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.397

शरणार्थी के रुप में इटली चले गये और जाते समय अपने साथ बहुमूल्य यूनानी साहित्य भी लेते गए जो यूरोप के लिए दीर्घकाल से लुप्त हो चुका था।''[1]

इसी बात को डॉ. रामविलास शर्मा ने इस ढंग से कहा है, ''पाँचवी ईस्वी सदी के उत्तरार्ध में रोमन साम्राज्य ध्वस्त हो गया, यूरोप का प्राचीन काल समाप्त हुआ और मध्यकाल आरंभ हुआ। पंद्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक लगभग एक हजार साल तक, यह मध्यकाल बना रहता है। फिर पुनर्जागरण काल आता है और यूरोप के इतिहास का आधुनिक काल शुरु होता है। यूरोप में सभी देशों का आर्थिक विकास न तो प्राचीन काल में एक सा था, न मध्यकाल में। प्राचीन काल में इटली नगर सभ्यता का केन्द्र था, जर्मनी और ब्रिटेन जैसे देशों के लोग अभी गण समाजों वाला जीवन बिता रहे थे।''[2]

14वीं सदी के अंतिम दशक से ही ग्रीक साहित्य लोकप्रिय होने लगा। देशी भाषाओं में ग्रंथों का संग्रह होने लगा। व्यक्ति-स्वातंत्र्य की प्रतिष्ठा हुई। चर्च का प्रभाव घटने लगा। मनुष्य में ईश्वर के स्थान पर व्यक्ति को समझने की जिज्ञासा पैदा हुई। धर्म की अपेक्षा विज्ञान का महत्त्व बढ़ा। संन्यासियों के स्थान पर बुद्धिजीवियों का महत्त्व बढ़ा। भावना का स्थान तर्क ने लिया। धर्म और सामंती रुढ़ियों में जकड़ी जनता के भीतर वैज्ञानिक चेतना का प्रसार होता है। समाज-सुधार के माध्यम से जनता के भीतर वैज्ञानिकता का समावेश होता है। समस्त यूरोप में एक नई क्रान्ति आती है। ''संक्षेप में सामंतवाद और धार्मिक सत्ता के कठोर नियंत्रण से मुक्ति, व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, वैज्ञानिक जिज्ञासा, सचेत रुप से समाज सुधार के प्रयास,

---

1 (सं.) पार्थ सारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ.02

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1996, पृ.189

बुद्धिवाद, प्रशासनिक, न्यायिक सुधार, नवीन जीवन शैली, नयी संस्कृति और नयी दुनिया की ओर प्रयास आदि नवजागरण की सामान्य विशेषताएँ हैं।''[1]

पुनर्जागरण का यूरोप के अन्य देशों पर भी प्रभाव पड़ा। जिसके कारण यूरोप में औद्योगिक क्रांति की शुरुआत हुई। इसी कारण से धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, विज्ञान एक नए युग में प्रवेश कर सके। यूरोपीय रिनेसाँ एक विशिष्ट काल 1300ई0 से 1600ई0 के मध्य घटित हुआ। यह एक बौद्धिक-सांस्कृतिक आंदोलन है। यह आंदोलन कुछ ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का विकास मात्र है, जो 9वीं, 10वीं अथवा 12वीं शताब्दियों में घटित हो चुकी थी। उदाहरण के लिए 'करोलिजयाई पुनर्जागरण (9वीं सदी) जिसके बाद लैटिन का पठन-पाठन आरम्भ हुआ। जोकि पाँचवीं और छठीं सदी के बाद से समाप्त हो चुका था। 12वीं सदी का मानवतावादी विचारों के विकास का आंदोलन जिसमें पेरिस, बोलिन और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय स्थापित हुए। पुनर्जागरण को हम संक्रांति काल कह सकते हैं जिसमें कुछ मध्यकालीन ऐतिहासिकता तो थी ही साथ-साथ आधुनिकता की अपरिमित संभावनाएँ भी बाकी थीं। इसी सन्दर्भ में 'पार्थ सारथि गुप्ता' कहते हैं- ''यूरोप में पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा परस्पर संबंधित परिवर्तनों का युग रही है। इस सांस्कृतिक नवोत्थान के अलावा जिसे हम पुनर्जागरण कहते हैं, इसी दौर में यूरोपीय राज्य प्रणाली का उदय हुआ था।''[2]

इस काल में यूरोप ने अनेक रुझानों को जन्म दिया और कुछ अन्य विचारों को मान्यता दी जोकि पहले से ही व्याप्त थे। चर्च की सत्ता को नकार कर मानवतावाद का विकास, कला की अभिव्यक्ति माना गया। सामंती समाज का विघटन और पूंजीवाद का आरम्भ पुनर्जागरण की विशेषताएँ रही है।

---

1 डॉ. अमरनाथ, हिन्दी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 397

2 (सं.) पार्थ सारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2001, पृ.33

विश्व की महान शक्तियों चर्च, धर्म, ईसा राज्य को चुनौती दी गई, धर्म सुधार आन्दोलन हुए और बाईबल जैसे ग्रंथों की आलोचना की जाने लगी। धर्म गिरिजाघर से निकल कर आम आदमी तक पहुँचने लगा। यूरोपीय पुनर्जागरण के संदर्भ में डॉ. मीरा रानी बल का कहना है कि- ''यूरोप का मध्ययुगीन धर्म, रोमन कैथोलिक धर्म, समूचे ईसाई संसार सांस्कृतिक एकता का सूत्र था, लेकिन यह सामंतशाही का पोषक था। सामंती राज्य व्यवस्था को समर्थन प्रदान कर रोमन चर्च राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में अड़चने खड़ी कर रहा था- इसलिए यूरोप के देशों में जनता के राष्ट्रीय जागरण ने सामंती धर्म-तन्त्र के विरुद्ध धार्मिक संघर्ष का रुप लिया।''[1]

पुनर्जागरण काल में सम्पूर्ण यूरोप में एक नई क्रांति आ गई थी। इटली के साथ-साथ अन्य देशों में जैसे- इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्पेन आदि में भी परिवर्तन दिखाई देने लगा। इटली में जहाँ दान्ते, पैट्रार्के, बुकाचियों आदि ने नवजागरण का बीज बोया, वहीं इंग्लैंड में शेक्सपीयर, मिल्टन, जर्मनी में मार्टिन लूथर जैसे सुधारवादी नेता फ्रांस में रोबर्ट गागिन जैसे मानवतावादी विचारकों और स्पेन में इरासमस ने नवजागरण की मशाल को जलाए रखा।

नवजागरण काल में साहित्य के क्षेत्र में भी परिवर्तन आए। धार्मिक लेखन के अतिरिक्त गैर धार्मिक लेखन आरम्भ हो चुका था। मूर्तिकला, चित्रकला चर्च की दीवारों से बाहर निकलकर स्वच्छंद वातावरण में उड़ान भरने लगी थी। कलाकार मात्र ईश्वर के आदेश की पूर्ति करने वाला है, इस धारणा का अंत हुआ। देशी भाषाओं में उन्नति आरम्भ हुई।

प्रेस का उदय भी पुनर्जागरण का महत्त्वपूर्ण कारक तत्व था। आरम्भ में धार्मिक तथा बाद में गैर धार्मिक पुस्तकों की छपाई से पुस्तकों की संख्या में वृद्धि हुई। पहला प्रेस लगभग 1470 ई0 में फ्रांस के सारबोना में शराब भंडारे के तहखाने में आरम्भ

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.35

हुआ था। जर्मनी के गुटेनबर्ग ने 1477 ई0 में लकड़ी के टाइपों के स्थान पर सचल टाइपों का आविष्कार कर क्रांतिकारी भूमिका निभाई। इसके बाद यूरोप के प्रमुख नगरों में छापखाना खुल गए थे।

1.2 भारतीय नवजागरण से यूरोपीय पुनर्जागरण की भिन्नताः-

भारतीय नवजागरणः-

प्रत्येक राष्ट्र की परिस्थितियों में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। 19वीं सदी के जागरण काल में भी पराधीन भारतीय समाज में एक नवीन चेतना आई थी। यह चेतना नवीन नहीं थी, यह परिष्कृत रुप था उस चेतना का जो पहले से चली आ रही थी। प्राचीन काल से ही भारत में विभिन्न धर्म और संस्कृतियाँ आती-जाती रही है। विभिन्न संस्कृतियों के समन्वय से नवचेतना आती रही है। श्री रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है कि- ''भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं और हमारी संस्कृति का इतिहास उन्हीं चार क्रांतियों का इतिहास है। पहली क्रान्ति तब हुई जब आर्य भारत वर्ष में आए। उनका आर्योत्तर जातियों से सम्पर्क हुआ।..... दूसरी क्रान्ति तब हुई, जब महावीर और गौतम बुद्ध ने इस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिंतन धारा को खींचकर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गये।..... .....तीसरी क्रान्ति उस समय हुई जब इस्लाम विजेताओं के धर्म के रूप में भारत पहुँचा और इस देश में हिन्दुत्व के साथ उसका सम्पर्क हुआ और चौथी क्रान्ति हमारे अपने समय में हुई। जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ तथा उसके सम्पर्क में आकर हिन्दुत्व एवं इस्लाम दोनों ने नवजीवन का अनुभव किया।''[1]

परन्तु भारतीय नवजागरण को लेकर अलग-अलग विद्वानों की अलग-अलग राय है। डॉ. अमरनाथ के अनुसार भी नवजागरण को लेकर भारतीय विचारकों में

---

1 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ.8

मतभेद है। ''भारत में नवजागरण को लेकर अलग-अलग अवधारणाएँ हैं। कुछ लोग मानते है कि पहला नवजागरण गौतम बुद्ध के आविर्भाव के साथ आया। बुद्ध ने पुरानी जड़ अवधारणाओं को तोड़कर मनुष्य-मनुष्य के भीतर के भेद को मिटाया जिसका प्रभाव मध्य एशिया तक फैल गया। दूसरा नवजागरण भक्ति काल में दिखायी पड़ता है। तीसरा नवजागरण अंग्रेजी सभ्यता के सम्पर्क में आने के बाद खास तौर पर 1857 के प्रथम स्वाधीनता आंदोलन के बाद शुरु हुआ जिसका केन्द्र खास तौर पर बंगाल था। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, थियोसाफिकल सोसाइटी जैसे विविध आंदोलन तथा विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महर्षि अरविन्द आदि विचाकर इसके प्रमुख सूत्रधार थे। गुप्त युग को भी कुछ लोगों ने नवजागरण युग कहा है।''[1]

19वीं सदी के नवजागरण में भारतीय जीवन दर्शन निवृतिवाद दृष्टि से प्रवृतिवाद दृष्टि में परिवर्तित होने लगा था। प्राचीन धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सामाजिक रीति-रिवाजों पर आँख मूँद कर भरोसा करने की बजाय तर्क के निष्कर्ष पर कसकर उसका सूक्ष्म वैज्ञानिक आंकलन किया जाने लगा। इसी परिस्थिति में उस नवीन विचारधारा का जन्म हुआ जिसे 'राष्ट्रीयता' का नाम दिया गया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का कहना है, ''यूरोप में जन्मी हुई विचारधारा में धीरे-धीरे भारत के विचारशील लोगों को भी प्रभावित करना शुरु किया। राष्ट्रीयता भारतवर्ष के लिए नवीन विश्वास थी, इसके पहले इस देश में यह बात अपरिचित थी। राष्ट्रीयता का अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र का अंश है और इस राष्ट्र की सेवा के लिए, इसको धन-धान्य से समृद्ध बनाने के लिए, इसके प्रत्येक नागरिक को सुखी और सम्पन्न बनाने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति को सब प्रकार से त्याग और कष्ट स्वीकार करने चाहिए।''[2]

---

1 डॉ. अमरनाथ, हिन्दी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.216
2 हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.209

नवजागरण पूर्व जागरण था। जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की ललक दिखाई देने लगी थी। पुरानी बेड़ियों से मुक्ति की छटपटाहट, नयी चेतना का स्पंदन, नया जोश और नयी उमंग दिखाई पड़ती है। एक ओर ऊँच-नीच, ब्राह्मण-अब्राह्मण और छुआछुत जैसी व्यवस्था को बदलने का साहस दिखाई पड़ता है तो दूसरी तरफ सामंत विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी विचारधारा का उद्‌भव होता है। सामाजिक कुरीतियों तथा प्रथाओं के खिलाफ नवजागरण का बिगुल बजाया जाता है। सामाजिक और साहित्यिक दोनों स्तर पर परिवर्तन दिखाई देता है।

भारतीय नवजागरण और यूरोपीय पुनर्जागरण में मुख्य अंतर यह है कि जहाँ यूरोप में एक सभ्यता का पुनर्जन्म था वहीं भारत में पुनर्जन्म न होकर जागरण की नयी चेतना थी। भारतीय नवजागरण की अवधारणा यूरोप से इस बात में भी भिन्न थी कि यूरोप के देश किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं थे, जबकि भारत अंग्रेजों के अधीन था। यहाँ के नवजागरण में स्वदेशी राज्य, एक देशीय संस्कृति और एक जातीयता का भाव मिलता है। शम्भुनाथ का कहना है, ''भारतीय नवजागरण के अनेक दुर्भाग्यों में से एक यह भी है कि इसे सौ वर्ष से ज्यादा न मिल सके, जबकि पश्चिमी देशों को तीन-तीन, चार-चार सौ वर्ष मिले। वहाँ विज्ञान, प्रौद्योगिकी, सुधारवाद, अनुभववाद, आदर्शवाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद आदि को पनपने का पूरा अवसर मिला। नवजागरण वहाँ विकसित राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में आया तथा स्वतंत्र राजनीतिक वातावरण में आया।''[1]

यूरोप में संगठित चर्च, कैथोलिक धर्म, ईसाई संसार से मुक्ति पाने की तीव्र आकांक्षा थी, वहीं भारत में यूरोपीय साम्राज्यवाद और सभ्यता को चुनौती देने का साहस था। यूरोप में जहाँ मानव को केन्द्र में रखकर मानवीय उत्स, ज्ञान, विवेक, विकास, स्वतंत्र चिंतन, तर्कशीलता को महत्त्व दिया गया वहीं भारत में राष्ट्र को धुरी मानकर नवजागरण की परिधि तैयार की गई। भारत में राष्ट्रीय हितों को सर्वोपरि रखा

---

1 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.1

गया। इन्हीं तर्कों के आधार पर डॉ. मीरा रानी बल कहती हैं- ''वह राष्ट्रीय पहले है, मानवतावादी बाद में। यहाँ व्यक्ति में 'भारतीयता' तथा 'राष्ट्रीयता' की गौरव गरिमा और राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को ही जागृत कर उनका प्रतिरोपण करने का प्रयास किया गया।''[1]

यूरोप में जहाँ प्राचीन ग्रीक-लेटिन सभ्यता, ज्ञान एवं कला से प्रेरणा ग्रहण की गई थी वहीं भारत में अतीत ज्ञान, वैभव, उपलब्धियों को आधार बनाकर उनको युगानुसार पुनर्व्याख्यातित करने का प्रयास किया गया। यूरोप में विज्ञान और धर्म आमने-सामने खड़े थे। जबकि भारत में परिस्थितियाँ बिल्कुल विपरीत थीं। यहाँ धर्म और विज्ञान एक साथ खड़े थे, भारतीय नवजागरण में वेद-उपनिषदों के साथ-साथ विज्ञान का समन्वय दिखाई पड़ता है। प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृतियाँ मिली-जुली दिखाई पड़ती हैं। यूरोप में जहाँ धर्म की सत्ता थी और सामंतवाद था, वहीं भारत धर्म और सामंतवाद के साथ-साथ साम्राज्यवाद के अधीन था। 17वीं-18वीं शताब्दी में यूरोपीय विद्वानों की चिंतन परम्परा, वेदों-उपनिषदों के साथ जुड़ी थी। उपनिषदों के अन्य भाषाओं में अनुवाद हुए थे। जर्मन दार्शनिक 'शोपेन हावर' ने यह अनुवाद पढ़ा और प्रतिक्रिया दी थी परन्तु इन सबके बावजूद यूरोपीय पुनर्जागरण एक बहुत बड़ी कमी लिये हुए था।

डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''यूरोप का पुनर्जागरण, यूनानी संस्कृति की नई प्रेरणा, धार्मिक सुधार आन्दोलन, औद्योगिक क्रान्ति, नवीन वैज्ञानिक चिंतन- इन सबके बावजूद धार्मिक अन्धविश्वास लोकमानस में दृढ़ता से जमे हुये थे। वेदान्त ने शोपेन हावर के इन्हीं विश्वासों को उच्छिन्न कर दिया था। इन विश्वासों का सम्बन्ध सामन्ती व्यवस्था से था। वेदान्त ने उन्हें उच्छिन्न कर दिया, अतः मानना चाहिए, वेदान्त की यह भूमिका सामन्त विरोधी थी। यूरोप को देखते संयुक्त राज्य अमरीका सामंती अवशेषों से मुक्त था, परन्तु वे अंधविश्वास वहाँ भी जड़ जमाए हुये थे। 20वीं

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.36

सदी में विवेकानन्द को अमरीका में, रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ब्रिटेन तथा समूचे पश्चिमी जगत में जो लोकप्रियता मिली, उसका मूल कारण उपनिषदों की वहीं चिंतनधारा थी जो धार्मिक रूढ़ियों से लोकमानस को मुक्त करने में सहायक थी।''[1]

यूरोप के सामंती समाज में जहाँ लोगों को जिंदा जलाने, प्राणदंड देने, स्त्रियों को डायन का दर्जा देने जैसे अंधविश्वास प्रचलित थे, वहीं भारतीय मध्यकाल में ऐसा कुछ नहीं था। यूरोप में पुनर्जागरण अथवा रिनेसाँ कहने का मुख्य कारण यही था कि यूरोप ने एक लम्बे अंधकार युग और सामंती मध्यकाल से छुटकारा पाया था। परन्तु भारत में इसे नवजागरण की संज्ञा दी गई क्योंकि यहाँ पर ऐसा अंधकार युग कभी नहीं था। यहाँ विकास के अवशेष पहले से ही विद्यमान थे, बस उसकी गति तीव्र हुई थी। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार- ''भारत में यह तथाकथित 'मध्यकाल' (लगभग तीसरी से सोलहवीं शताब्दी) का दौर ज्ञान-विज्ञान और विदेश व्यापार सहित उद्योग व्यापार की भारी उन्नति का युग था। यूरोप इस लंबे अंधकार युग से तब बाहर निकलता है जब इटली में प्राचीन यूनानी और रोमन ज्ञान-विज्ञान और साहित्य कलाओं का पुनरुद्धार होता है।''[2]

डॉ. रामविलास शर्मा जिन तर्कों के आधार पर भारत में नवजागरण को स्वीकार करते हैं अथवा नवजागरण की परिभाषा देते हैं वे बिल्कुल तर्क संगत है। क्योंकि भारत में यूरोपीय मध्यकाल जैसी स्थितियाँ कभी नहीं रहीं। यूरोपीय इतिहास दृष्टि से देखने पर निश्चित समय सीमा को मान लेने भर से कोई कालखण्ड मध्यकाल नहीं हो जाता है। क्या भारतीय मध्यकाल की प्रवृतियाँ यूरोपीय प्रवृतियों से मेल खाती है? विश्लेषणों से पता चलता है कि भारत में ज्ञान की सतत् प्रक्रिया रही है। बौद्ध, जैन, नाथ, सिद्ध और उसके बाद का सशक्त भारतीय भाषाओं का सांस्कृतिक

---

1 डॉ.रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 1996, पृ.211

2 वहीं, पृ.15

आंदोलन भी है, जिसे हम भक्ति आंदोलन के नाम से जानते हैं। ज्ञान और चिंतन की परम्परा का विस्तार भक्ति आंदोलन में दिखाई पड़ता है, जिसे डॉ. शर्मा ने लोकजागरण कहा था। इस समय संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला, साहित्य, दर्शन, तर्कशास्त्र और मीमांसा की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन हो गया था। यूरोपीय पुनर्जागरण और भारतीय नवजागरण में मुख्य अन्तर बताते हुए डॉ. प्रदीप सक्सेना कहते हैं, ''एक ओर यूरोपीय पुनर्जागरण में विश्व बाजार में विभिन्न रास्तों को जगह बनाते देखते हैं। डच, पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेज! दूसरी ओर भारत विश्व बाजार में अपनी जगह इस तरह नहीं बनाता। यहाँ पुनर्जागरण अनुभव किया जाता है- भाषा और साहित्य में।''[1]

यही वह दौर था जब इस्लाम और भारतीय संस्कृति का मेल होता है। भाषाओं में प्रयोग को लेकर रचनाकार सजग होते हैं। अमीर खुसरो एक बहुत बड़े उदाहरण के रुप में मौजूद है। इसी काल में उर्दू नामक भाषा का विकास होता है। इसलिए भारतीय नवजागरण एक नयी स्फूर्ति थी न कि सोई हुई जनता का जागृत होना। इसी संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह का कथन है- ''यूरोप के पास सिर्फ एक रिनेसांस है तो भारत में नवजागरणों की एक लम्बी श्रृंखला है।''[2]

1.3 लोकजागरण और नवजागरण में भिन्नताः-

15वीं सदी के जनजागरण को लोकजागरण की संज्ञा दी जाती है। भक्ति काल को लोकजागरण के अन्तर्गत लिया जाता है। यह लोकजागरण नवजागरण से भिन्न है। मूलभूत अन्तर इनकी ऐतिहासिक अन्तर्वस्तु में है। 19वीं सदी का नवजागरण जहाँ उपनिवेशवादी दौर की उपज था, वहीं 15वीं सदी का लोकजागरण सामान्य लोक से संबंधित था। नवजागरण, लोकजागरण से इस बात में भी भिन्न था कि इसके विचाकर

---

1 डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृ.107

2 (सं.) महेन्द्र राजा जैन, नामवर विचार कोश, नयी किताब, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2012, पृ.280

शिक्षित मध्यवर्ग से थे, जिन्हें बंगला में भद्रलोक कहा जाता है। यह भद्रलोक सामान्य भक्त कवियों की तरह घुलने मिलने वाला नहीं था।

डॉ. रामविलास शर्मा ने भक्तिकाल को लोकजागरण कहा है। डॉ. शर्मा ने समाज में चार प्रकार के नवजागरणों की चर्चा की है। ''ऋग्वेद से पहले का नवजागरण, उपनिषदों से दूसरा नवजागरण, भक्ति आंदोलन से तीसरा नवजागरण और 19वीं सदी से सम्बन्धित चौथा नवजागरण।''[1] 'भारतीय साहित्य की भूमिका' (1996) नामक पुस्तक में इन्होंने लोकजागरण की चर्चा की है। जब देश भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है तो वह आम जनता तक पहुँचता है। इसी विशेषता को बताते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि- ''भारतेन्दु युग उत्तर भारत में जनजागरण का पहला या प्रारम्भिक दौर नहीं है। वह जनजागरण की की पुरानी परम्परा का खास दौर है। जनजागरण की शुरुआत तब होती है जब बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है।''[2]

भारतीय नवजागरण को लोकजागरण का विकास माना जाता है। भक्ति आंदोलन में शूद्र, स्त्री, किसान, कारीगर, मुसलमान बड़े पैमाने पर भाग लेते हैं। इसलिए इस आंदोलन ने व्यापक लोकजागरण का रूप लिया। सामाजिक भेदभाव और सामाजिक वैषम्य को दूर करने में भक्ति आंदोलन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भक्ति साहित्य लोकजागरण की नींव है। सिद्ध, बौद्ध, नाथ, जैन से लेकर अमीर खुसरो विद्यापति से लेकर घनानंद, पद्याकर तक कवियों में लोकजागरण की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। भक्ति साहित्य में शूद्रों और स्त्रियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। कबीर, नामदेव, नानक, रैदास से लेकर तमिलनाडु की आण्डाल, कर्नाटक की अकमा देवी,

---

1 आजकल, (सं.) सीमा ओझा, आजकलः प्रकाशन विभाग, लोधी रोड़ नई दिल्ली, अंक- 5, सितंबर, 2012, पृ.29

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.13

कश्मीर की लाल देवी (लल्लश्वेरी) और हिंदी प्रदेश की मीराबाई का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

डॉ. प्रदीप सक्सेना का कहना है, ''माना जा रहा है कि भारतीय पुनर्जागरण का अत्यंत सशक्त दौर भक्तिकाल है। यह पहला आधुनिक पुनर्जागरण है जिसका स्वाभाविक विकास विदेशी व्यापारी रोक देते हैं। इसे लोकजागरण कहना अधिक संगत है, क्योंकि यहाँ भी 'पुनर' के तत्व कम हैं। इस दौर की दार्शनिक उपलब्धियाँ कम महान नहीं हैं। विशेषकर निर्गुणपंथ की।''[1] 15वीं सदी में जहाँ इटली में रिनेसां हो रहा था वहीं भारत में लोकजागरण घटित हो रहा था। आधुनिक भारतीय भाषाएँ 10वीं-11वीं शताब्दी से जन्म लेने लगी थी। प्राकृत तो पहले से ही अस्तित्व में थी। कला के क्षेत्र में नया वास्तुशास्त्र और वास्तुशिल्प पैदा होने लगा था। इमारतों में गुम्बद बनाने की परम्परा आरम्भ हुई। कलात्मक रुप से दरवाजों और मंदिरों का निर्माण होने लगा था। मूर्तिकला नए ढंग से विकसित हुई। सूफी संतों द्वारा नया दर्शन 'इश्क' आरम्भ हुआ जो श्रृंगार रस से भिन्न था। यह परिवर्तन जिन लोगों ने किया वे राजा या नवाब न होकर निम्न वर्गों के लोग थे।

इसी बात को रेखांकित करते हुए आलोचक डॉ. नामवर सिंह का कहना है कि- ''यह साधारण लोगों का जागरण इटली के जागरण से हीं अधिक महान् था। ये धनी और शक्तिशाली लोगों द्वारा नहीं चलाया गया बल्कि मजदूर वर्ग के लोगों ने यह अनोखा कार्य किया।''[2] डॉ. नामवर सिंह ने अपने तर्कों द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यह आम लोगों का जागरण था। जो भी सामाजिक एवं लोकहित कार्य हुए वे विशेष लोगों के लिए नहीं हुए थे।

---

1 डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृ.117
2 कथा देश, (सं.) हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा. लि., जून-2012, पृ.8

जैसे-जैसे साहित्य में जन-भाषाओं की दखल बढ़ती जाती है वैसे-वैसे साहित्य में विशिष्टता बढ़ती जाती है। कवि विद्यापति ने लोकभाषा, जनभाषा के मधुर होने की बात कही है। तुलसीदास को संस्कृत, अवधी और ब्रज भाषाएँ आती थी, परन्तु उन्होंने जनभाषा अवधी में अपना साहित्य लिखा। कबीर वाणी जनवाणी में है। अन्य भक्तिकालीन कवियों का साहित्य भी जनवाणी में है। तभी तो इतने वर्षों के बाद भी भक्ति साहित्य आम जन को कंठस्थ है। इसी कारण से डॉ. रामविलास शर्मा ने जनभाषाओं के विकास को लोकजागरण से जोड़ा है। डॉ. शर्मा ने जनजागरण की शुरुआत तब से मानी है- 1. जब बोल-चाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है। 2. उस क्षेत्र में आधुनिक जातियों का गठन होता है। हिन्दी की जातीय भाषाओं का विकास (भक्तिकाल) 12वीं सदी में होता है और हिन्दी का विकास 19वीं सदी यानि नवजागरण काल में।

जिस प्रकार यूरोप में आधुनिकता के दो दौरों का जिक्र किया जाता है जैसे- 15वीं-16वीं सदी के पुनर्जागरण का और उसके बाद 18वीं सदी के एनलाइटमेंट (ज्ञानोदय) काल का। उसी प्रकार डॉ. रामविलास शर्मा भी हिंदी साहित्य के संदर्भ में दो चरणों का जिक्र करते हैं। जैसे 12वीं सदी के लोकजागरण का और 19वीं सदी के नवजागरण का। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने इसी बात का समर्थन करते हुए लिखा है- ''भक्तिकालीन लोकजागरण जातीय निर्माण को व्यक्त करने वाला सांस्कृतिक आंदोलन है। जिसका मुख्य स्वर सामंतवाद विरोध तथा मानवतावादी है। जबकि नवजागरण राष्ट्रीय स्वाधीनता का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन है। जिसका मुख्य स्वर साम्राज्यवाद विरोधी तथा सामंतविरोधी है।''[1]

भक्तिकाल के भक्त कवि मूलतः भक्त थे, साधु थे। ये लोग समाज के हाशिए पर थे। इनमें से अधिकतर निम्न जाति थे और अत्यंत गरीब थे। इनमें बदलाव की कामना थी और ये कार्य उन्होंने भक्ति के माध्यम से किया। इसी संदर्भ में शंभुनाथ

---

1 मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.190

का कहना है, ''अतीत में जन-उभारों तथा आंदोलनों के साथ साधारण जन की संस्कृति में भी उभार आया। रूढ़ियाँ टूटीं। खासकर भक्ति आन्दोलन और नवजागरण ने भारतीय लोकसंस्कृति के बुनियादी गुणों को उसके विभिन्न कला रूपों समेत एक बार फिर रोशनी में ला दिया। भक्ति आन्दोलन विश्वास और नवजागरण तर्क बुद्धि पर आधारित था। दोनों ने औजारों की भिन्नता के बावजूद अपनी सीमाओं में सत्ता की संस्कृति को जबरदस्त चुनौती दी।''[1] इस काल में हिन्दी की जातीय भाषाओं और अन्य देश भाषाओं में साहित्यिक रचना होने लगी थी। परन्तु नवजागरण काल में हिन्दी जातीय भाषा के रुप में विकसित हुई। इस काल के रचनाकार हाशिए के नहीं थे, अपितु वे तो समाज का नेतृत्व करते थे। इनके साथ राजनीतिक और सामाजिक आंदोलन भी खड़े थे, जिन्हें इन्होंने व्यवहारिक रुप से लागू भी करवाया। इसलिए भक्ति आंदोलन उतना सफल नहीं हो सका, जितना कि नवजागरण।

भक्ति द्रविड़ो की देन है। उत्तर भारत से पहले दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन होता है। तमिल भाषा दक्षिण में सबसे पुरानी (दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) है। जिन शूद्रों को निम्न और दलित कहा जाता है उन्होंने दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन चलाया। कबीर से पहले रामानन्द ने बहुत बड़ी क्रान्ति की। भक्ति आंदोलन के दो मुख्य सूत्रधार रहे हैं- किसान और कारीगर। भक्ति साहित्य की यही विशेषता है कि इसमें कश्मीर से लेकर तमिल तक और गुजरात से लेकर बंगाल तक के किसान और कारीगरों का साहित्य है। यूरोप में जहाँ 18वीं सदी में ज्ञान-विज्ञान का आंदोलन (एनलाइटमेंट) चला, वहीं भारत में अकबर के शासन काल में ज्ञान का प्रचार हुआ, जो यूरोप से तुलना करने पर एक शताब्दी पूर्व घटित होता है। यूरोप में जो व्यापारिक पूंजीवाद का दौर था वह जातीय निर्माण को दर्शाता है। जिसे भारत में सांस्कृतिक लोकजागरण कहा जाता है। भक्ति आंदोलन के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि- ''तमिलनाडु (छठीं सदी ई0) और महाराष्ट्र (12वीं सदी ई0) से होते

---

1 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.188

हुए यह प्रक्रिया मुगल काल में अपने उत्कर्ष पर दिखाई देती है। यहाँ भक्ति आंदोलन में यूरोप की तरह रिनेसाँ और रिफॉर्मेशन के बीच अनिवार्य टक्कर के विपरीत ये दोनो धाराएँ आपस में घुली-मिली हुई और एक-दूसरे की पूरक नजर आती है।''[1]

भक्ति आंदोलन का मुख्य स्वर सामंत विरोधी और मानवतावादी है। भक्ति काल के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास और अन्य उसी प्रकार लोकजागरण का प्रतिनिधि करते हैं जिस प्रकार इटली के 'दाँते', इसलिए इसे लोकजागरण कहा जाता है।

1.4 नवजागरण के प्रेरक तत्वः-

भारतीय नवजागरण के प्रेरक तत्वों पर विचार करने से पूर्व भारतीय नवजागरण की सामाजिक राजनीतिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक है। किन परिस्थितियों में नवजागरण का विकास तीव्र हुआ। यह तो स्पष्ट हो चुका है कि भारतीय नवजागरण, पुनर्जागरण न होकर एक क्रमिक विकास की प्रक्रिया है, जो आर्यों के आगमन से आरम्भ हो जाती है। बुद्ध, महावीर से चलते हुए यह प्रक्रिया भक्ति सागर को पार करते हुए 1857 की क्रान्ति से गुजरते हुए आधुनिक युग में प्रवेश करती है। परन्तु इस सतत् निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के पीछे कुछ सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक कारण रहे हैं। वीर भारत तलवार का कहना है, ''भारतीय नवजागरण की खासियत यूरोपीय सम्पर्क से हासिल आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को आत्मसात करके भारतीय सभ्यता और संस्कृति के मुआफिक एक आधुनिक समाज बनाने की आत्मनिर्भर कोशिशों में थी।''[2]

अंग्रेजों का आगमन इन कारणों में से एक था। प्रायः ऐसा माना जाता है कि नवजागरण अंग्रेजों की देन है। अंग्रेजों ने ही आधुनिकता की शुरुआत की। यह धारणा बहुत से भारतीय और पाश्चात्य विचारकों की है। परन्तु सत्य यह है कि अंग्रेजों की

---

1 डॉ.रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.16

2 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.30

पराधीनता की छात्रछाया में भारत की राष्ट्रीयता विकसित हुई। यह उनकी मजबूरी थी कि उन्होंने अपने निजी स्वार्थों के चलते भारत में आधुनिकता का आविष्कार किया। परन्तु इसके बदले में उन्होंने जो शोषण, आतंक, लूट और अमानवीय अत्याचार भारतीय जनता के साथ किए उसका इतिहास गवाह रहा है।

अंग्रेजों का आगमनः-

अंग्रेजों का भारत आगमन एक व्यापारिक संघ 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के माध्यम से हुआ। अंग्रेजों से पूर्व अन्य विदेशी व्यापारी भी डच, फ्रांसिसी, पुर्तगाली भी कपड़ों एवं मसालों के व्यापार के लिए भारत आए थे। ये लोग यहाँ से बुलियन (सोना-चाँदी) के बदले सूती-रेशमी कपड़े, मसाले ले जाते थे। ये इनके लिए बड़े लाभ का सौदा था। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''अंग्रेज यहाँ व्यापारी बनकर आए, मुख्यतः अपने देश का माल बेचने वाले व्यापारी नहीं, हमारे यहाँ का माल ले जाकर अपने देश में बेचने वाले व्यापारी बनकर आए। यरूप के देशों में इस बात को लेकर प्रतिद्वन्दिता थी, भारत से व्यापार करने का इज़ारा किसके पास रहता है। इस समय भारत माल का निर्यात करने वाला प्रमुख औद्योगिक देश था, बाहर का माल वह बहुत कम खरीदता था।''[1] अंग्रेजों ने आर्थिक कारणों से भारत को अपना उपनिवेश बनाया, जो फिर साम्राज्यवाद में तब्दील हो गया। ''अंग्रेजों द्वारा भारत पर राजनीतिक आधिपत्य करने का मुख्य आकर्षण यही था कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का औपनिवेशिक उपांग बनकर इंग्लैंड की अर्थव्यवस्था और उद्योगों की समृद्धि के लिए आवश्यक खाद्य तथा कच्चे माल की संपूर्ति और ब्रिटिश उत्पादित वस्तुओं का विदेशी बाजार बन जाएँ।''[2]

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.32

2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.49

भारत के धन-वैभव से आकृष्ट होकर ही 17वीं-18वीं शताब्दी में विदेशी व्यापारियों ने व्यापार का ठिकाना भारत को बनाया। कच्चे माल का प्रमुख केंद्र होने के साथ-साथ ब्रिटेन ने अपने तैयार माल का बाजार भी भारत को बनाया। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नष्ट करके पूंजीवादी व्यवस्था कायम की। पुरानी सामंतवादी व्यवस्था जिसमें जमीन का मालिक किसान होता था और जिसे उपज का छठा भाग राजा को कर या लगान के रुप में देना होता था, उसे समाप्त करके नया सामंतवाद स्थापित किया। इस व्यवस्था ने किसानों को मजदूर बना दिया। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भारत में अंग्रेजों ने यहाँ के व्यापार का नाश करके औद्योगिकीकरण की जड़ ही काट दी। पहले यहाँ का माल खरीदकर अपने यहाँ बेचते थे, फिर खुली होड़ के बदले, कानून के सहारे यहाँ के व्यापार का गला घोंटने लगे।..... अंग्रेजी मशीने हिन्दुस्तानी दस्तकारी का मुकाबला न कर पाई थी। इसीलिए इंग्लैंड के औद्योगिकीकरण को बढ़ावा देने के लिए हिन्दुस्तानी माल पर कर लगाया गया था। राजकीय दबाव के जरिए-न कि खुली होड़ के जरिए- जब अंग्रेजों ने यहाँ के व्यापार और उद्योग धंधों का नाश कर दिया, तब स्वछन्द व्यापार नीति लेकर आए।''[1]

जनता से मालगुजारी वसूल करने और नियंत्रण रखने के लिए छोटे-छोटे जमींदारों को सामंत बना दिया। ये जमींदार अंग्रेजों के उसी प्रकार अधीन थे, जिस प्रकार उनके अधीन किसान। अंग्रेज जमींदारों का शोषण करते और जमींदार, किसानों का। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से पहले की भूमि व्यवस्था पर एक अंग्रेज से एक किसान ने सीधे शब्दों में कहा था- ''साहब जंगल, नदियाँ, पेड़, तालाब, सभी गाँव, तीर्थस्थान अब सरकार के हो गए हैं, उसने सब कुछ ले लिया है, हर चीज ले ली है।''[2]

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.33-34

2 उद्धृत डॉ. नगेन्द्र, भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ.341

भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व कायम करने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ के घरेलू ग्रामीण उद्योगों को तहस-नहस करके यहाँ की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का समूल ढाँचा नष्ट कर दिया। इंग्लैंड के कच्चे माल की आपूर्ति के लिए भारत को साधन बनाया, चाहे इसके लिए उन्होंने फिर रेल मार्गों का निर्माण करवाया या फिर सड़क मार्गों का या फिर नहरों का निर्माण करवाया। बहुत से विद्वानों का मानना है कि भारत के बौद्धिक विकास और सामाजिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आत्मनिर्भर ग्रामों का विनाश आवश्यक था, जो अंग्रेजों ने किया। इसलिए ये लोग भारत में प्रगतिशील भूमिका का श्रेय अंग्रेजों को देते हैं। परन्तु भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्राचीन काल से ही मजबूत, सुदृढ़ और अक्षुण्ण थी। जो कि अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का माध्यम थी।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में विश्व में अपनी पहचान थी। भारत के अन्य राष्ट्रों से व्यापारिक संबंध थे। अंग्रेजों द्वारा भारत पर अधिकार करने के बाद भी भारत का व्यापार अन्य राष्ट्रों से हो रहा था। डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं- ''पुनर्जागरण काल के यूरोप से उसी समय के भारत की हालत अच्छी थी। यहाँ खेती और कारीगरी का अलगाँव बहुत पहले से चला आ रहा था। यहाँ व्यापार की बड़ी-बड़ी मंडियाँ आबाद थी। उनमें देशी खपत के लिए और विदेश में बिक्री के लिए भी माल इकट्ठा किया जाता था।''[1]

1853 में भारत की उपज ईरान और तुर्की होते हुए भी यूरोप पहुँच रही थी। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी, परन्तु फिर भारत के सूती माल की खपत अमेरिका और अन्य देशों में ज्यादा थी। औद्योगिक क्रांति के पहले समय में भी भारत की स्थिति अन्य यूरोपीय राष्ट्रों से अच्छी थी। यहाँ व्यापार की बड़ी-बड़ी मंडियाँ जैसे- आगरा, बनारस, मदुरई, लखनऊ आदि पहले से ही आबाद थी। ढ़ाका की मलमल

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.192

अपनी खूबसूरती के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध थी, परन्तु अंग्रेजों ने भारतीय उद्योगों का समूल नाश करके मशीनों से व्यापार आरम्भ किया। जिससे लाखों बुनकर और कारीगर तबाह हुए। डॉ. शर्मा कहते हैं कि- ''जोर जबरदस्ती से, धोखेबाजी से, सामंतों की मदद से गरीब किसानों को फौज में भरती करके, उन्हें अपने ही देशवासियों से लड़ाकर, अंग्रेजों ने भारत पर अधिकार किया। यहाँ के उद्योग और व्यापार का नाश किया।''[1]

ईसाई मिश्नरियों का आगमनः-

भारत में आपसी फूट, वैमनस्य और द्वेष भाव इतना अधिक था कि उसका फायदा अंग्रेजों ने उठाया। भारत पर राजनीतिक प्रभुत्व प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों को भारत की ऐतिहासिक, सामाजिक परिस्थितियों को समझने की आवश्यकता पड़ी। जिसके लिए उन्हें भारतीय ग्रंथों का अंग्रेजी अनुवाद करवाना पड़ा। इस कार्य के लिए उन्हें अंग्रेजी शिक्षा के लिए स्कूल और कॉलेज खोलने पड़े। ईसाई मिश्नरियों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अंग्रेजी ग्रंथों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में करवाया। अपनी धार्मिक पुस्तकों को छापने के लिए प्रेस की स्थापना की। प्रेस ने आगे चलकर नवजागरण में सराहनीय भूमिका अदा की।

ईसाई मिश्नरियों द्वारा अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हिन्दू धर्म की निन्दा की जाने लगी। हिन्दू धर्म में प्रचलित रुढ़ियों, असमानता और भेदभाव को मुद्दा बनाकर लोगों को ईसाई धर्म की तरफ आकृष्ट करना आरम्भ कर दिया। श्री रामधारी सिंह दिनकर का मत है कि- ''मनुष्य सामान्यतः यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि उसका कोई भी धर्मबन्धु अपने धर्म को छोड़कर किसी अन्य धर्म को स्वीकार करे। इस दृष्टि से ईसाईयत का प्रचार भारत में भी लोकप्रिय नहीं हुआ है। किन्तु ईसाई धर्म प्रचारकों ने भारत की नई भाषाओं की जो सेवा की वह भूलने की चीज नहीं है।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1996, पृ.267

आवश्यकता तो उनकी अपनी थी कि यहाँ की भाषाओं को सीखकर लोगों को अपनी बात समझाएं। किन्तु यह कार्य उन्होंने बड़े मनोयोग से किया''[1]

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनुवाद कार्यः-

19वीं शताब्दी से पहले ही पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय ज्ञान-विज्ञान, वेद, दर्शन, उपनिषद् पर कार्य कर भारतीय ज्ञान के प्रति अपनी जिज्ञासा बढ़ाई। 1774 में सर विलियम जोन्स ने 'एशियाटिक सोसाइटी' की स्थापना कर संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ जैसे- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मनुस्मृति, ऋतुसंहार आदि का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया। अन्य विद्वानों जैसे- हेनरी टॉमस कोलब्रुक, अलैक्जेंडर, मिल्टन आदि ने भी भारतीय ज्ञान-विज्ञान का पुनरुद्धार किया। इसके अतिरिक्त भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण तथ्यों जैसे- सारनाथ के स्तूप की खोज, विजयनगर साम्राज्य की खोज, कल्हण की राजतंरगिणी की सूचनाएँ, सिक्कों के माध्यम से इतिहास की जानकारी दी। पाश्चात्य विद्वानों के इन सब कार्यों से भारतीयों में भी अपने ज्ञान-दर्शन को जानने की इच्छा जागी। बुद्धिजीवियों का जो वर्ग भारतीय संस्कृति को हेय और गवारू दृष्टि से देखता था, उनमें नया आत्मविश्वास आया और भारतीय भी समझने लगे कि हमने भी विश्व सभ्यता में योगदान दिया है।

सुधारवादी आंदोलनः-

तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार की कुप्रथाएँ, सामाजिक कुरीतियाँ, अंधविश्वास, धार्मिक रुढ़ियाँ प्रचलित थीं। सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह जैसी रुढ़ियाँ व्याप्त थीं। पुरुष कई विवाह कर सकता था, परन्तु विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति प्राप्त नहीं थी। समाज में निम्न, दलित, शूद्र और स्त्रियों की हालत दयनीय थी। स्त्री शिक्षा निषेध थी। निम्न वर्ग के लोग हर प्रकार के शोषण सहने के लिए अभिशप्त थे। 19वीं सदी के समाज सुधारकों और चिंतकों ने पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के

---

1 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ.457

सम्पर्क में आकर इन सामाजिक रुढ़ियों एवं प्रचलित बुराईयों की तरफ अपना ध्यान खींचा।

नवजागरण पूर्ण जागरण काल था। भारत में इसका आरम्भ बंगाल से माना जाता है, परन्तु यह सम्पूर्ण भारत में हुआ। कहीं पर पहले तो कहीं पर बाद में। राजाराम मोहन राय के ब्रह्म समाज, केशवचन्द्र सेन की प्रार्थना सभा, स्वामी विवेकानन्द सरस्वती के आर्य समाज, एनी बेसेंट की थिसॉफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण परमहंस के रामकृष्ण मिशन, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, केशवसुत के द्वारा आया। दक्षिण भारत में तेलुगु भाषा कंडुकुरी वीरेशलिंगम पंतलु ने हितकारिणी समाज की स्थापना करके विधवा विवाह और स्त्री शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया। केरल में नारायण गुरु ने नवजागरण की ज्योति जलाई। दलित और शोषितों के उत्थान के लिए इन्होंने विशेष रुप से कार्य किया। तमिल कवि सुब्रह्मण्यम भारती ने प्राचीन रुढ़ियों, अंधविश्वासों तथा सामाजिक नियमों के खिलाफ विद्रोह किया। वीर भारत तलवार के अनुसार, ''आधुनिक शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान का भारतीय सुधारकों पर महत्त्वपूर्ण असर परम्परा की जगह विवेक को प्रमाण मानने के रूप में सामने आया।''[1]

भारतीय नवोत्थान के आरम्भिक प्रयासों में संस्कृति, समाज, धर्म-दर्शन, जीवन-जगत से मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा से संबंधित है। इन सुधारवादी आंदोलनों ने भारतीय नवयुवकों की दिशा बदल डाली। पाश्चात्य शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने से नई जागृति आई। जीवन के विविध क्षेत्रों में दूरगामी परिवर्तन हुए। एक नई सोच विकसित हुई जोकि तर्क और वैज्ञानिकता से युक्त थी। अंग्रेजी ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आने से भारतीय साहित्य में नई विचारधारा आई। राजा और नवाबों के लिए लिखा जाने वाला रीतिकाव्य आम लोगों के लिए लिखा जाने लगा। महाकाव्य के स्थान उपन्यास, नाटक, निबन्ध लिखे जाने लगे।

---

1 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.120

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों में भी दो वर्ग थे- एक जो पाश्चात्य संस्कृति का समर्थक था और दूसरा आलोचक। परन्तु राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, स्वामी विवेकानन्द जैसे नेताओं ने पाश्चात्य और स्वदेशी संस्कृति का समन्वय करना सिखाया। पाश्चात्य संस्कृति के प्रगतिशील विचारों को अपनाकर अपने देश के धर्म-दर्शन, रीति-रिवाजों, ज्ञान-विज्ञानों को तर्क की कसौटी पर कसना सीखा। दूसरे पाश्चात्य संस्कृति के समर्थकों की भी आँखे खुल गई। भारतीय चिंतकों रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महषि अरविंद ने भारतीय संस्कृति पर गर्व करने की भावना को जन्म दिया। विवेकानन्द ने विश्व पटल पर भारतीय संस्कृति का महत्त्व स्थापित किया।

वीर भारत तलवार के अनुसार, ''यह समझना भ्रामक होगा कि भारतीय नवजागरण सिर्फ पश्चिमी विचारों के सम्पर्क की सीधी-सरल देन था। वास्तव में यह दो विचार दृष्टियों की तकरार से पैदा हुई बैचेनी का नतीजा था। नई शिक्षा में विकसित होने वाले हर युवा भारतीयों को नए पश्चिमी ज्ञान और अपनी परम्परा के जैसा तीखा द्वंद्व महसूस होता था, वैसा पहले किसी भी दौर में नहीं हुआ। कई सुधारकों ने शिक्षा से अपने जीवन में मचने वाली खलबली और उसके क्रान्तिकारी प्रभावों की चर्चा की है।''[1]

भारतीय संस्कृति के साथ पाश्चात्य संस्कृति के मेल से आधुनिक राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय चेतना का जन्म हो रहा था। परन्तु मुख्य आधार भारतीय संस्कृति ही थी। वह संस्कृति जिससे राजाराम मोहन राय ने उपनिषदों को आधार बनाया, तो विवेकानन्द ने वेदांत का, स्वामी दयानन्द ने वेदों को आधार बनाया तो तिलक और गांधी सरीखे नेताओं ने गीता का आधार बनाया। अंग्रेजी साम्राज्यवाद ओर उपनिवेशवाद की समस्याओं ने उनके विचारों को नयी दिशा देने का कार्य किया। हिंदी साहित्य में भारतेंदु और उनके मंडल ने यह कार्य किया। शंभुनाथ का मानना है कि भारत के अलग-अलग भागों में नवजागरण को देखने की अलग-अलग प्रवृत्ति रही है। बंगाल

---

1 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.120-21

वाले सबसे पहले नवजागरण का उद्‌भव अपने प्रान्त में स्वीकार करते हैं। हिंदी नवजागरण को हिंदी पट्टी के बाहर वाले लोग स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार महाराष्ट्र नवजागरण या तमिल नवजागरण का भी अपने-अपने जातीय विवाद रहे हैं। इसी बीच शंभुनाथ स्वीकारते हैं कि- ''पिछले लगभग पचास सालों के नवजागरण विवाद में उभरकर यह आया है कि बांग्ला नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व बुद्धिवाद है (राजाराम मोहन राय), जबकि हिंदी नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व राष्ट्रवाद है (1857 का स्वाधीनता संग्राम)। महाराष्ट्र नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व दलित चेतना (ज्योतिबा फुले) और सुधारवाद रानाडे है। तमिल नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व ब्राह्मणवाद विरोध और द्रविड़ चेतना (नायकर-पेरियार) है। इसी तरह केरल नवजागरण का केंद्रीय सारतत्व दलित चेतना (नारायण गुरु) है।''[1]

1857 का विद्रोहः-

डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''पलासी के युद्ध के 100 साल बाद अठारह सौ सतावन की लड़ाई शुरू हुई और दो साल तक चली। अंग्रेजों के भारत से निकालने के लिए इस संग्राम में बादशाह, नवाबों, सामन्तों, जमींदारों, किसानों, बुद्धिजीवियों- जनता के प्रायः सभी वर्गों के लोगों ने भाग लिया।''[2] आधुनिक भारतीय नवजागरण 1857 के विद्रोह से आरम्भ होता है। इस विद्रोह के कारण जिस राष्ट्रीय चेतना का विकास होता है वह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ चलने वाले संघर्षों का मूल आधार बनती है, जैसे- नील विद्रोह (1859-60), जयंतिया विद्रोह (1860-63), कूका विद्रोह (1869-72), महाराष्ट्र के किसानों का मोर्चा (1875), रंगा विद्रोह (1879-80) आदि ऐसे ही विद्रोह थे। 1857 से पहले भी विद्रोहों की एक लम्बी परम्परा दिखाई पड़ती है, परन्तु उनका राष्ट्रीय स्वरूप न होने के कारण वे अंग्रेजों द्वारा दबा दिए

---

1 डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.398

2 डॉ. रामविलास शर्मा, स्वाधीनता संग्रामः बदलते परिप्रेक्ष्य, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2003, पृ.01

गए, जैसे संन्यासी विद्रोह, आदिवासी विद्रोह, संथाल विद्रोह, भील विद्रोह, गूजरों का विद्रोह, वहाबी आंदोलन आदि। परन्तु 1857 का मुक्ति संग्राम धर्म, जाति, वर्ण को भुलाकर पूरे देश में लड़ा गया था। हिन्दू-मुस्लिम दोनों ने बहादुरशाह ज़फर को भारत का एकमात्र बादशाह मान लिया। सभी राजा, सामंत और नवाब एक झंडे के नीचे एकत्रित हो गए थे। डॉ. नगेन्द्र का कथन है- ''इन सिपाहियों में उच्च, निम्न वर्ण के हिन्दू एवं मुसलमान दोनों शामिल हो गए थे, इसलिए यह असांप्रदायिक राष्ट्रीय, सांस्कृतिक स्वाधीनता का युद्ध था। देश भर में रचित साहित्य, लोकगीतों का सार भी यही निकलता है कि, यह प्रथम मुक्ति संग्राम ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा प्रेरित सम्प्रदायवाद, धर्मवाद तथा जातिवाद की करारी हार थी।''[1]

सन् 1857 के विद्रोह को कुचलने के लिए अंग्रेजों ने हर अनैतिक तरीके अपनाए। हिंदू-मुस्लिम दंगे करवाने के लिए हर अनैतिक प्रयास किए, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। जिस 'फूट डालो राज करो' की नीति से ब्रिटिश साम्राज्य शासन कर रहा था उसकी यह करारी हार थी। डॉ. नगेन्द्र का कथन है कि- ''इस स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व फौजी वर्दी में किसान-मजदूरों ने किया और देशी राजाओं-नवाबों ने इसमें जनता की सहायता की और इस स्वाधीनता संग्राम में ऊँची जातियों का साथ भी निचली जातियों ने दिया था। अपनी मूल भावना में यह युद्ध धर्म, कर्म, जाति, संप्रदाय, प्रदेश आदि की भावना से मुक्त एक राष्ट्रीय चरित्र का संपूर्णता में वाहक था।''[2]

डॉ. प्रदीप सक्सेना का मानना है कि 1857 का विद्रोह सभी क्षेत्रों से प्रेरणा प्राप्त करता है। अपनी इसी बात का समर्थन करते हुए उन्होंने लिखा है, ''1857 की महान चेतना केवल हिन्दी प्रदेशों की वस्तु नहीं रह गई, उसे बंगाल ने अपनाया और

---

1 डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ.340

2 डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय, निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009, पृ.373

पंजाब ने भी। यदि खोज की जाएगी तो साम्राज्यवाद विरोधी जनमानस को बल देने वाला, समूचे राष्ट्र को लपेटने वाला यही संघर्ष उभर आएगा।''[1]

यह सामंत विरोधी जनजागरण था। उपनिवेशवादी ताकतों से सीधी टक्कर थी। इस विद्रोह ने भी उन भारतीयों की आँखें खोल दी जो अंग्रेजों का गुणगान करते नहीं थकते थे और यह समझते थे कि अंग्रेज सिर्फ व्यापार करने आए हैं। पूरे विश्व में अंग्रेजों की नीतियों का पर्दा फाश हो गया। यद्यपि इस विद्रोह को कुचल दिया गया परन्तु आगे के लिए मार्ग प्रशस्त हो गया।

मुस्लिम नवजागरणः-

19वीं सदी के पूर्वार्ध तक मुस्लिम समुदाय यह अनुभव नहीं करता था कि उनका विकास हिन्दुस्तान से अलग है। परन्तु अंग्रेजों ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति से सांप्रदायिक ढंग से हिन्दू-मुस्लिम की विभाजक प्रवृत्तियों का पोषण किया। 1857 के विद्रोह में हिन्दू-मुस्लिमों ने एक-जुट होकर अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह किया था। ''पुनरुत्थानवाद को बढ़ावा देने वाले आंदोलनों में वहाबी आंदोलन, बंगाल का फर्जिया और उत्तर प्रदेश में देववंद स्कूल का दारुल उलूम आदि के प्रभावशाली नेताओं सईद अहमद, मोहम्मद कासिम ननौतवी गंगोही आदि ने अंग्रेज शिक्षा, भाषा, शासन के विरुद्ध, घृणा भाव जगाकर अभियान चलाया था तथा भारत को 'दारुल हरूब' बताकर शुद्ध धर्म के पुनरुत्थान का उपदेश दिया।''[2] वहाबी आंदोलन, हाजी शरीय तुल्लाह के नेतृत्व में किसान आंदोलन पहले से ही हो चुके थे।

1863 में 'मोहम्मडन लिटेरेरी सोसाइटी' की स्थापना नवाब अब्दुल लतीफ तथा 'सेंट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन' की स्थापना 'सैयद अमीर अली' के प्रयासों से की गई। मुसलमानों के उत्थान के लिए सर सैयद अहमद ने 'साइंटिफिक सोसाइटी' (1864) तथा 'अलीगढ़ एंग्लो मुहम्मद ओरियन्टल कॉलेज' (1875) की स्थापना की।

---

1 डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996, पृ.402

2 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011, पृ.868-70

इंग्लैंड से लौटने पर सर सैयद ने अनुभव किया कि मुसलमान हर जगह पिछडे हुए हैं। मुस्लिम समाज में नई चेतना लाने के लिए शैक्षिक सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक जागृति के लिए प्रयास आरम्भ किए।

1.5 भारतीय नवजागरण : (1857 के संदर्भ में)

भारतीय नवजागरण का आरंभ बंगाल से माना जाता है। यह नवजागरण ब्रिटिश शासन के प्रभाव से पूरे देश में फैला। इस नवजागरण में ही सुधारवाद, राष्ट्रवाद, आधुनिकीकरण जैसे सिद्धान्त प्रचलित हुए। शंभुनाथ का कहना है कि- ''विवेक कहीं जब धार्मिक रुढ़ियों से टकराता है तो राष्ट्रवाद का, प्राचीनता से टकराता है तो आधुनिकीकरण का और आर्थिक विषमता से टकराता है तो समाजवादी सिद्धान्तों का उदय और विकास होता है।..... भारत में नवजागरण की एक अन्तर्धारा सुधारवाद तथा आधुनिकीकरण के लक्ष्य को लेकर चल रही थी, नेतृत्व में थे राजा राममोहन राय... भारत में नवजागरण की एक दूसरी धारा राष्ट्रवादी मुक्ति का लक्ष्य लेकर चल रही थी। संन्यासी, संथाल, भील, पोलिगार तथा कोल विद्रोह के भीतर से जिसकी अन्तिम परिणित हुई 1857 के राष्ट्रीय विद्रोह में।''[1]

भारतीय नवजागरण का प्रमुख लक्ष्य साम्राज्यवाद तथा सामंतवाद से छुटकारा पाने के साथ राष्ट्रवाद भी बन गया था। यह परिवर्तन बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और हिन्दी प्रदेश में हुआ। बंगाल, महाराष्ट्र में मुख्य परिवर्तन सुधारवाद के रुप में, हिंदी प्रदेश में राष्ट्रवाद के रुप में हुआ।

हिंदी पट्टी की यदि बात करें तो नवजागरण यहाँ साहित्य में दिखाई पड़ता है, सुधारवाद में कम। परन्तु अपने साहित्य के माध्यम हिंदी नवजागरण ने जो प्रभाव छोड़ा है, वह अद्वितीय है। इसी संदर्भ में डॉ. नामवर सिंह कहते हैं- ''जिस प्रकार अन्य देशों के, अन्यत्र के नवजागरण एक बृहत्तर मानववाद या मानवतावाद के अग्रदूत

---

1 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञानभारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.2

रहे हैं, उसी प्रकार यह हिन्दी नवजागरण भी उस मानवतावाद का अग्रदूत रहा है।''[1] इसी नवजागरण के परिणामस्वरुप भारतेंदु और उसके सहयोगी स्त्री शिक्षा, सर्व धर्म समभाव अंतर्जातीयता, सदाचरण का प्रचार कर रहे थे और साम्राज्यवाद के विरुद्ध जाकर 'स्वत्व निज भारत गहै' का प्रसार फैला रहे थे। निःसंदेह ये 1857 के विद्रोह के परिणाम स्वरुप ही था।

1857 का विद्रोह यद्यपि असफल हो गया था, परन्तु इसकी अंतर्वस्तु इतनी मजबूत थी, जिससे अंग्रेजी शासन की नींव हिल गई थी। इन विद्रोहियों में बंगालियों सी प्रखर बुद्धि और विवेक ना सही, परन्तु साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लड़ने का साहस अवश्य था। विद्रोह के साये में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख किसानों ने एकजुट होकर उपनिवेश के विरुद्ध 'राष्ट्र' की धारणा खड़ी की। जिसके परिणामस्वरुप भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी की जगह महारानी विक्टोरिया का शासन आ गया।

जिन पक्षों में हिन्दी नवजागरण, बंगला के नवजागरण से भिन्न था वह पक्ष थे- 1. स्वभाषा, 2. स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और 3. भारतीय जातियों की एकता। 1882 में बंकिमचन्द्र चटर्जी 'वंदे मातरम्' लिख रहे थे तो भारतेन्दु ने 'अंग्रेज स्त्रोतं' लिखा। इकबाल ने 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' 20वीं सदी के प्रारम्भ में लिखा, परन्तु 'अजीमुल्ला खाँ' ने 'हम है इसके मालिक, हिन्दुस्तान हमारा' 19वीं सदी के उत्तरार्ध में लिख दिया था। सामयिक समस्याओं पर भी तत्कालीन लेखकों ने जमकर लिखा। 1870 में भारतेन्दु द्वारा 'कविता वृद्धिनी' सभा की स्थापना की गई, जिसमें विभिन्न नाटक खेले जाते थे। काशीनाथ खत्री का 'बाल-विवाह' और अम्बिका दत्त व्यास का 'गौ-संकट' इसी सभा द्वारा खेले गए।

प्राचीन काल से ही देश में सांस्कृतिक एकता रही है परन्तु आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक एकता के अभाव में राष्ट्रीय चेतना 1857 के विद्रोह से पहले निर्मित नहीं हो पाई थी। राजाराम मोहन राय और भारतेंदु सरीखे नेताओं ने अपने अध्ययन

---

1 महेन्द्र राजा जैन, नामवर विचार कोश, नयी किताब, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2012, पृ.392

और यात्राओं के जरिए नए अनुभव प्राप्त किये और उनके देशप्रेम में राष्ट्रवाद भी सम्मिलित हो गया। इस राष्ट्रवाद का उद्देश्य सुधारवाद था, साम्राज्यवाद से विरोध था, स्वदेशी उत्थान था और राष्ट्रीय एकीकरण था। कर्मेन्दु शिशिर का कहना है, ''नवजागरण का ताप देश की किसी एक भाषा, एक जाति, एक समाज या विद्या में था- ऐसी बात नहीं। वह जगदीश चन्द्र बसु से भगत सिंह तक फैला हुआ था। वह तत्कालीन भारतीय भाषाओं के अलावा 'भारतीय अंग्रेजी' में था और भोजपुरी जैसी तमाम बोलियों तक अभिव्यक्त हुआ था।''[1]

1.6 हिन्दी नवजागरण का परिप्रेक्ष्यः

हिन्दी नवजागरण की सामाजिक, ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

हिन्दी नवजागरण हिन्दी की जातीय गद्य परम्परा से जुड़ा है। हिन्दी प्रदेश का नवजागरण 1857 से प्रेरणा प्राप्त करता है, इसलिए इसका स्वर राष्ट्रीय है। सन् 1857 के विद्रोह में साम्प्रदायिकता का स्वरुप दिखाई नहीं पड़ता। यही इसकी मुख्य विशेषता रही। भारतेन्दु युगीन साहित्य यथा राधाचरण गोस्वामी कृत, 'यमलोक की यात्रा' प्रतापनारायण मिश्र के 'कानपुर महात्मय' राधाकृष्णदास के 'निस्सहाय हिन्दू' में 1857 के विद्रोह का अप्रत्यक्ष रुप से हवाला दिया गया है। भारतेन्दु युग के प्रत्येक लेखक की अपनी विशिष्टता रही और हिन्दी नवजागरण में विशिष्ट योगदान। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राधाचरण गोस्वामी, प्रताप नारायण मिश्र, राधामोहन गोकुल, सरदार पूर्ण सिंह, राधाकृष्ण दास, बालमुकुन्द गुप्त आदि लेखकों ने न सिर्फ हिन्दी के विकास में अपना योगदान दिया बल्कि नवजागरण की मुख्य धारा को शक्ति दी। सामाजिक रुढ़ियों तथा अंधविश्वासों के खिलाफ अंत तक संघर्ष किया। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है कि- ''ये लेखक गद्य के लिए गद्य न लिख रहे थे, न भाषा सुधार के लिए भाषा सुधार रहे थे। भाषा उनके लिए एक साधन थी, साध्य नहीं। वह हिन्दी गद्य के रुप में सामाजिक उत्थान का एक ऐसा प्रबल शस्त्र गढ़ रहे थे, जो बिखरे हुए हिन्दी

---

1 कर्मेन्दु शिशिर, नवजागरण और संस्कृति, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2000, पृ.17

भाषियों को एक करे और उन्हें स्वाधीनता, शिक्षा और अपने जनवादी अधिकारों के लिए लड़ना सिखाए।''[1]

भारतेन्दु ने जिस जातीय गद्य की शुरुआत की उसका पहला स्वर था, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का पूर्ण विरोध और राष्ट्रीय चेतना का विकास। यद्यपि इस विरोध के साथ-साथ राजभक्ति के स्वर भी दिखाई पड़ते हैं। परन्तु ये उस युग की परिस्थितियों की देन थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भारतेंदु की असंगतियाँ उनके युग की सीमाओं से पैदा नहीं हुई। वे उनके वर्ग की असंगतियाँ हैं, उस काजल की कोठरी की स्याही है जिसमें भारतेंदु का जन्म हुआ था।''[2] कवि वचन सुधा के संपादकीय में भारतेन्दु स्वदेशी वस्तुओं के अपनाने की वकालत करते हैं। 'तदीय समाज' की स्थापना करके उन्होंन स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने पर जोर दिया। महात्मा गांधी से 50 वर्ष पहले उन्होंने यह बात कही थी। 'राष्ट्रीय चेतना के विकास में प्राचीन सांस्कृतिक विरासत की याद दिलाते हुए अशिक्षा, पिछडेपन, रुढ़ियों और कुरीतियों पर तीखा प्रहार किया।''[3] भारतेन्दु युग की जातीयता का दूसरा पहलू है- जनता से उनका जुड़ाव और सांस्कृतिक एकता। भारतेन्दु ने लोगों को लोकभाषा में लिखने को प्रेरित किया। लोकप्रचलित कथाओं को अपने नाटकों का विषय बनाया। ''भारतेंदु युग में हिन्दी गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस गद्य की भाषा अपवाद रुप में संस्कृत गर्भित है, समकालीन बंगला गद्य की भाषा से यह काफी भिन्न है। भक्ति साहित्य की भाषा लोकमुखी है, अधिकांश रीति साहित्य भी सरल, सहज भाषा में लिखा गया है। भारतेंदु युग के लेखकों की निगाह शहरी मध्य वर्ग के अलावा गांव के लोगों की ओर भी है।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.146

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.78

3 कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी जातीयता और गद्य परम्परा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2008, पृ.24

भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बालकिशन भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त के जीवंत गद्य की परम्परा निराला और शिवपूजन सहाय के गद्य में है।"[1]

भारतेन्दु युग के लेखक सिर्फ रचनाकार ही नहीं थे, वे समर्पित पत्रकार, हिंदी उन्नायक, स्वदेशी उत्थान के समर्थक, अंधविश्वासों-रुढ़ियों के खिलाफ लड़ने वाले, प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। सभी लेखकों ने कोई न कोई संगठन बना रखे थे। भारतेन्दु तो बनारस में ही थे, प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर में, प्रेमघन ने मिर्जापुर में, राधामोहन गोकुल ने पटना में संगठन बना रखे थे। इन संगठनों के माध्यम से जनहित के कार्य होते थे। इन लेखकों की विचारधारा एक-दूसरे से प्रभावित थी। भारतेन्दु इनके प्रेरणा स्त्रोत थे। इनका निजी हित एक ही था- राष्ट्रीय चेतना का विकास।

भारतेन्दु युग के लेखन में जातीयता का स्वर दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु ने तो भारत दुर्दशा, भारत जननी, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, अन्धेर नगरी जैसी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ तत्कालीन परिस्थितियों का उल्लेख करके राष्ट्रीय चेतना के प्रचार में लिखी। परन्तु अन्य लेखकों का गद्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है जैसे राधाचरण गोस्वामी की 'यमलोक की यात्रा' 'तन-मन-धन.....' 'बूढ़े मुँह-मुहाँसे...' 'कांग्रेस की जय' बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशंभु के चिट्ठे' प्रेमघन के 'हिन्द, हिन्दू और हिन्दी', 'विधवा विपत्ति वर्ष' आदि ने नवजागरण कालीन चेतना को आगे बढ़ाया। भारतीय किसानों की दुर्दशा का चित्रण 'प्रेमचन्द' से बहुत पहले 'प्रेमघन' ने कर दिया था।

ये लेखक राजनीतिक रुप से भी सक्रिय थे। राधाचरण गोस्वामी, राधामोहन गोकुल और बालकृष्ण भट्ट कांग्रेस से जुड़े हुए थे। विधवाओं की स्थिति सुधारने के लिए इन्होंने जी-जान लगा दी। प्रेस की आजादी के समर्थकों ने विपरीत परिस्थितियों में पत्र-पत्रिकाओं का तन-मन-धन से संपादन किया। बांकीपुर पटना की 'खडगविलास

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.42

प्रेस' ने नवजागरण में अविस्मरणीय कार्य किया। अनेक पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के साथ-साथ 'भारतेन्दु ग्रंथावली' भी यहीं से छापी थी। इन्हीं पत्र-पत्रिकाओं ने नवजागरण की ज्योति को गहन निराशा युग में भी जलाए रखा।

प्रायः ऐसा माना जाता है कि हिंदी नवजागरण की कोई अवधारणा ही नहीं है। भारतीय नवजागरण भी रिनेसाँ से उद्धृत माना जाता रहा है। परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' में नवजागरण की सैद्धान्तिकी दी है। उनकी इस पुस्तक की प्रथम पंक्ति 'हिंदी प्रदेश में नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से शुरु होता है।''[1] हिन्दी नवजागरण का स्वरुप प्रस्तुत करती है। हिन्दी प्रदेश का समर्थन 1857 के विद्रोह से था। इसी बात को 'इरफान हबीब' इस तरह से कहते हैं, ''अगर कहा जाए कि सिपाही विद्रोह 1857 के महाविद्रोह का मुख्याधार था तो उतने ही निश्चयपूर्वक यह भी कहा जा सकता है कि इसका रुप इतना बड़ा नहीं हो पाता अगर हरियाणा से लेकर बिहार तक के आम नागरिकों की हार्दिक सहानुभूति न मिली होती। इन्हीं क्षेत्रों के गांवों से इन सिपाहियों की भर्ती की गई थी। इस विशाल क्षेत्र में इस विद्रोह की रंगत अख्तियार कर ली थी।''[2] इससे पहले बंगाल के नवजागरण की चर्चा होती थी, परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण को एक विशेष सैद्धान्तिकी प्रदान की। उन्होंने कहा है, ''इस तरह जो नवजागरण 1857 के स्वाधीनता संग्राम से आरंभ हुआ, वह भारतेंदु युग में और भी व्यापक बना, उसकी साम्राज्य विरोधी, सामंत विरोधी प्रवृत्तियाँ द्विवेदी युग में और भी पुष्ट हुई। फिर निराला के साहित्य में कलात्मक स्तर पर तथा इनकी विचारधारा में ये प्रवृत्तियाँ क्रान्तिकारी रूप में प्रकट हुई।''[3]

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.9 (भूमिका से)

2 (सं.) शंभुनाथ, 1857, नवजागरण और भारतीय भाषाएँ, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 2008, पृ.28

3 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.19 (भूमिका से)

डॉ. रामविलास शर्मा ने हिंदी नवजागरण को हिन्दी जाति से जोड़ा है। नवजागरण से पहले उन्होंने हिन्दी जाति की चर्चा की है। इससे पहले हिंदी जाति जैसे पदबन्ध का प्रचलन नहीं था। सर्वप्रथम हिंदी भाषा और जातीयता की पहचान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल और हजारी प्रसाद द्विवेदी के लेखन में मिलती है। भारतेन्दु युग का नवजागरण पुराने नवजागरण का ही दूसरा पड़ाव है। यह नवजागरण लोक जागरण (भक्ति काल) का ही विकसित रुप है। हिंदी जातीयता की पहचान हिंदी नवजागरण से है। हिंदी जाति के अन्तर्गत हिंदू और मुसलमान दोनों ही आते हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा ने 1857 के विद्रोह को नवजागरण की पहली मंजिल मानते हुए इसका संबंध हिंदी जाति से जोड़ा है। इस संग्राम की विशेषताएँ इस प्रकार से थीः-

1. ''पूरे देश की एकता और एक सूत्रता की चिंता।
2. सामंत हित की चिंता के बजाय जनहित में राज्यसत्ता की मूल समस्या का निराकरण।
3. अंग्रेजों द्वारा जमींदारों, साहूकारों के प्रभुत्व को बढ़ावा देने की धारणा के प्रतिपक्ष में सामंत विरोधी धारणा को पुष्ट करने का ध्येय।
4. फौज में सिपाहियों, सूबेदारों के रुप में कार्यरत सर्वधर्म सकल वर्ग किसानों की अगुवाई में संग्राम।
5. सांप्रदायिक धारणाओं से मुक्त, कर्मनिष्ठ सैन्यदल का गठन।
6. हिंदी पट्टी में इस संग्राम की क्रियाशीलता।''[1]

1857 के गदर को डॉ. शर्मा ने गौरवशाली गदर कहा है, क्योंकि इस गदर में सभी ने छोटे-बड़े, हिन्दू-मुसलमान, अमीर-गरीब, सवर्ण-दलित सभी ने एकजुट होकर साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ लड़ाई लड़ी थी। इसी बात का समर्थन करते हुए

---

1 आजकल, (सं.) सीमा ओझा, आजकलः प्रकाशन विभाग, लोधी रोड़, नई दिल्ली, अंक-5, 2012, पृ.31

कर्मेन्दु शिशिर कहते हैं- ''पहली बार 1857 के स्वाधीनता संग्राम में हमारे समाज का पौरुष पूरे वैभव के साथ प्रभावशाली रुप से आया और सशस्त्र विद्रोह का सिलसिला लगातार दो वर्षों तक चलता रहा।''[1]

डॉ. शर्मा ने भारतेन्दु युग को नवजागरण की दूसरी मंजिल माना है। जो कार्य भारतेन्दु और उसके साथियों ने किया वह अविस्मरणीय है। इन्होंने हिंदी गद्य को हिन्दी जाति से जोड़ा और उसे व्यापक पहचान दिलाई। यद्यपि इनके विचारों में अन्तर्विरोध मिल सकते हैं परन्तु इनका ध्येय एक ही था। इस युग के लेखक चार-पाँच भाषाएँ जानते थे।

इनके व्यंग्य की मार तिलमिला देने वाली थी। गद्य की नवीनता इस युग की विशेषता थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है, ''भारतेंदु ने जिस संस्कृति का निर्माण किया वह जनवादी थी। उन्होंने धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिष्टाचार पर पुराहितों-मौलवियों का इज़ारा तोड़ने के उपाय बताए। विधवा-विवाह का समर्थन किया, बाल-विवाह का विरोध किया। कुलीनता, जाति-प्रथा, छुआछुत आदि का जोरदार खंडन किया, लोगों के धार्मिक अंधविश्वासों की कड़ी आलोचना की और स्त्रीशिक्षा पर खास तौर पर जोर दिया।..... भारतेन्दु ने जिस जातीय संस्कृति की नींव ड़ाली वह सारे देश के लिए थी, लेकिन वह हिन्दी भाषी जनता के लिए विशेष थी।''[2]

प्रगतिशील विचारधारा में गद्य का रुप स्वाभाविक बोलचाल के नजदीक पाया जाता है। यही रूप भारतेन्दु युग की विशेषता है। ''भारतेन्दु और इस युग के लेखकों ने इस संघर्ष मे तटस्थ न रहकर प्रगतिशील विचारधारा को अपनाया। यह विचारधारा

---

1 कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2008, पृ.10

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.94

राष्ट्रीय स्वाधीनता, जातीय एकता और जनवादी संस्कृति के उत्थान की विचारधारा थी। यह विचारधारा मनुष्य को अपनी शक्ति का भरोसा दिलाने वाली विचारधारा थी।''[1]

भारतेन्दु युग के साहित्य की मौलिकता इसी बात में थी कि वह सामन्तों, राजाओं के लिए नहीं अपितु आम जनता के लिए रचा जा रहा था। भारतेन्दु इस युग के अकेले लेखक नहीं थे। उनके समकालीन इस नई विचारधारा में उनसे भी आगे बढ़े हुए थे। द्विवेदी जी के योगदान को हिन्दी नवजागरण में अंकित करते हुए डॉ. शर्मा ने लिखा है, ''द्विवेदी जी ने हिन्दी भाषा के विकास के अनेक पक्षों पर ध्यान दिया। भारत में अंग्रेजी की स्थिति, भारतीय भाषाओं की समस्या, हिन्दी-उर्दू की समस्या और आपसी भेद, हिन्दी और जनपदीय उप-भाषाओं के संबंध आदि पर उन्होंने बहुत गहराई से विचार किया। भाषा परिष्कार का काम उनके व्यापक कार्यक्रम का एक अंश मात्र है और वह उसका सबसे महत्त्वपूर्ण अंश नहीं है।''[2]

नवजागरण के तीसरे दौर के रुप में डॉ. रामविलास शर्मा ने महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों के कार्यकाल का वर्णन किया है। सरस्वती पत्रिका का हिंदी नवजागरण में विशेष योगदान रहा है। सरस्वती पत्रिका में हिंदी प्रदेश के अतिरिक्त एशिया और यूरोप के नवजागरण की भी चर्चा की जाती थी।

जापान, चीन, तिब्बत, फिलीपिन, श्रीलंका आदि एशियाई देशों के साथ-साथ यूरोपीय देशों के नवजागरण की भी चर्चा द्विवेदी जी ने की। आचार्य द्विवेदी ने जापान का उदाहरण भारत के समक्ष प्रस्तुत किया कि कैसे अंग्रेजों का उपनिवेश हुए बिना भी कोई राष्ट्र तरक्की कर सकता है। जापानियों ने सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक एकता कायम करने के लिए आपसी भेदभाव, जाति-पाति, ऊँच-नीच को भुला दिया, वैसा भारत भी कर सकता है। इसी प्रकार चीन के नवजागरण से संबंधित लेख चीन

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.148

2 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.17 (भूमिका से)

के अखबार, चीन की जागृति, चीन के समाचार पत्र आदि प्रकाशित हुए, जिसमें चीनी युवकों से प्रेरणा लेने को कहा गया। भारतीय नवजागरण और हिंदी नवजागरण का संबंध जोड़ते हुए हिंदी नवजागरण को भी इसी क्रम में रेखांकित किया है। इसलिए डॉ. रामविलास शर्मा ने नवजागरण के तीसरे चरण के रुप में महावीर प्रसाद द्विवेदी की पत्रिका सरस्वती के महत्त्व को रेखांकित किया है। डॉ. शर्मा ने नवजागरण के तीनों चरणों का महत्त्व रेखांकित किया है तो इनकी कुछ अपनी-अपनी विशेषताएँ हैं। 1857 के संग्राम ने नागरिक मन में उत्साह का संचार किया तो भारतेन्दु मंडल और उसके साथियों ने राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता को कायम किया तो द्विवेदी और उनके साथियों ने बौद्धिक और प्रगतिशील विचारों में क्रियाशीलता बढ़ाई।

द्वितीय अध्याय :
हिंदी नवजागरण और भारतेंदु युग

2.1 हिंदी नवजागरण और प्रेस

2.2 पत्रकारिता का योगदान

2.3 नया पाठक वर्ग

2.4 हिंदी समाज पर प्रभाव

अध्याय द्वितीयः

हिंदी नवजागरण और भारतेन्दु युग

2.1 हिन्दी नवजागरण और प्रेसः

ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

प्रेस का संबंध समाचार पत्रों और पुस्तकों से रहा है। प्रेस के उदय से ही समाचार पत्र आम जन तक पहुँचा है। यद्यपि मध्यकाल में भी कहीं-कहीं पत्रकारिता के होने के का प्रमाण मिलता है परन्तु ये पत्र कहीं भी प्रकाशित नहीं होते थे, और न ही ये पत्र साधारण जनता के लिए उपलब्ध थे। ये पत्र राजदरबारों के उपयोग के लिए प्रकाशित किए जाते थे। इनके समाचार सीमित विषयों तथा शासकीय कार्य कलापों से संबंधित होते थे। मुगल शासन व्यवस्था में अलग विभाग 'समाचार संकलन एवं लेखन' होने की जानकारी मिलती है। इनमें वाक्यानवीस और अखबारनवीस आदि लेखकों की नियुक्ति की जाती थी। सामंत और स्वतंत्र राजाओं के यहाँ भी 'पारचानवीस' या 'अखबारनवीस' होते थे। इनका वेतन चार-पाँच रुपये मासिक होता था। ''अवध के बादशाह के यहाँ 660 अखबार नवीस होते थे। प्रकाशित समाचार पत्रों के यहाँ बादशाह का 'सिराज-उल-अखबार' प्रसिद्ध है। इन सब अखबारों में सत्य घटनाएँ ही लिखी जाती थी, यह नहीं कहा जा सकता। फिर भी वर्तमान ढंग के अखबारों के पहले इस तरह के अखबार थे।''[1]

प्रेस के उदय का मुख्य कारण धर्म माना जाता है। मूलतः धार्मिक ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए ही प्रेस की स्थापना हुई थी।

संसार में प्रेस का उदयः-

संसार में सर्वप्रथम चीनियों ने छापने का कार्य आरम्भ किया। ऐसा माना जाता है कि इनका पहला समाचार पत्र लगभग 2500 वर्षों तक चला। हमारे देश में यह

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.1

कला और छापने के यन्त्र पश्चिम से आए। यूरोप में भी प्रेस की स्थापना में धर्म मुख्य कारण रहा। ''इसी धर्म की प्रेरणा ने प्रेस और पत्र को भी जन्म दिया है। यूरोप में पहला प्रेस सन् 1440 ईसवी के मध्य में जर्मनी के मेअ वा मायन्स नगर में गॉटेनबुर्ग नाम के एक ईसाई ने खड़ा किया था। वह यह समझता था कि मैं बाइबिल छपा पाऊँ तो शाश्वत आनन्द प्राप्त करुँ। उसकी यह कामना मृत्यु से पहले 1456 में पूरी हुई। इसके कोई 21 वर्ष के अन्दर प्रेस इंग्लैंड पहुँचा। जहाँ कैक्सटन ने 1477 में अपना छापखाना खोला। इंग्लैंड में कैक्सटन ही छापखाने का जन्मदाता माना जाता है। इस घटना के एक सौ वर्ष बाद ईसाई प्रचारकों ने मलयालम और तमिल अक्षरों के प्रेस इस भारत भूमि में स्थापित किए।''[1]

प्राचीन काल में सर्वसाधारण जनता के लिए पत्र हस्तलिखित होते थे। इन्हें पढ़ने के लिए मूल्य (गजटा) देना पड़ता था। ई0पू0 60 में रोम में समाचार पत्रों का नियमित संग्रह जूलियस सीजर में 'एक्टाडार्यना' 'एक्टा सिनेटस' तथा 'एक्टा पब्लिक' के रुप में सरकारी घोषणाओं रोमन सीनेट और जनसाधारण को वित्त संबंधी जानकारी देने के लिए हस्तलिखित रूप में कराया था।''[2]

इन पत्रों की प्रतियाँ विशेष स्थानों पर चिपका दी जाती थी, और साधारण लोगों को इन्हें पढ़ने के लिए मूल्य देना पड़ता था। वेनिस नगर में भी 1556 ई0 में ऐसी पत्र के होने का का पता चलता है, जिन्हें पढ़ने के लिए मूल्य देना पड़ता था। आधुनिक प्रेस किसी एक राष्ट्र की देन नहीं है। यह बहुत से राष्ट्रों के विकास की लम्बी कहानी है। पहले जो समाचार पत्र निकाले जाते थे, उन्हें समाचार पत्रों की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि वह बहुत ही छोटे आकार के थे। एक छोटे पर्चे के समान इसका आकार था। गुटेन्बर्ग ने भी 42 पंक्तियों में बाइबिल प्रकाशित करवा

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.2

2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.75

तथा छोटे-छोटे पन्नों में पोप की आज्ञा को प्रकाशित करवाया। ''सबसे पहले समाचार पत्र यूरोप महाद्वीप के देशों में निकले। पहले पहल हालैण्ड में 1526 में पहला समाचार पत्र प्रकाशित हुआ। इसके बाद 1610 में जर्मनी में, 1622 में इंग्लैंड में, 1690 में अमेरिका में, 1703 में रूस में और 1737 में फ्रांस में पहला पत्र निकला। जो पहला साप्ताहिक समाचार पत्र 21 सितम्बर, 1622 को इंग्लैंड में निकला था, उसका नाम 'पोस्टमैन' था। इसके 80 वर्ष बाद लण्डन से 11 मार्च 1702 को पहला दैनिक पत्र प्रकाशित हुआ जिसका नाम 'डेली करेण्ट' था।''[1]

प्रेस का उदय (भारत) :

भारत में पहला समाचार पत्र 1780 में निकला। यह पत्र कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। यह 'इण्डिया गैजेट' और कैलकता पब्लिक 'ऐडवरटाइजर' के नाम से प्रकाशित हुआ और 40 वर्ष बाद दैनिक 'बंगल हरकारा' में मिल गया।

1866 में बैरिस्टर ग्रैहम ने 'इण्डियन डेली न्यूज' के नाम पत्र निकाला। इस पत्र की सहानुभूति भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से रही। अन्त में 1923 में देशबन्धु चितरंजन दास ने ग्रैहम साहब से इसे खरीद कर 'फॉरवर्ड' नाम से दैनिक पत्र के रूप में इसे निकाला। भारत में प्रेस की स्थापना का मुख्य कारण धार्मिक रहा है। ईसाई धर्म प्रचारकों ने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए बम्बई, तमिलनाडु, कलकत्ता, विपिन कोटा आदि में प्रेस की स्थापना करवाई। नागरी लिपि के टाइप हुगली के विलिकन्स तथा पंचानन कर्मकार के प्रयास के फलस्वरूप विकसित हुए।

पुर्तगालियों के प्रयत्नः-

यद्यपि पुर्तगाली अंग्रेजों से बहुत पहले भारत में व्यापार करने आए थे। बहुत से भू-भागों पर अंग्रेजों के जाने के बाद भी राज करते रहे। पुर्तगाली 'वास्को-डी-गामा' को अरब नाविक 'इब्रे मजिद' ने नशे की हालत में भारत का रास्ता

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, संत कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.4

बताया था। परन्तु पुर्तगाली अपनी धर्मान्धता के कारण अपने धर्म का प्रसार-प्रचार न कर सके। इन्होंने आते ही हिन्दू धर्म को तहस-नहस करने का प्रयास किया। देश के कई भागों में इन्होंनें हिन्दुओं की मूर्तियाँ तोड़ी। इसके विपरीत ईसाई मिश्नरियों ने धर्म को प्रचारित करने के लिए यूरोप से दो प्रेस मंगवाएँ। जो 1550 में भारत पहुँचे।

''पहला प्रेस गोआ में खड़ा हुआ। सन् 1557 से पहले इसमें क्या छपा यह तो मालूम नहीं, पर इस वर्ष पहली ईसाई पुस्तक पहले-पहल इस देश की भाषा में प्रकाशित हुई। यह कार्य मराठी या गोआनी में नहीं हुआ, बल्कि मलयालम भाषा में हुआ। दूसरा प्रेस तमिलनाडु के तिनेवेली में स्थापित किया गया। यह 1578 की बात है। सन् 1602 में मलाबार के विपिन कोटा में पादरियों ने तीसरा प्रेस खड़ा किया। सन् 1616 में अंग्रेज इस देश में पहुँचे थे तब बम्बई के पोर्चुगीजो ने वहाँ एक प्रेस स्थापित किया था।''[1]

1679 ई0 में पोर्चुगीजों द्वारा दक्षिण के अम्बल कांड में प्रेस की स्थापना का पता चला जिससे कोचीन तमिल शब्दकोश प्रकाशित हुआ। 1696 में फ्रांसिसी 'डी-सोजा' ने पुर्तगाली भाषा में एक पुस्तक छपवाई जिसका नाम था 'ईशु खीष्ट द्वारा पूर्व की विजय'। ''ईसाई पादरियों से उत्साहित और प्रेरित होकर कुछ भारतीयों ने अपने धर्म ग्रंथ मुद्रित और प्रकाशित करने का साहस किया। काठियावाड़ के 'भीम जी पारख' ने 1662 में बम्बई में छापखाना स्थापित किया।''[2] इसके लिए उन्होंने मुद्रण विशेषज्ञ 'हेनरी बालेस' को इंग्लैण्ड से बुलवाया। 1712 में ब्रिटिश भारत के तनजोर जिले में डेनमार्क के पादरियों द्वारा प्रेस खोलने का पता चला। पहले इसमें रोमन टाइप में छपाई होती थी परन्तु बाद में जर्मनी से तमिल टाइप मंगाए गए और 1714 में ईसाईयों की न्यू संहिता तमिल अक्षरों में छपी। ये सभी प्रयत्न पुर्तगाली पादरियों द्वारा किए गए।

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.6-7
2 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिंदी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.16

अंग्रेजों द्वारा प्रेस की स्थापना के प्रयत्नः-

अंग्रेजों द्वारा भी प्रेस की स्थापना के विषय में कुछ प्रयत्न किए गए। सन् 1674 में 'हेनरी मिल्स' नामक व्यक्ति को कोर्ट आव डायरेक्टर्स ने एक प्रेस, टाइप और कागज देकर बम्बई के लिए रवाना किया गया। परन्तु वह प्रयास सफल नहीं हो सका। ''1772 में मद्रास में एक छापखाना चल रहा था और 1779 में कलकत्ता में भी एक सरकारी प्रेस स्थापित था। यह चार्ल्स विलकिन्स के प्रबन्धाधीन था।''[1] विलकिन्स ने ही पंचानन नामक कारीगर को टाइप का साँचा बनाने का काम सिखाया था।

''भारत भूमि में पत्रकारिता का ऐतिहासिक प्रारम्भ कम्पनी से असन्तुष्ट स्वतन्त्र व्यापारी अंग्रेजों द्वारा हुआ। इस दिशा में पहला असफल प्रयत्न विलियम बोल्ट नामक व्यापारी ने (1768) समाचार पत्र प्रकाशन के लिए कलकत्ता के सार्वजनिक स्थलों पर नोटिस लगा कर दिया।''[2] डच जातीय विलियम बोल्ट कम्पनी का नौकर था। इसलिए उसे कलकत्ता से मद्रास और मद्रास से यूरोप जाना पड़ा। परन्तु जाते-जाते वह सूचित कर गया कि यदि कोई कलकत्ता में अखबार निकालना चाहे तो मैं प्रेस का सामान उपलब्ध करा सकता हूँ। इसके 12 वर्ष पश्चात् 29 जनवरी, 1780 ई0 को 'जेम्स आगस्त हिके' ने भारत का पहला अंग्रेजी समाचार पत्र 'बेंगाल गजट आव कैलकेटा जेनरल एडवरटाईजर' या 'हिके गजट' प्रकाशित किया।

हिके गजटः-

'हिके गजट' भारत भूमि का प्रथम अंग्रेजी समाचार पत्र था। 'हिके' के प्रथम पत्र से ही स्वाधीन चेतना का संकेत मिलता है। यह पत्र आकार में छोटा था परन्तु निर्भीक था। ''हिकी ने निर्भयतापूर्वक अपने पत्र में ज्ञान-कम्पनी के प्रशासन और

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सन्त कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005. पृ.8

2 उद्धृत डा. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ.77

भारत में बसे तत्कालीन अंग्रेज महाप्रभुओं की भष्ट्रता का पर्दाफाश किया। 'बंगाल गजट' दो पृष्ठ का मामूली सा पत्र था- 12 इंच लंबा और 8 इंच चौडा तथा दोनों और तीन कॉलम की छपाई।..... इसका विशेष स्तंभ 'ए पोयट्स कार्नर' हिकी स्वयं लिखता था। उसमें वह कलकत्ता में बसे अंग्रेज महाप्रभुओं के प्रति लोगों में प्रचलित चर्चाओं को उछालता था। हिकी ने तत्कालीन गवर्नर वारने हेस्टिंग्स को भी नहीं बख्शा। उसके आपत्तिजनक और खिल्ली उड़ाने वाले लेखन का परिणाम यह हुआ कि सरकार ने सबसे पहले पोस्ट ऑफिस में 'बंगाल गजट' को रोक लिया। बाद में हिकी को गिरफ्तार कर जेल में ड़ाल दिया तथा उसके पत्र को बन्द कर दिया।''[1]

प्रारम्भिक अंग्रेजी पत्रकारिता का उद्देश्य अंग्रेज सम्पादकों-प्रकाशकों द्वारा अंग्रेज व्यापारी पाठकों के मनोरंजन और जानकारी देना ही था। सामान्य भारतीय जनता का न तो इन पत्रों से कोई सम्पर्क था और न ही ये पत्र उनके हितों का प्रतिनिधित्व करते थे। भारतीयों के लिए इनका कोई महत्त्व नहीं था। इनका ऐतिहासिक महत्त्व सिर्फ इतना है कि इन्होंने भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के लिए नींव और ढाँचे का निर्माण किया। एक स्वाधीन संघर्ष परम्परा का सूत्रपात किया।

2.2 पत्रकारिता का योगदानः

'हिके गजट' के समय से ही पत्रकारिता का श्रीगणेश हो चुका था। नवम्बर 1780 में ही कलकत्ता से दूसरा पत्र 'इण्डिया गैजेट' निकला। इसके बाद फरवरी 1784 में 'कैलकता गैजेट' निकला। इसके बाद चौथा पत्र फरवरी 1785 में 'बेंगाल जनरल' के नाम से निकला। अंग्रेजी पत्रों का यह सिलसिला बिना रुके चलता रहा। प्रायः 10 वर्षों में लगभग 15 पत्र निकले लेकिन सभी अंग्रेजी भाषा में ही थे। सन् 1817 तक सभी पत्र अंग्रेजी में ही निकले।

---

1 (सं.) वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिताः विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006, पृ.29

पहला उर्दू पत्रः-

पहला उर्दू पत्र कलकत्ता से 1822 से पूर्व निकला। फारसी पत्र 'जामे जहांनुमा' पहले उर्दू में निकला था। यह पत्र कलकत्ता से हिंदी पत्रों से पहले निकला। ''फारसी में 'जामे जहांनुमा' नाम का यह पत्र हरिहर दत्त ने मार्च 1822 में निकाला था। कहते हैं कि पहले यह पत्र उर्दू में निकला था, पर जब नहीं चला, तब इसके साथ फारसी भी कर दिया गया और अन्त में यह केवल फारसी में कर दिया गया।''[1] परन्तु बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों के इतिहास' में लिखा है कि- ''सन् 1833 ई0 में उर्दू का पहला अखबार दिल्ली में जारी हुआ। उसका नाम मालूम नहीं क्या था।''[2] सैयदुल अखबार नाम का उर्दू अखबार सर सैय्यद अहमद के भाई मुहम्मद खाँ ने निकाला।

इसके बाद 1838 में 'देहली अखबार', 1850 में कोहेनूर (मुंशी हर सुखराय) 1859 में अवध अखबार, अखबारे आम, अवध पंच, हिन्दुस्तानी पैसा अखबार, अखबारे चुनार, मखजन जमाना आदि। इनमें से बहुत से पत्र राजनीतिक थे जैसे- अवध पंच, हिन्दुस्तानी, अखबारे आम, जमाना, अखबारे चुनार आदि कुछ रिसायतों के पत्र जो उर्दू और हिंदी में साथ-साथ निकले थे जैसे- ग्वालियर गजट, जोधपुर गजट, जयपुर गजट आदि। कुछ उर्दू पत्र धर्म संबंधी रहे हैं जैसे- झज्जर से निकलने वाला 'भारत प्रताप' जोकि पंडित विश्वंभर दयालु का पत्र था।

पहला फारसी पत्रः-

राजाराम मोहन राय जब इंग्लैंड से लौटे तो इनका सामाजिक बहिष्कार हो चुका था। जब समाज में इनका स्थान नहीं रहा तो इन्होंने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। हिन्दू कर्मकाण्डों का विरोध करने के लिए इन्होंने यह कदम उठाया। अपने

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.42-43

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखकः बालमुकुन्द गुप्त) उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.13

विचारों को देश भर में फैलाने के लिए फारसी में पहला अखबार 'मीरात-उल-अखबार' निकाला।

पहला प्रान्तीय (देशी) पत्रः-

सन् 1817 तक सभी पत्र अंग्रेजी में निकले। 1817 में ही बांग्ला भाषा में 'दिग्दर्शन' सीरामपुर के बैपटिस्ट-मिश्नरियों ने निकाला। इनका मूल उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करना था। इसी वर्ष कलकत्ता से 'बेंगाल ग्याजेट' और सीरामपुर से 'समाचार दर्पण' भी बंगला में निकला। 'दिग्दर्शन' के सम्पादक-प्रकाशन अंग्रेज थे। परन्तु 'बेंगाल ग्याजेट' बंगाली सम्पादक और प्रकाशकों द्वारा ही निकाला गया था। यह पत्र राजाराम मोहन राय की प्रेरणा से निकला था। 1820 में संवाद कौमुदी (बंगला) में निकला जो राजाराम मोहन राय के मित्र ताराचन्द दत्त और भवानी चरण बैनर्जी ने निकाला। मिश्नरी पत्र 'समाचार दर्पण' के विरोध में राजा साहब ने 'ब्रहैनिकल मैग्जीन' निकाली जोकि अंग्रेजी और बंगला दोनों भाषाओं में प्रकाशित होती थी।

पहला हिंदी पत्रः-

प्रथम हिन्दी पत्र से ही समाचार पत्रों की नीति का पता चल जाता है। शंभुनाथ ने लिखा है, ''हिन्दी का समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' (30 मई, 1826) है। इसका अर्थ है 'समाचार का सूर्य' यह अखबार 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु' निकला था, हिन्दुओं के हित के हेतु नहीं।..... इसके पहले अंक में जातीय आह्वान है 'सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देखकर आप पढ़ें और समझ लें और पराई अपेक्षा न करें, और अपनी बात की उपज न छोड़ें' हम देख सकते हैं कि यहाँ 'हिन्दू' लोगों की बात नहीं है। हिन्दी का संबंध मजहब से नहीं है।''[1] हिंदी का प्रथम पत्र 'उदन्तमार्तण्ड' जोकि 30 मई 1826 को 'पंडित युगल किशोर शुक्ल' ने कलकत्ता से प्रकाशित किया था। परन्तु कुछ अन्य विद्वानों ने अन्य पत्रों को हिंदी का प्रथम पत्र माना है। महादेव साहा और जे.एच. आनन्द ने अपने शोध ग्रन्थ 'पाश्चात्य विद्वानों

---

1 शंभुनाथ, भारतीय अस्मिता और हिन्दी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.17

का साहित्य' में 'उदन्त मार्तण्ड' को हिंदी का प्रथम पत्र न मानकर मिश्नरी पत्र 'दिग्दर्शन' और 'गास्पल मैग्जीन' को पहला हिंदी पत्र माना है। दिग्दर्शन के बारे में डॉ. रमेश कुमार जैन ने लिखा है, ''1 अप्रैल, 1818 से मार्च, 1819 और जनवरी से अप्रैल, 1820 तक इस मासिक के कुल 16 अंक अंग्रेजी व बंगला भाषा में प्रकाशित हुए। इसके तीन अंक हिन्दी में निकाले गये। इस तरह दिग्दर्शन बंगला का पहला पत्र होने के साथ ही हिन्दी का भी पहला पत्र था।''[1]

पहले यह पत्र अंग्रेजी और बंगला में निकले थे, परन्तु बाद में हिंदी में निकले। डॉ. जेनरी आनन्द ने भी हिंदी का प्रथम पत्र 'दिग्दर्शन' (1818) तथा 'गास्पल मैग्जीन' (1820) को माना है। उनके अनुसार 'गास्पल मैग्जीन' मिश्नरी पत्रिका का प्रकाशन कलकत्ता में 'बंगाल ओग्सलरी मिश्नरी सोसाइटी' (बी.ए.एम.एस.) संस्था ने दिसम्बर 1819 में अंग्रेजी-बांग्ला में स्कूल प्रेस से किया था।''[2] इसके बाद अंग्रेजी संस्करण बंद करके हिंदी संस्करण निकाले गए थे।

इसके अतिरिक्त बूंदी से प्रकाशित पत्र 'दरबार-रोज-नामचा' (1818-20) को भी संदिग्ध दृष्टि से प्रथम हिंदी पत्र माना गया है। परन्तु इस पत्र की भाषा और प्रकाशित काल की कोई सूचना नहीं है। इसी प्रकार 'दिग्दर्शन' की भी कोई प्रमाणिक प्रति उपलब्ध नहीं हो पाई है। 'लार्ड मेटकॉफ' पत्रकारिता के लिए मसीहा बनकर आए। उनकी उदार नीतियों ने समाचार पत्रों के दायरे को बढ़ाया। ''मैटकॉफ के समय (सन् 1835) से समाचार पत्रों की स्वतंत्रता का युग आरंभ हुआ और 1857 की क्रांति तक बिना किसी हस्तक्षेप के चलता रहा।''[3]

---

1 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.103
2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.81
3 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.25

1850 के बाद की पत्रकारिताः-

1857 की क्रान्ति का पत्रकारिता पर विशेष प्रभाव पड़ा। बहुत से पत्र-पत्रिकाओं ने अंग्रेजी सरकार की नीतियों का भांडाफोड किया। 13 जून 1857 को लॉर्ड कैनिंग द्वारा भारत के पत्रों से उत्तेजना को रोकने के लिए 'एडम एक्ट' लगा दिया, जो गलाघोंटू कानून के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 1857 के विद्रोह को समाचार पत्रों ने लोगों के बीच फैलाया था, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न कानून लगाकर पत्रों के स्वाभाविक विकास को रोकने का प्रयास किया। जून, 1857 में लार्ड कैनिंग ने एक वर्ष के लिए एक कानून लगाया जिसे गलाघोंटू कानून का नाम दिया गया। डॉ. रमेश कुमार जैन का कहना है, ''लॉर्ड केनिंग का प्रेस एक्ट, 1857 गलाघोंटू कानून (ळंहहपदह ।बज) के नाम से प्रसिद्ध है। इस एक्ट के माध्यम से सरकार किसी भी समाचार पत्र, पुस्तक या अन्य मुद्रित सामग्री के प्रकाशन या प्रसार को प्रतिबंधित कर सकती थी। यह एक्ट भारतीय और अंग्रेजी भाषा के पत्रों पर समान रूप से लागू किया गया था। इस कानून में प्रकाशक तथा मुद्रक का नाम एवं प्रकाशन स्थल का पता प्रकाशित करना भी अनिवार्य कर दिया गया।''[1]

इसके बावजूद भी बहुत से पत्रों का प्रकाशन हुआ। जिसमें से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का बंगला में सोमप्रकाश, टाइम्स ऑफ इण्डिया (अ0) 1857 में बम्बई से, 1865 में इलाहाबाद से पायोनियर (अ0) आदि मुख्य थे। सन् 1868 में अमृतबाजार (जेसोर जिले, कलकत्ता) से अमृतबाजार पत्रिका शिशिर कुमार घोष ने निकाली। यह अंग्रेजी और बांग्ला दोनों में निकलती थी। 1867 में गिरिशचन्द्र घोष ने 'बंगाली' नाम का पत्र अंग्रेजी में निकला। इन्हीं की चर्चा करते हुए किशोरीदास वाजपेयी कहते हैं- ''उन दिनों बंगालियों के अंगरेजी में दो ही दैनिक पत्र 'अमृतबाजार पत्रिका' और

---

1 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.26

बंगाली थे पर सरकार की ऐसी आलोचना करते थे कि शासक मण्डल में घबराहट फैल जाती थी।''[1]

अमृत बाजार पत्रिका ने समय-समय पर देशी राजाओं का पक्ष लिया। कलकत्ता के जमींदार राजा इन्द्रचन्द्र सिंह की सहायता से अंग्रेजी का 'स्टेटमैन' निकला। यह राजनीतिक पत्र था। 'सुलभ समाचार' नाम का सस्ता अखबार 1870 में ब्रह्म समाज के नेता केशवचन्द्र सेन ने निकाला। इसके अतिरिक्त 'बंगदर्शन' बंकिमचन्द्र चटर्जी ने, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'साधना', द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर ने 'भारती' आदि बांग्ला में निकाले।

बनारस अखबार हिंदी प्रदेश का पहला साप्ताहिक पत्र था। यह पत्र सन् 1845 में राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने बनारस से निकाला था। इसमें उर्दू, देवनागरी लिपि में लिखी होती थी। इस पत्र के माध्यम से राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द का उद्देश्य आम भाषा को राज-काज की भाषा बनाना था। हिंदी जनसामान्य की भाषा के साथ-साथ कचहरियों और अदालतों की भाषा बने। इस पत्र ने द्विभाषी पत्रों का दौर चलाया। आगे चलकर ऐसे बहुत से पत्र निकले जो दो या तीन भाषाओं में थे। बालमुकुन्द गुप्त ने लिखा है- 'ग्वालियर से 'ग्वालियर गजट' उर्दू-हिंदी में निकलता था पर अब वहाँ से उर्दू उठ गयी है, इससे वह पत्र हिंदी में निकलता है। इसी प्रकार जयपुर से 'जयपुर गजट' उर्दू-हिंदी में निकलता था, और जोधपुर से 'जोधपुर गजट' उर्दू-हिंदी ही में निकलता था जो अब अंगरेजी और हिंदी में निकलता है।''[2]

इन द्विभाषी पत्रों ने भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन दिया। भाषा के क्षेत्र में यह जागरण नया था, जो भाषाएँ अब तक सुप्त पड़ी थी, वह जागृत हो चली थी। इसी तरह अन्य समाचार पत्र, हिंदी भाषी क्षेत्र से दो या दो से अधिक भाषाओं में निकले जैसे- ग्वालियर बजट, पयामे आजादी, समाचार सुधावर्षण आदि।

---

1 अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, कबीर मार्ग, वाराणसी, 2005, पृ.74

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखक- बालमुकुन्द गुप्त), उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.52

''हिंदी-उर्दू दोनों ही उस समय हिंदू-मुसलमान जनता की संपर्क भाषाएँ थी। दोनों भाषाओं में तब तक धर्म के आधार पर सांप्रदायिक विभाजन और अलग-अलग स्पष्ट पहचान नहीं बनी थी। हिंदू-मुसलमान दोनों ही हिंदी-उर्दू पत्रों का संपादन तथा प्रकाशन करते थे। वे समझते थे कि हिंदी-उर्दू में से किसी एक भाषा की उपेक्षा करके उनकी पत्र-पत्रिकाएँ जीवित नहीं रह सकती है।''[1]

सन् 1868 में भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' निकाली। हिंदी के योगदान में भारतेन्दु के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। आरम्भ में इसमें कवियों की कविताओं का संग्रह प्रकाशित होता था और अन्य भाषाओं में कृतियों का हिंदी अनुवाद छपता था। परन्तु बाद में राजनीति, समाजनीति आदि पर लेख छपे। ''वह समय अंगरेज अधिकारियों के सामने हाथ जोडे खडे रहने का था। जब उक्त पत्र पाक्षिक होकर राजनीति सम्बन्धी और दूसरे लेख स्वाधीनता भाव से लिखने लगा तो बड़ा आन्दोलन मचा। यद्यपि हिंदी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे, तो भी हरिश्चन्द्र के ललित लेखों ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि कवि वचन सुधा के हर नंबर के लिए लोगों को टकटकी लगाए रहना पड़ता था।''[2]

1873 में भारतेन्दु ने 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' और 1874 में स्त्रियों के लिए 'बालोबोधिनी' निकाली। इन्होंने जन-साधारण के दुःख-सुख को पत्रकारिता से जोड़ा। ''इस पत्रिका ने अंध-रुढिवादिता, औपनिवेशिक साम्राज्यवाद तथा सामंती संस्कृति के विरुद्ध कभी खुल्लम-खुल्ला, कभी राजभक्ति की चाश्नी में भिगोकर, रोषपूर्ण व्यंग्यात्मक तेवर दिखलाए थे। फलतः इस सजग राष्ट्रीय पत्रिका की भी 100 प्रतियाँ सरकार ने लेनी बंद कर दी थी।''[3]

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.92
2 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.129
3 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.101

इस जागरण के दौर में पत्रकारिता के विषय राष्ट्रीय सामाजिक और सांस्कृतिक होते थे। ''उदाहरण स्वरुप इस काल में नारी-वर्ग के लिए जहाँ 'बालोबोधिनी' 'भारतभगिनी', 'सुगृहिणी', 'वनिता हितैषी' आदि प्रकाशित हुई, वहीं न्याय, नृत्य, नाट्य, कृषि, वाणिज्य, कविता, स्वदेशी वस्तु विचार तथा बालकों के लिए पृथक-पृथक पत्र प्रकाशित किये जाने लगे थे।''[1]

इसी उद्देश्य को लेकर अन्य पत्र-पत्रिकाएँ भी निकली, इसी बात का समर्थन करते हुए पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने कहा है- ''1872 से सार्वजनिक पत्रों की बाढ़ सी आयी। पहला पत्र अल्मोड़ा समाचार था।''[2] ''हिंदी दीप्तिप्रकाश कलकत्ते से 1872 में बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री ने निकाला था''[3] बिहारबन्धु के बारे में वाजपेयी ने लिखा है- ''यह साप्ताहिक पत्र भी कलकत्ते से ही निकला था।''[4]

नागरी अक्षरों का प्रचार करने के लिए नागरी प्रकाश, मेरठ से प्रकाशित हुआ। ''हिंदी प्रदीप विक्टोरिया प्रेस प्रयाग में छपता था।''[5]

ये सभी पत्र किसी न किसी उद्देश्य को लेकर निकाले गए थे। केवल धन कमाना ही इनका उद्देश्य नहीं था। इसी बात को इंगित करते हुए हिंदी प्रदीप ने कहा था- ''हमें अपने लेख द्वारा धन की आकांक्षा नहीं है, न ही पत्रों का 'सरकुलेशन' पाठकों की संख्या बढ़ी हुई चाहते हैं, न खून लगाए शहीदों में दाखिल होने की भांति हम नाम चाहते हैं कि बड़े लिक्खाडों में हमारी गिनती हो, न हमसे खुशामद चुनाचुनी और मिथ्या प्रशंसा की जाती है, तब कोरी कलम की कारीगरी से कौन रीझे।''[6]

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.111
2 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.135
3 वहीं, पृ.141
4 वहीं, पृ.141
5 वहीं, पृ.140
6 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.114

इस काल तक लोगों में हिंदी प्रेम की भावना आ चुकी थी। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के समक्ष हिंदी भाषा को स्थान दिलाना मुख्य मुद्दा था। जागरण का एक अन्य पहलू राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मुद्दे थे, जिन्हें हिंदी पत्रकारिता झकझोर रही थी। इन्हीं लक्ष्यों को लेकर कलकत्ता जैसे अहिंदी भाषी प्रदेश से हिंदी के बढ़िया अखबार निकले। कलकत्ता से 'हिंदी बंगवासी', 'आर्यावर्त', 'उचित वक्ता', 'भारत मित्र' आदि कई प्रसिद्ध पत्र निकले।''[1]

उस समय के अन्य मुख्य पत्रों में हिन्दोस्थान (काला काँकर), सारसुधानिधि (कलकत्ता), राजस्थान समाचार (अजमेर), ब्राह्मण (कानपुर), नागरी नीरद, नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी), भारत भगिनी, श्री वेंकेटश्वर समाचार (बम्बई), सरस्वती (इलाहाबाद) आदि थे। इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी की जी-जान से सेवा की। इनके योगदान को रेखांकित करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है- ''यह सुहृदय भाव और सहयोग की भावना उस युग की विशेषता थी। साहित्यिक लड़ाई-झगड़े तब भी होते थे, परन्तु उनके पीछे हिंदी सेवा की आकांक्षा थी। व्यक्तिगत आक्षेप और ईर्ष्या का प्रायः अभाव था।''[2]

कुछ महत्त्वपूर्ण पत्र जो निकलते तो थे देशी रजवाडों से, परन्तु अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कड़ा लिखते थे जैसे- ''जयपुरगजट, मारवाड़ गजट, सज्जन कार्ति सुधाकर, ग्वालियर गजट आदि। देशी राज्यों में अनेक कठनाईयों के होते हुए भी इन पत्रों ने देश और भाषा की जो सेवा की, वह अनुपम है।''[3]

इस दौर के पत्रों की मुख्य विशेषता यह रही है कि ये किसी जाति-विशेष धर्म समुदाय से बंधे नहीं थे। यद्यपि जाति-विशेष, धर्म सभाओं, आर्य समाज, सनातन

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.25

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.26

3 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.28

धर्मियों, ब्रह्मसमाजियों के पत्र-पत्रिकाओं की संख्या भी कम नहीं थी। ''परिणाम या संख्या में ही नहीं गुणवत्ता और श्रेष्ठ प्रतिमानों की दृष्टि से भी इस युग की पत्रकारिता गौरव की अधिकारिणी है। विवेच्य पत्र-पत्रिकाओं में युगीन राष्ट्रीय नवचेतना और अन्तर्विरोध कभी खुलकर और कभी राजभक्ति की आड़ में छिपकर व्यक्त हुए हैं।''[1]

इस काल की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ अल्पजीवी रही। सीमित साधन, लोगों को हिंदी की बजाय अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के लगाव के कारण, अंग्रेजी राज द्वारा विभिन्न एक्ट प्रेस की स्वतन्त्रता पर लगाया जाना इनके अल्पजीवी होने का मुख्य कारण बना।

सन् 1900 के बाद जो मुख्य पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई उनमें से जयपुर से समालोचक (चन्द्रघर शर्मा गुलेरी), सिपाही, हितवार्ता (स्त्रियों के लिए), अबला हितकारक, अभ्युदय, हिन्द केसरी (लोकमान्य तिलक), नृसिंह (किशोरीदास वाजपेयी), वीर भारत, भारतोदय, चाँद, उषा, गृहलक्ष्मी, स्त्रीधर्म शिक्षक, प्रताप (गणेश शंकर विद्यार्थी) भारतमहिला, नवजीवन, प्रभा प्रियवंदा आदि मुख्य थी।

वह दौर मासिक पत्रों का था। दैनिक पत्रों तक पहुँचने में पत्र-पत्रिकाओं को बहुत समय लग जाता था। ग्राहक संख्या के हिसाब से पत्र का भाग्य तय होता था। मासिक, अर्द्धमासिक, साप्ताहिक, अर्द्धसाप्ताहिक और उसके बाद दैनिक होने का क्रम आता था। अधिकतर प्रारम्भिक पत्र-पत्रिकाएँ दो भाषाओं उर्दू-हिंदी में निकलती थी। जो संस्करण हिंदी में निकलता था वही उर्दू में भी निकलता था। इसी तरह अन्य भाषाओं के साथ भी था जैसे बंगला, अंग्रेजी आदि। ''वस्तुतः पत्र-पत्रिकाएँ उस समय केवल विलास या शुद्ध मनोरंजन का साधन नहीं था। वे पाठकों के हित व समाज-सुधार, जन-जागृति वाली, ज्ञानवर्धक सामग्री को सर्वोपरि महत्त्व देती थी।''[2]

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.138
2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.119

दैनिक समाचार पत्रः-

"समाचार सुधावर्षण हिंदी सबसे पहला दैनिक पत्र कहा जा सकता है, यद्यपि यह हिंदी और बंगला दो भाषाओं में कलकत्ते से प्रकाशित होता था और इसके सम्पादक और प्रकाशक बंगाली सज्जन ही थे।"[1]

उस युग में दैनिक पत्र बहुत ही कम निकलते थे। हिंदी का प्रथम दैनिक समाचार पत्र समाचार सुधावर्षण है जोकि 1854 में कलकत्ता से हिंदी और बंगला दोनों में निकला था। यह बाबू श्यामसुन्दर सेन के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ। इस पत्र के अधिक भाग में हिंदी रहती थी और आधे से कम में बंगला। हिंदी पहले के पृष्ठों पर रहती थी और समाचार और सम्पादकीय लेख आदि हिंदी में रहते थी। बंगला भाग में व्यापार समाचार विज्ञापन दर आदि रहते थे। यह अहिंदी भाषियों द्वारा हिंदी का प्रथम दैनिक है।

दूसरा दैनिक पत्र हिन्दोस्थानः-

यह पत्र 1883 से 1885 तक हिंदी और अंग्रेजी में लंदन से प्रकाशित होता रहा। इसके बीच में उर्दू भी शामिल कर दी गई। सन् 1885 में कालाकंकर के राजा रामपाल सिंह ने इस पत्र को कालाकंकर से ही दैनिक कर दिया। 1891 से प्रति रविवार को अंग्रेजी संस्करण निकलने लगा। जो आगे चलकर प्रति सप्ताह दो अंक हो गए और चार अंक हिंदी में निकलने लगे।

यह पत्र सुधार कार्यों का पक्षपाती था। आरम्भ में कांग्रेस का समर्थक था, परन्तु अंत में कांग्रेस के विरुद्ध अपना मत प्रकट करता था। प्रतापनारायण मिश्र की 'ब्रैडला स्वागत' इसी पत्र में छपी थी। जिसका अनुवाद करके लंदन के अखबार में छपवाया गया। इस पत्र ने हिंदी भाषा का खुल्लम-खुल्ला पक्ष लिया। लंदन से यह हिंदी में प्रकाशित होता रहा। यह स्वभाषा के प्रति नया जागरण था, जो धीरे-धीरे पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जन-सामान्य में फैल रहा था। अधिक से अधिक सप्ताह

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.328

के 3 या 4 दिन उसे ही दैनिक माना जाता था। इस पत्र के बारे में पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी का कहना था कि- ''एक बात में इस पत्र की नीति सदा स्थिर रही और वह है हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि की हिमायत।''[1] यह पत्र राजा रामपाल सिंह का था जो अंग्रेजी ढंग से सुधार चाहते थे। इस पत्र के बारे में 'बाल मुकुन्द गुप्त' ने कहा है- ''राजनीति की भांति समाजनीति तथा और कई बातों में हिन्दोस्थान की राय इस देशवालों की राय से नहीं मिलती। वह सुधारक पत्र है और सुधार ठीक अंगरेजी ढंग पर चाहता है। अंगरेजी चाल उसे बहुत ही पसंद है, अंगरेजी अनुकरण उसे बहुत ही पसंद है।''[2]

दैनिक पत्र भारतोदयः-

'''भारतोदय' नाम का दैनिक पत्र भी सन् 1885 में ही कानपुर से निकला था। इसके सम्पादक और प्रकाशक सीताराम नामक गृहस्थ थे।''[3]

दैनिक पत्र सिपाही-ः-

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि 'भारतोदय' के सम्पादक 'सीताराम' ने ही सन् 1903 में दैनिक पत्र 'सिपाही' निकाला परन्तु 'भारतोदय' और 'सिपाही' दोनों ही आर्थिक अभाव के कारण बंद हो गए।

राजस्थान समाचारः-

1889 में अजमेर से 'मुंशी समर्थदान' ने साप्ताहिक पत्र 'राजस्थान समाचार' निकाला। 1894 में अर्द्धसाप्ताहिक हुआ, 1904 में दैनिक हुआ। इस पत्र पर आर्यसमाज का प्रभाव दिखाई देता था। इस पत्र के बारे में 'बाल मुकुन्द गुप्त' लिखते हैं- ''दैनिक होने के बाद से उसके लेखों का ढंग कुछ बदल गया है। पहले की अपेक्षा कुछ स्वाधीनता उसमें आ गई है। रजवाडों के मामलों में किसी-किसी बात पर

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.331

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखक- बालमुकुन्द गुप्त), उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.82

3 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.331

कभी-कभी वह कुछ बोलने भी लगा है।''[1] कुछ दिनों के पश्चात् अनवरत घाटे के बावजूद यह पत्र बंद हो गया।

दैनिक पत्र सम्राटः-

राजा रामपाल सिंह ने 'हिन्दोस्थान' के बंद होने पर नया पत्र निकालने की सोची। 'हिन्दोस्थान' अपनी देशप्रीति के कारण बंद हुआ था। इसलिए इसी धारणा को लेकर राजा साहब ने नया पत्र निकाला। 'हिन्दोस्थान' के बंद हो जाने पर सन् 1907 में 'सम्राट' नाम से द्वि-मासिक, साप्ताहिक और दैनिक संस्करण निकले।''[2]

दैनिक पत्र भारतमित्रः-

हिंदी नवजागरण में कलकत्ता के तीन मुख्य पत्रों का योगदान रहा है। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र के अनुसार- ''इस युग में कलकत्ते से तीन प्रमुख पत्र निकले- 'भारतमित्र' (1878), 'सारसुधानिधि' (1879) और 'उचितवक्ता' (1880), इन तीनों पत्रों के मूल प्रेरक और संचालक पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र थे।''[3] इन पत्रों ने प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी राजनीतिक तेजस्विता के दीप जलाए रखे। '' 'भारतमित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता' आदि पत्रों में अखिल भारतीय महत्त्व के प्रश्नों पर बहुत ध्यान दिया और अपने को केवल कलकत्ता का ही पत्र नहीं माना।''[4] इनके सम्पादकों की दृढ़ इच्छाशक्ति और देशभक्ति के कारण ये पत्र खड़े हो सके और जीवित रहे। इन पत्रों में से 'भारतमित्र' लम्बा चला और आगे चलकर दैनिक हुआ। इस पत्र को आरम्भ से ही अच्छी लोकप्रियता मिली। ''अपेक्षित आर्थिक सहायता प्राप्त होने पर दसवें अंक से 'भारतमित्र' साप्ताहिक हो गया। साल-भर में ही इसे कई संवाददाता मिल गए।''[5]

---

1 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखकः बालमुकुन्द गुप्त) उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.92

2 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.334

3 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.118

4 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.64-65

5 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.118

भारतमित्र के दैनिक संस्करण निकलकर बंद हो गए थे। ''1897 में ही छोटे आकार में 'भारतमित्र' का दैनिक अंक निकला और कुछ ही महीनों के बाद बंद हो गया। 1898 में पुनः भारतमित्र का 'दैनिक संस्करण' निकला जिसका वार्षिक मूल्य 12 रु. था। .....1899 में पुनः बड़े आकार और कम मूल्य में यह प्रकाशित हुआ।''[1]

इस युग की पत्रकारिता में राष्ट्रीय उग्र भावना दिखाई पड़ती है। देशी-विदेशी समाचारों के साथ-साथ लोगों की रुचि को परिष्कृत करने का कार्य भी इन पत्र-पत्रिकाओं ने किया। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी के अनुसार, '' 'समाचार सुधावर्षण', 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका', 'हिन्दी प्रदीप', 'भारतमित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता', 'मालवा अखबार', 'हिन्दोस्थान' आदि पत्र राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत थे। उस समय देश में जितनी और जिस प्रकार की राजनीतिक जागृति थी, उससे कुछ आगे बढ़कर उस समय की पत्रकारिता थी। तब पत्रकारिता के जरिये जो कुछ कह दिया जाता था, उतना तथाकथित राष्ट्रीय मंचों पर भी उच्चारित नहीं होता था। बीसवीं शताब्दी आते-आते समाचार पत्रों में राष्ट्रीय चेतना को इतना जागृत कर दिया कि ऐसा समझा जाने लगा कि उसके परिणामस्वरूप राजनैतिक जीवन अधिक उग्र हो गया।''[2]

यह एक नवीन जागरण था जो उस समय की पत्र-पत्रिकाओं में दिखाई पड़ता है। हिंदी के लिए आंदोलन, स्वदेशी उत्थान, बंग-भंग का विरोध, देश-दशा का वर्णन आदि ऐसे कई मुद्दे थे जिनमें लोग रुचि लेने लगे थे। लोग विचार करने लगे थे कि यह नवजागरण का प्रतीक था।

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.119

2 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.106

पत्रकारिता के सामाजिक और राजनीतिक मुद्देः-

तत्कालीन हिंदी पत्रकारिता ने हिंदी साहित्य को आम-जन तक पहुँचाया। इससे पूर्व रीतिकालीन साहित्य सिर्फ दरबारी संस्कृति का गुणगान करता था। इस काल की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ अल्पजीवी रही। फिर भी इनके उत्साह, समर्पित साधना और अदम्य जीवन आकांक्षा की प्रशंसा की जानी चाहिए। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने उस समय की समस्याओं पर लिखा। बाल-विवाह, सती-प्रथा, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, दहेज प्रथा जैसी वैवाहिक कुप्रथाओं से समाज को जागरूक करवाने का महत्त्वपूर्ण कार्य अनेक सामाजिक संगठनों के साथ मिलकर किया। कुछ लोग अंधविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ चले आंदोलनों का श्रेय अंग्रेजी सभ्यता को देते हैं परन्तु डॉ. रामविलास शर्मा ने ऐसे लोगों का खंडन करते हुए लिखा है, ''जाति-पाति का भेद उठाने के लिए, विधवा-विवाह करने के लिए, स्त्रियों में शिक्षा प्रचार करने के लिए हिन्दुस्तान की ही संस्कृति में काफी तत्व मौजूद थे। इन सुधारों के लिए पश्चिम का कृतज्ञ होने की जरुरत नहीं।''[1] देशी पत्र-पत्रिकाओं ने इस दिशा में जो कार्य किया वह अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित होकर नहीं किया।

बाल विवाहः-

कवि वचन सुधा का मत था- ''इस कुप्रथा के विरुद्ध उठाया कदम हिन्दू धर्म में हस्तक्षेप नहीं है क्योंकि मनुस्मृति और अन्य हिन्दू धर्म नियमों में विवाह की आयु 26 वर्ष मानी गई है।''[2] इसी प्रकार भारत मित्र ने भी बाल विवाह रोकने के लिए लिखा था- ''बंग देश से बाल विवाह उठा देने के लिए प्रेसीडेन्सी विभाग के स्कूल इंस्पेक्टर ने एक उपाय स्थिर किया है जो बालक विवाहित है वो कलकत्ते के

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.84

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.156

विश्वविद्यालय में प्रवेशिका परीक्षा न देने पावें। इस प्रकार का एक आइन करना उचित है।''[1]

स्त्री समस्याः-

इस प्रकार विधवा विवाह के समर्थन में भी बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ आगे आई। अल्मोड़ा अखबार, प्रयाग समाचार, ब्राह्मण, हरिश्चन्द्र चंद्रिका, भारतजीवन ने विधवा विवाह के साथ-साथ अनमेल विवाह, शिशु कन्या हत्या रोकने के लिए कानून की मांग की थी। स्त्री के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाया था। स्त्री शिक्षा पर जोर दिया। उचित वक्ता के 25 जून, 1881 के अंत में रामकृष्ण वर्मा का लेख प्रकाशित हुआ जिसमें लिखा था, ''एक दिन यह विधवाओं की आह आपत्ति लावेगी और लावेगी क्या वो आ ही चुकी, देखिए कौन-कौन सी दशा इस भारत की हुई है, यह इन्हीं विधवाओं के शाप का प्रतिफल है।''[2]

जाति प्रथाः-

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने जाति-प्रथा को बदलते समय के प्रतिकूल तथा देश के विकास में बाधक बताया। हिंदी प्रदीप ने कहा था- ''एक समय था जबकि जाति-पाति का अलग-अलग होना धर्म का प्रधान अंग था। इस समय जाति-पाति के झगड़े ही पर देश की फजीहत और सत्यानाश का दारमदार आ लगा है।''[3] अनेक समाज सुधारकों और सुधार संगठनों ने अस्पृश्यता आदि को सामाजिक विकास में बाधक बताया। इसके अतिरिक्त इन पत्र-पत्रिकाओं ने उस समय में जाति-पाति के झगड़े को छोड़कर एक होने की सलाह दी।

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.158

2 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.231

3 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.165

भ्रष्टाचारः-

भष्ट्राचार की समस्या प्रत्येक युग में रही है। भारतेन्दु ने भी 'अंधेर नगरी' के माध्यम से भष्ट्राचार को उजागर किया है। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने भी इस विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए लोगों को जागरूक करने का प्रयास किया। समय विनोद (15 जून, 1876)- ''कलियुग देवता को सिफारिश देवा और भष्ट्रा सुंदरी उनकी दोनों स्त्रियों ने अपनी चाल-ढ़ाल से ऐसा मोहित किया है कि मानो वह उसके दास ही बन गए। जिसने सिफारिश देवी की उपासना की वह धन-धान्य से पूर्ण हो गया। जिसने भष्ट्रा देवी का प्रसाद पाया वह संसार का डर तो क्या ईश्वर से भी निर्भय हो गया।''[1]

स्वदेशी उत्थानः-

एक महत्त्वपूर्ण कार्य जो इस काल की पत्र-पत्रिकाओं ने किया वह था स्वदेशी भाषा, स्वदेशी उद्योगों, स्वावलंबन आदि को महत्त्व देना। देश की उन्नति देशी भाषा में ही संभव है। भारतेन्दु ने 'स्वत्व निज भारत गहै' जैसा मूल वाक्य देशवासियों के हित में दिया गांधी जी के आगमन से लगभग 45 वर्ष पूर्व ही स्वदेशी वस्तुओं के अपनाने पर जोर दिया।

हिंदी आंदोलनः-

जागरण कालीन पत्रकारिता में स्वदेशी आंदोलन, हिंदी भाषा के लिए कितना ममत्व, दायित्व, टीस और लगाव था, वह आज भी हैरान करने वाला है। ''हिंदी आंदोलन का जन्म जागरण कालीन नव-चेतना के फलस्वरुप स्वभाषा, स्वशासन, स्वदेशी के उत्थान के परिप्रेक्ष्य में हुआ था, उसकी प्रकृति सांप्रदायिक नहीं थी। उसका मुख्य विरोध अंग्रेजी सरकार की हिंदी के प्रति तिरस्कार पूर्ण नीति और अंग्रेजी भाषा

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.167

से था।''[1] उस प्रतिकूल परिवेश में हिंदी को अदालतों, सरकारी दफ्तरों तथा शिक्षा संस्थाओं में दाखिल करवाना कोई हंसी-खेल नहीं था। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष अभियान चलाया था। बहुत से हिंदी लेखकों ने हस्ताक्षर अभियान चलाकर हजारों लोगों के हस्ताक्षर कराकर सरकार को ज्ञापन सौंपा था। हिंदी आंदोलन को सफल बनाने के लिए हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने विशेष अभियान चलाया। सभी ने मिलकर हिंदी के पक्ष में आवाज उठाई। बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारतमित्र' के बारे में लिखा है- ''सन् 1884 ई0 के 'भारतमित्र' में हिंदी का बड़ा आन्दोलन दिखाई देता है। लगातार कितने ही नम्बरों में सम्पादक महाशय ने हिंदी की हिमायत में लेख लिखे हैं।''[2]

हिंदी लेखकों और सम्पादकों ने भी हिंदी के पक्ष में हस्ताक्षर करवाकर हिंदी संबंधी मैमोरियल सरकार को भेजे। ऐसे ही एक लेखक राधाचरण गोस्वामी थे, जिनके बारे में रामविलास शर्मा ने लिखा है- ''सन् 1882 के शिक्षा कमीशन को इन्होंने 'हिंदी संबंधी मेमोरियल' भेजे जिनमें इन्होंने 21,000 के लगभग हस्ताक्षर करायें।''[3]

प्रेस एक्ट का विरोधः-

14 मार्च, 1878 को भारतीय भाषाओं के दमन के लिए 'वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट' लगाया गया। सभी पत्र-पत्रिकाओं ने एकजुट होकर इसके विरुद्ध लिखा। सारसुधानिधि, भारतमित्र, भारत-जीवन, उचित वक्ता आदि पत्र-पत्रिकाओं ने देशी समाचार पत्रों की स्वाधीनता के लिए सरकार से स्पष्ट शब्दों में अनुरोध किया था- ''हम लोगों की दुरावस्था जानने का मुख्य उपाय देशी समाचार पत्र हैं। जब तक इन पर विश्वास

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ. 255-256

2 (सं.) बृज किशोर वशिष्ठ (लेखकः बालमुकुन्द गुप्त), उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.131

3 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.65

स्थापित करके इनको पूरी स्वाधीनता नहीं दी जायेगी। तब तक प्रजा की यथार्थ प्रकृत अवस्था कभी नहीं जानी जायेगी।''[1]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने वैज्ञानिक चिंतन को महत्त्व दिया, श्रेष्ठ दार्शनिक चिन्तन प्रजातांत्रिक मूल्यों को महत्त्व दिया। अंग्रेजी सरकार से अपने विरोध को प्रकट करने के लिए तरह-तरह के व्यंग्य शास्त्रों का प्रयोग करते थे। राजा चरण गोस्वामी ने 'तुम्हें क्या' नामक लेख लिखा जिसमें उन्होंने अंग्रेजों पर सीधा व्यंग्य किया है। ''हम देशीय पत्र संपादक हैं, हमारा सत्य कहना तुम्हें बुरा लगा। हमसे खुशामद कराने के लिए प्रेस एक्ट की घुड़की दिखलाई, हमारे ऊपर अपना अधिपत्य जतलाया, पर तुम्हें क्या? हम झूठ तो नहीं बोलते, तुम्हारी वृथा खुशामद तो नहीं करते। और अंगरेजी अखबार तो तुम्हें सुना ही देते हैं। वह तो तुम्हारी संकीर्ण राजनीति पर संतोष नहीं करते फिर तुम्हें क्या?''[2]

''अगर ऊपरी तौर पर देखें तो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रभक्ति और राजभक्ति के बीच फंसी एक विचित्र ऊहापोह और असमंजस की मनोवृत्ति से अभिभूत दिखाई देती है, किन्तु गहराई से अध्ययन करें तो स्पष्टतः अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया जा सकता है कि वे केवल राजभक्ति का स्वांग कर रचनाओं को ऐसी शैली में लिखती थीं, जिससे वे कानून की गिरफ्त में न आ सके और जनता औपनिवेशिक शोषण और चरित्र को पहचान कर जाग जाये।''[3]

जागरण से पूर्व की पत्रिकाएँ (उत्थानकाल 1868-1885) एक बंधे हुए जल की तरह शांत थी। परन्तु राष्ट्रीय भावों का उदय होने से उनमें एक उन्मुक्त झरने की तरह गर्जन सुनाई देने लगी। राष्ट्रीयता की भावना प्रबलतर होती गई। फलस्वरुप भारतेन्दु की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हिंद केसरी, अभ्युदय, कर्मयोगी, प्रताप, सत्याग्रही, आज स्वतंत्र, वीर अर्जुन, आदि निर्भीक पत्र-पत्रिकाओं की एक अटूट

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.216
2 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरणः राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.74
3 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.247

श्रृंखला आरम्भ हुई। इन राष्ट्रभक्त पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों ने लाभ प्राप्त करने की इच्छा से निम्न स्तरीय सामग्री का चयन कभी नहीं किया। उन्होंने सदा ही राष्ट्रहित और जनता के प्रति ईमानदारी को महत्त्व दिया। उक्त पत्र-पत्रिकाओं ने सदा ही विपक्ष की भूमिका निभाई।

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का कहना है, ''भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में हिन्दी पत्रों और पत्रकारों की भूमिका नकारी नहीं जा सकती। उन्होंने श्रेष्ठ पत्र दिए और जीवन देश सेवा के लिए अर्पित कर दिया।''[1]

2.3 नया पाठक वर्गः

भारतेन्दु युगीन लेखक 'बालकृष्ण भट्ट' का कथन है- साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है। भारतेन्दु युग में आए नवजागरण के फलस्वरुप एक ऐसा पाठक वर्ग तैयार हो रहा था जो स्वराज की भावना से ओत-प्रोत था। उस समय देश राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा हुआ था। उपनिवेशवादी ताकतों ने आर्थिक-राजनैतिक रुप के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से लोगों को गुलाम बना दिया था। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने उस समय अंधेरे में रोशनी का कार्य किया।

इन सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के क्रांतिकारी विचारों को पढ़कर सुषुप्त जनमानस की नींद टूटी और भारतीय जनता ने अंग्रेजों के खिलाफ आंदोलन का बिगुल बजाया। आरंभिक पत्र-पत्रिकाओं को कम ही ग्राहक मिले थे, क्योंकि उस समय हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं का उर्दू, बंगला और अंग्रेजी के सामने कोई वर्चस्व नहीं था। 1837 में पश्चिमोत्तर प्रांत की भाषा उर्दू हो जाने के कारण हिंदी पत्रकारिता पिछड़ने लगी। हिंदू मुस्लिम जनता का झुकाव उर्दू, अंग्रेजी पत्रकारिता की ओर हो गया था। 1826 में 'युगुल किशोर शुक्ल' ने कलकत्ता से प्रथम हिंदी पत्र 'उदन्त मार्त्तण्ड' निकाला। परन्तु इसके बाद भी हिंदी और अन्य भाषाओं के पत्रों का विकास तीव्र गति से नहीं हो

---

1 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.10 (प्राक्कथन से)

पाया। इसके बाद के मुख्य हिंदी अखबारों में बनारस अखबार (1845) प्रसार संख्या-90, शिमला अखबार (1848) प्रसार संख्या- 50, सुधाकर (1850) प्रसार संख्या- 50 आदि थे। 'उदन्त मार्तण्ड' भी डेढ़ वर्ष चलकर बन्द हो गया। कुछ देशी भाषाओं के पत्र ईसाई मिश्नरियों द्वारा निकाले गये। ये पत्र ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए निकाले गये थे। जैसे- समाचार दर्पण (1818), दिग्दर्शन (1818) आदि। इन्हीं का प्रतिरोध करने के लिए भारतीयों ने भी देशी भाषाओं के पत्र निकाले जैसे- बंगाल गजट, संवाद कौमुदी, समाचार चन्द्रिका, मीरात-उल-अखबार, बंगदूत आदि। ईसाईयों द्वारा प्रकाशित पत्र का यह फायदा हुआ कि लोगों की रुचि हिंदी तथा अन्य देशी भाषाओं की तरफ बढ़ने लगी। स्वाभिमान की खातिर लोग अपनी संस्कृति को बचाते हुए हिंदी और देशी पत्रकारिता की ओर अग्रसर हुए।

''सितम्बर 1828 ई0 की जी.स्टाक वैल की रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी भाषा में दो दैनिक, तीन अर्ध साप्ताहिक, एक फारसी का साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था। भारतीय भाषाओं के 6 पत्र (तीन बंगला, दो फारसी, एक हिंदी) छपते थे। 1830 में भारतीय भाषाओं के पत्रों की संख्या 16 हो गयी थी।''[1]

1850 ई0 तक हिन्दी की 10-12 पत्रिकाओं का ही प्रकाशन हो पाया था। इन्हें उचित ग्राहक संख्या नहीं मिलने के कारण इनका जीवन क्षणभंगुर था। 1850 के बाद पत्र-पत्रिकाओं की के दौर में प्रगति आई। लोगों का रुझान हिंदी और उर्दू के साथ-साथ देशी भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं की ओर बढ़ा। उर्दू-कचहरियों की भाषा थी तो हिंदी जनसामान्य की। इस काल में जो पत्र निकले वह द्विभाषी थे, कई पत्र तो दो से अधिक भाषाओं में थे।

1857 के विद्रोह से पहले इन भाषाओं में विभाजन नहीं था। उर्दू पत्रों के सम्पादक हिन्दू थे जैसे कोहेनूर- मुंशी हरसुख राय, आफताबे पंजाब-दीवान बूटा सिंह, अखबारे आम-मुंशी नवल किशोर आदि। ऐस विपरित परिस्थितियों में हिंदी पत्रकारिता

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.79

का विकास करना टेढ़ी खीर था। अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के शब्दों में- ''उस समय के इन पत्र संचालकों की प्रशंसा करनी चाहिए कि जब न तो बहुत से ग्राहकों की आशा थी और न ही विज्ञापनों की फिर भी इन्होंने केवल देशभक्ति और प्रजाहित कामना से प्रेरित होकर अपना धन, श्रम और समय ऐसे कार्य में लगाया, जिससे किसी प्रकार के लाभ की उन्हें कोई आशा न थी।''[1]

1857 का वर्ष राजनीतिक उथल-पुथल का था। उस समय के अंग्रेजों के अखबारों में भारतीयों के खिलाफ हिंसात्मक लेख लिखे जा रहे थे, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरुप मुम्बई समाचार, जामे जमशेद, रास्त गुफ्तार (सत्यवक्ता), पयामे आजादी जैसे पत्रों में भारतीयों की निर्दोषता सिद्ध की जाती थी। लॉर्ड कैनिंग ने उत्तेजना को रोकने के लिए सारे भारत में 'ऐडम रेग्युलेशन एक्ट' लगा दिया जो 'गलघोंटू कानून' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कानून के चलते बहुत से पत्रों पर मुकदमे चले जिनमें से 'समाचार सुधावर्षण', अमृतबाजार पत्रिका (बंगला), स्टेटमैन (अ0), बंगाली, संध्या, वन्दे मातरम् (बंगाली), केसरी (मराठी) आदि प्रमुख थे। इससे इन पत्रों की लोकप्रियता बढ़ी। केसरी के सम्पादक बाल गंगाधर तिलक पर आपत्तिजनक लेखों के कारण राजद्रोह का मुकदमा दो बार चला। तिलक ने माफी माँगने की बजाय जेल जाना उचित समझा। केसरी की ग्राहक संख्या 1885 में 2500 थी। तिलक के समर्थन में लाखों लोगों ने चंदा दिया। मुहम्मद अली जिन्ना ने तिलक का केस लड़ा, परन्तु सजा से बचा नहीं पाए। अंग्रेजी सरकार प्रेस की स्वतंत्रता को रोकने के लिए विभिन्न एक्ट लगा रही थी, जिससे स्वाधीनता की चेतना को रोका जा सके। इसी संदर्भ में लॉर्ड लिंटन ने वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, 1878 लगाया। ''इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को उन समाचार पत्रों पर कठोर नियंत्रण एवं दण्डित करने का अधिकार प्राप्त हो गया जो ब्रिटिश सरकार के प्रति राजद्रोह एवं भड़काने वाले लेख लिखा करते थे।''[2]

---

1 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005, पृ.121
2 डॉ. रमेश कुमार जैन, हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987, पृ.28

अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों, उर्दू-अंग्रेजी को बढ़ावा देना, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट आदि के परिणामस्वरुप लोगों में स्वहित की भावना को विकास हो रहा था। इसलिए विरोध में लोगों का झुकाव हिंदी और देशी भाषाओं की पत्रकारिता की ओर हुआ।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का नाम हिन्दी के प्रवर्तकों में माना जाता है। इन्होंने आसान हिन्दी निर्माण में क्रान्तिकारी कार्य किया। 1868 में इन्होंने युक्त प्रदेश की सरकार से अदालतों में पहली बार फारसी की जगह नागरी लिपि लागू करने की माँग उठाई। वीर भारत तलवार ने राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के महत्त्व को रेखांकित करते हुए कहा है, ''राजा शिवप्रसाद ने सरकार से कहा कि- जैसे राज-काज से फारसी भाषा को हटाया, उसी तरह अब उसकी लिपि को भी हटा देना चाहिए। इससे कई फायदे होंगे- जनता को अदालती कार्यवाही समझ में आ सकेगी, शिक्षा पूरी करने में कम समय लगेगा, देशी भाषाओं का विकास होगा और 'हिन्दू जातीयता' की भावना फिर से कायम हो सकेगी, जिसे हिन्दी नवजागरण कहा जाता है उसकी शुरुआत 1868 के इसी मेमोरेंडम से हुई थी।''[1]

1868 में भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' से नए युग का आरम्भ हुआ। इस पत्रिका के माध्यम से स्वदेशी संस्कृति को प्रोत्साहन देते हुए 'स्वत्व निज भारत गहै' जैसा मूल वाक्य दिया। इस पत्रिका के माध्यम से नए कवियों को प्रोत्साहन दिया जाता था। इसी पत्रिका के माध्यम से स्वदेशी संस्कृति को अपनाने की शपथ ली गई। 1873 में 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' से भारतेन्दु हिंदी को नयी चाल में ढलने की बात कहते हैं। इस पत्रिका से पाठक वर्ग नए विषयों की ओर आकृष्ट होता है। इस पत्रिका में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक विषयों पर लेख प्रकाशित होते थे और सामंती संस्कृति के खिलाफ कभी खुल्लम-खुल्ला तो कभी राजभक्ति की चाशनी में डुबोकर लेख लिखे जाते थे, जिससे अंग्रेजी सरकार ने क्रुद्ध होकर इसकी 100 प्रतियाँ लेनी

---

1 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.64

बंद कर दी। 1865 से लेकर 1900 तक पत्र पत्रिकाओं की संख्या 350 तक पहुँच चुकी थी। इसका मुख्य कारण पाठक वर्ग का आकर्षित होना था।

इस काल की मुख्य पत्रिकाएँ हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, सारसुधानिधि, हिन्दोस्थान, मित्रविलास, उचितवक्ता, नागरी नीरद, आनन्द कादम्बिनी, भारत जीवन, भारत मित्र इत्यादि थे। आगे चलकर भी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में निरंतर वृद्धि होती गई। ''उत्थान काल (1865-85) में लगभग 2 दैनिक, 30 साप्ताहिक, 5 पाक्षिक, 35 मासिक तथा प्रसार काल (1886-1900) में लगभग 31 साप्ताहिक, 7 पाक्षिक तथा 60 मासिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई।''[1]

इन पत्रिकाओं के विषय राष्ट्रीय चेतना, समानता, सामाजिक रुढियों के खिलाफ आवाज, नारी शिक्षा, स्वदेशी चेतना, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना था। भारतेन्दु युगीन पत्रकारिता आमजन से जुड़ी थी। एक ही व्यक्ति सम्पादक लेखक प्रकाशक, प्रूफ रीडर और अखबार पढ़ाकर सुनाने वाला होता था। भारतेन्दु युगीन लेखक लगभग चार-पांच भाषाएँ जानते थे। इन्होंने तत्कालीन समस्याओं पर जितना लिखा उतना ही लोकजीवन तीज-त्योहार, ग्राम्य जीवन पर भी लिखा। भारतेन्दु ने तो ग्राम गीत लिखने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया था और लोक भाषा में लिखने के लिए कहा। समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरुप होता है। इसी बात को इंगित करते हुए 'भारत मित्र' का प्रथम ही वाक्य था। ''सुसभ्य प्रजा हितैषी राजा लोग समाचारों को स्वाधीनता देकर उत्साहित करते हैं- क्योंकि समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधिस्वरुप होता है।''[2]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने केवल तत्कालीन समस्याओं पर लिखा, बल्कि उनके समाधान में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। पुराने और नए लोगों को अपने साथ

---

1 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.263

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.263

जोड़ा। हिंदी से संबंधित आंदोलन में इन पत्र-पत्रिकाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतेन्दु ने अपनी सम्पत्ति लुटाकर हिंदी की सेवा की। कार्तिक प्रसाद खत्री ने कलकत्ता से आसाम जाकर जंगलों में आदिवासी जातियों को हिंदी की शिक्षा दी। हिंदी आंदोलन में दस हजार के लगभग लोगों के हस्ताक्षर करवाकर ज्ञापन दिया। मेरठ के 'गौरीदत्त शर्मा' ने भी, कचहरियों में नागरी प्रवेश को लेकर जो आंदोलन हुआ, उसके लिए कई हजार लोगों के हस्ताक्षर करवाए। ''कचहरियो में हिंदी प्रवेश के लिए न जाने कितने आवेदन-पत्र दिए गये और इनमें हस्ताक्षर आदि कराने के लिए न जाने कितने आवेदन-पत्र दिये गए और इनमें हस्ताक्षर आदि कराने के लिए न जाने कितने व्याख्यान दिये गये और सभाएँ की गयी।''[1] जिसके परिणामस्वरुप सन् 1900 में कचहरियों में नागरी को प्रवेश मिला। इसके अतिरिक्त अन्य सभाएँ जैसे- हिंदी उद्धारिणी सभा, हिंदी वृद्धिनी सभा, कविता वृद्धिनी सभा, तटीय समाज, काशी नागरी प्रचारिणी सभा आदि। इन संस्थाओं ने लोगों को अपने साथ जोड़ा। नेता जो बात मुँह से कहने में डरते थे, वहीं इन पत्र-पत्रिकाओं के लेखकों ने अपनी लेखनी के माध्यम से कही। इन पत्रों के एक-एक अंक को लोग गंभीरता से पढ़ते थे। इन पत्र-पत्रिकाओं से अंग्रेजी सत्ता भी डरती थी। इसलिए प्रेस एक्ट लगाकर इनकी स्वाधीनता छीनना चाहती थी। परन्तु इन पत्र-पत्रिकाओं ने झुकना स्वीकार नहीं किया, चाहे अल्पाविधि में बंद हो गई।

''1857 का परवर्ती भारतीय मानस अवसादग्रस्त हो गया था, सरकारी दमनचक्र उग्र हो चला था जिसका एकांत लक्ष्य था- राष्ट्रीयता की उग्र चेतना को समूल उखाड़ फेंकना। इस प्रकार भारतीय पत्रकार के सामने दो कठोर मोर्चे थे। एक देशवासियों की मानसिक खिन्नता थी, दूसरी सरकारी दमन नीति। इस संक्रांति काल में हिन्दी पत्रकारिता के दूसरे चरण का निर्माण हुआ। संक्रांति की चुनौती ने जैसे भारतीय पत्रकारों को झकझोर कर जगा दिया था। इस जागृति ने भारतीय मानस-मनीषा को

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.38

जगाने में बड़ी भूमिका प्रस्तुत की।''[1] 1857 के बाद अंग्रेजी सत्ता ने छद्म वेश धारण किया और प्रगतिशील होने का दावा किया। परन्तु इन पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय जनता को आईना दिखाया। मुख्यतः 1870 के बाद की पत्र-पत्रिकाओं ने भव्य दरबार आयोजन (1877), वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट (1878), आर्म्स एक्ट (1879), इलबर्ट बिल (1883), कौंसिल सुधान कानून (1893) संबंधी विवाद दिखाकर भारतीय जनता को आईना दिखाया। ''तीव्र गति से बदलते इतिहास से दिग्भ्रमित जन-समुदाय को नयी सोच, नये आत्माभिमान और नये ज्ञान की ज्योति से सही मार्ग सुझाया था- ''उस युग के छोटे-छोटे प्रकाशित पत्र-प्रदीपों ने।''[2]

वह समय ऐसा था कि जब लोग अखबार की बातों को गीता की तरह सत्य मानते थे। इसलिए धीरे-धीरे पाठक इनसे जुड़ते जा रहे थे। अप्रशिक्षित जनता अप्रत्यक्ष रुप से इनसे जुड़ी हुई थी, क्योंकि बहुत से लोग ग्राहक इस शर्त पर बनते थे कि उन्हें पत्र पढ़कर सुनाया जायेगा।

भारतेन्दु युग की की प्रतिभा उस समय के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट हुई है। नाटक, सभा-संस्थाओं, भाषणों संगठनों के द्वारा लेखक अधिक से अधिक लोगों को अपनी तरफ जोड़ते थे और इन्हीं के माध्यम से लेखक अपने विचारों को जनता से अवगत कराते थे। पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अधिक दूरी पर समाचारों को भेजा जा सकता था।

इस युग से पहले पत्र-पत्रिकाओं की कोई जीवित परम्परा नहीं थी। परन्तु बहुत कम समय में बडी संख्या में पत्रों का निकलना हिंदी नवजागरण में इनकी सकारात्मक एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका का द्योतक है। इनमें से बहुत से पत्र अल्पजीवी रहे। इसका कारण वहाँ की परिस्थितियाँ हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है कि- ''लाहौर,

---

1 (सं.) वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिताः विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006, पृ.102

2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.171

बम्बई ओर कलकत्ता को यदि तीन सीधी रेखाओं में मिला दिया जाए तो जो त्रिकोण बनेगा, उसके भीतर देश का वह भाग आ जायेगा, जहाँ से इस प्रकार के पत्र निकले थे।''[1]

इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिंदी की बहुत सेवा की। हिंदी आंदोलन के साथ लाखों लोगों को जोड़ा। इन सम्पादकों ने तन-मन-धन से पत्र साहित्य में अभिवृद्धि की। इसका मुख्य कारण पैसा कमाना अथवा प्रसिद्धि प्राप्त करना नहीं था, अपितु जनता की सेवा करना, समाज की दूषित मनोवृत्तियों को दूर भगाना और अंग्रेजों के लोक राज्य की पोल खोलना था। साथ-साथ ऐसे भारतीयों पर भी व्यंग्य किया जो अंग्रेजों की राजभक्ति करते थे। 'भारतेन्दु' नामक पत्र में राधाचरण गोस्वामी ने 'मिस्टर बूट' नामक लेख लिखा जिसमें वे कहते हैं, ''मिस्टर बूट आप हैं हमारे प्यारे आंखों के तारे, अंग्रेजों के दुलारे। आप हैं काले, विलायती खाले, अंधेरे घर के उजाले, उन्नीसवीं सदी के साले। आप हैं अनमोल गोलमटोल पोलमपोल, खाली ढोल, बिल्कुल बेबोल। आप हैं बड़े-बड़े, कड़े-सड़े, जमीन में पड़े मजबूत तड़े।''[2]

उस समय के प्रेस संचालकों के सामने अनेक कठिनाइयाँ थी। विपरित परिस्थितियाँ, कम मूल्य के बावजूद उचित ग्राहक संख्या नहीं होना, समय पर मूल्य नहीं मिलना, प्रेस एक्ट का भय इत्यादि। फिर भी देश हित की कामना से पत्र-संचालक कार्य कर रहे थे। 'हिंदी प्रदीप' ने प्रथम ही अंक में स्पष्ट कर दिया था कि मुख्य उद्देश्य देश की भलाई है, रुपये कमाना नहीं।

'भारत जीवन' ने प्रजा का दुखडा रोना तथा राष्ट्रीय एकता मुख्य कर्त्तव्य बताया। 'सारसुधानिधि' ने भी देश की उन्नति, हिंदी का प्रचार करना, हिंदी लिखने वालों की संख्या में उन्नति करना, भारतीयों के मनोबल को प्राचीन तथा सामयिक घटनाओं के माध्यम से बढ़ाना मुख्य लक्ष्य रखा। 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' के पहले ही अंक

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.37
2 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरणः राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.59

में मनोरंजक प्रश्नावली छपी थी- 'यूरोपीय के प्रति भारत वर्ष के प्रश्न'। 'भारतमित्र' के पहले ही अंक में लिखा था- समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरूप होता है।

भारतेन्दु युग के पत्र साहित्य में मनोरंजकता के साथ प्रगतिशीलता भी है। देश-विदेश से संबंधित समाचार देने में वे अग्रसर रहते थे। इन पत्रों ने काबुल युद्ध, जुलू युद्ध, अंग्रेजों के अन्य देशों के युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन और उससे होने वाले अपव्यय का भी वर्णन किया है। जिससे अंग्रेजों की कूटनीति पाठकों के समझ में आए। डॉ. रामविलास शर्मा का कथन है- ''जनता में जागृति फैलाने का प्रधान साधन पत्र थे। पत्र साहित्य में उस समय की उग्र राजनीतिक चेतना भली-भांति प्रकट हुई है। भाषा और शैली में तब के पत्रकारों ने जो आदर्श अपने सामने रखा, वह हमारे लिए आज भी अनुकरणीय है।''[1]

उस समय के मुख्य पत्रों की प्रसार संख्या इस बात का संकेत है कि विपरित परिस्थितियाँ होते हुए भी कैसे लोग हिंदी की तरफ आकर्षित हो रहे थे। 'भारतजीवन' की प्रसार संख्या 2000 के लगभग, 'केसरी' की 1500 के लगभग, 'उचित वक्ता' की 1500 के लगभग थी। परन्तु कुछ पत्र जिनकी प्रसार संख्या कम थी, जैसे- कविवचन सुधा, हिंदी प्रदीप, हिंदुस्थान आदि बहुत महत्त्वपूर्ण थे। हिंदी प्रदीप का 32 वर्ष तक चलना इसी बात का प्रमाण है। मूल्य कम रखने पर पैसे नहीं मिलते थे। 'उचित वक्ता' के संपादकीय लेख 'कौन कहता है कि भारतवासियों में एका नहीं है?' मैं खीझ कर कहा था- ''पाठकों शायद आप लोगों को इस बात का अनुभव न हो, परन्तु हिंदी पत्रों के (केवल हिंदी पत्रों के नहीं वरन् देशीय समस्त भाषा के) संपादक तो इस बात को खूब अच्छी तरह से जानते हैं। वे लोग मुक्त कंठ से स्वीकार कर लेंगे कि संवाद

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.37

पत्रों के दाम न देने में भारतवासियों का ऐसा एका है कि दूसरे देशों में ढूँढने पर भी न मिले।''[1]

उस समय हिंदी के लिए परिस्थितियाँ विपरित थीं। हिंदी को कम ही लोग पढ़ते थे। ऐसे समय में पत्र संचालकों का अदम्य साहस ही था कि अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के बल पर लोगों को अपनी तरफ आकर्षित कर रहे थे। धीरे-धीरे ही सही लोगों का रूझान हिंदी पत्रों की तरफ बढ़ रहा था।

उन्नीसवीं सदी अंतिम दौर में पाठकों और संपादकों का गहरा रिश्ता था। पाठक बिना हिचक, बिना दुराव-छिपाव के सम्पादकों को कभी शिकायत, कभी प्रशंसा, कभी राष्ट्रीय समस्याओं पर अपने विचार प्रस्तुत करते थे। पुराने पत्रों की फाइलों में सैंकड़ों ऐसे पत्र संपादकों के नाम पर प्रकाशित हुए हैं। 'हिंदी प्रदीप' के पाठक का सम्पादक के नाम पत्र के कुछ अंश इस प्रकार से हैं :-

''मान्यवर, संपादक महोदय,

आपके प्रतिमास की सूचना देखकर मन में संदेह होता है कि मैंने मूल्य दिया या नहीं.....। क्या तू ही अकेला है, बहुतेरे पड़े हैं, क्या तेरे ही देने से संपादक का घाटा पूरा हो जाता है। इसी में सब रूपया बर्बाद कर देगा तो बीबी नसीबन को क्या देगा?..... जब से आप अपना पत्र भेजकर अपने उत्तेजक रूपी अमृत की घूँटी मुझे जबरदस्ती घुटाने लगे तब से अपना भला या बुरा पहचानने की कुछ अक्ल आ गई है। पर प्रकृति को शीघ्र बदल पाना महादुर्बल है। इसलिए आग्रह करता हूँ कि आप पत्र भेजना बंद न करें और हमारी सलाह माने तो एक बार नादेहन ग्राहकों की लिस्ट छाप दें।

अफसोस कि हम हिंदू कहलाते हैं और हिंदी को ही न चाहते- इतना कहने पर भी तो उत्तेजना न हो हिंदी के विपक्षियों का हिंदू होना अपराध है।''[1]

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.118

नवजागरण कालीन पत्रकारिता एवं पत्र-पत्रिकाओं की एक विशेषता रही है कि ये विभिन्न मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित कर रही थी। एक विशेष पाठक वर्ग का निर्माण हो रहा था जिस पर आधुनिक भारतीय समाज का खाका तैयार हो रहा था।

इस दौर की पत्रिकाएँ भारतीय समाज के उन हिस्सों को आलोकित कर रही थी, जो अब तक ज्ञान और प्रकाश से अछूता था। यह तथ्य रेखांकित करने योग्य है कि नवजागरण कालीन पत्रकारिता ने अपनी उपस्थिति को बेहद महत्त्वपूर्ण बना दिया था।

2.4 हिंदी समाज पर प्रभावः

भारतेंदु युग नवजागरण का युग था। इस काल में आई क्रांति ने सम्पूर्ण भारतीय समाज को झकझोर कर रख दिया था। इस युग में आई सैंकडों पत्र-पत्रिकाओं ने एक नई विचारधारा प्रस्तुत की, जिसमें स्वहित की भावना निहित थी। इस युग की पत्र-पत्रिकाओं के सिद्धान्त वाक्य को पढ़कर ही उनके उद्देश्य का अंदाजा लगाया जा सकता है। आरंभ से ही पत्र-पत्रिकाओं के मूल वाक्य में राष्ट्रीय भाव झलकता है। ''हिक्की ने 1780 में जो पहला भारतीय समाचार पत्र 'बंगाल गजट' अंगरेजी में निकाला, उसका आदर्श वाक्य था- 'सभी के लिए खुला, फिर भी किसी से प्रभावित नहीं'। भारतीय भाषाओं में पहला समाचार पत्र बंगला में था- 'समाचार दर्पण' (1818), जिसका आदर्श वाक्य था- दर्पण सौंदर्य देखने के लिए होता है। यह दर्पण विभिन्न वृतांतों और समाचारों का है।..... 1823 में ही हेस्टिंग्स ने प्रेस की स्वतंत्रता पर हमला कर दिया था। फिर भी 'उदंत मार्तंड' निकला, उसका आदर्श वाक्य था 'हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु'। भारतेन्दु ने 'कविवचन सुधा' में घोषणा ही कर दी 'स्वत्व निज भारत गहे'।''[2]

---

1 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.130-131

2 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञान भारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.172-173

इस युग के लेखकों ने भी तन-मन-धन से देश सेवा की, जिसका माध्यम उनकी लेखनी थी। हिंदी पत्रों के माध्यम से उन्होंने उस समय की ज्वलंत समस्याओं को उठाया, अंग्रेजी शासन का आईना भारतीय समाज को दिखाया। हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने में भी स्वहित की भावना निहित थी। हिंदी पत्र-पत्रिकाओं ने तत्कालीन समाज में बहुत से आंदोलन किए जैसे- हिंदी और उर्दू का वर्चस्व, गौ-रक्षा आंदोलन, नागरी आंदोलन, खड़ी बोली का आंदोलन, भाषा और व्याकरण से संबंधी आंदोलन आदि। इन विवादों में दो-तीन से भी अधिक पत्र भाग लेते थे, जैसे- 'हिन्दोस्थान' का 'खड़ी बोली विवाद', 'भारत मित्र' का 'भाषा की अनस्थिरता' संबंधी विवाद आदि। इसी संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि- ''भारतेंदु युग राजनीतिक, सामाजिक तथा भाषा संबंधी आंदोलनों का युग था।..... इन आंदोलनों के नेता पत्रिकाओं और पुस्तकों से ही संतोष करने वाले जीव न थे। नाटक सभा, व्याख्यान जो भी साधन मिलता, उसे काम में लाने में वे न हिचकते थे। नाटकों से भी एक सीधा ढंग जनता के सम्पर्क में आने का व्याख्यान का है।''[1]

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए उस समय जो कार्य हुआ वह आज भी महत्त्वपूर्ण है। डॉ. शंभुनाथ ने भारतेन्दु युग के लेखक अयोध्या प्रसाद खत्री के खड़ी बोली से सम्बन्धित विवाद के योगदान को अंकित करते हुए कहा है, ''अयोध्या प्रसाद खत्री की एक बड़ी देन है, उन्होंने जोरदार शब्दों में भाषा को जाति (कास्ट) और मज़हब से अलग किया, क्योंकि इसके बिना हिंदी क्षेत्र के लिए एक सर्वमान्य भाषा रूप का गठन मुश्किल था।''[2]

हिंदी साहित्य और भाषा के विस्तार के लिए अनेक सभाएँ, साहित्यिक संस्थाएँ, समितियाँ बनी। इनमें से बहुत सी आर्यसमाज की सभाएँ थी। कुछ सनातन धर्म तथा जातियों की सभाएँ थी। राधाचरण गोस्वामी जी की 'कवि-कुल-कौमुदी' प्रयाग की 'हिंदी

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975 पृ.38
2 शंभुनाथ, भारतीय अस्मिता और हिन्दी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.29

उद्धारिणी सभा', पटना का 'कवि-समाज' 'राँची में मातृभाषा-प्रचारिणी सभा, कार्तिक प्रसाद खत्री का 'मित्र समाज', सुधाकर द्विवेदी की 'विज्ञान प्रचारिणी सभा' और 'तुलसी स्मारक' आदि मुख्य थी। भारतेंदु ने अनेक सभाएँ स्थापित की और अनेक संस्थाओं को उनका योगदान प्राप्त था। 'कविता-वृद्धिनी-सभा', तदीय समाज, पेनीरोडिंग क्लब आदि भारतेंदु की संस्थाएँ थी। काशी नागरी प्रचारिणी सभा का कार्य इस दिशा में उल्लेखनीय रहा।

सिर्फ हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए ही नहीं बल्कि अन्य समसामयिक समस्याओं की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित करने के लिए इन सभाओं ने कार्य किया। उस युग में विलायत जाने पर जाति-बाहर करने का नियम था। समाज में जाति-प्रथा चरम सीमा पर थी। भारतेंदु युग के ही 'सुधाकर द्विवेदी' जैसे गणित और संस्कृत के विद्वान ने इस व्यवस्था पर प्रहार किया। बनारस के टाऊन हॉल में दिए गये उनके भाषण के कुछ अंश इस प्रकार थेः- ''जो लोग काँच के गिलास में पानी पीना अधर्म समझते थे, उनको लक्ष्य करके उन्होंने कहा कि स्त्रियाँ काँच की चूडियाँ पहन कर भोजन बनाती है तो रोटियाँ अशुद्ध क्यों नहीं होती? खान-पान में जाति भेद की खिल्ली उड़ाते हुए उन्होंने कहा- अँगूर काबुल से आते हैं, कौन नहीं खाता? यदि एक चमार ला देवे या छू देवे तो अपवित्र हो जाता है। किंतु जहाँ से आया, वहाँ कौन छूता है, इसका विचार नहीं। फिर राजा-महाराजा अब भी विदेश घूम आते हैं, उन्हें कोई जाति-बाहर नहीं करता। क्या बड़ों के लिए और धर्म होता है और छोटों के लिए और?''[1]

जाति प्रथा के संबंध में भी इन लेखकों के विचार अपने समय से बहुत आगे निकले हुए थे। ''जन्म से वर्ण नहीं होता।''[2] 1910 में सुधाकर द्विवेदी द्वारा कही गई

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ. 40-41

2 वहीं, पृ.41

यह बात कितनी क्रांतिकारी होगी? इसी प्रकार विदेश जाने वालों के बारे में कहा- ''विदेश जाने वालों को जाति में लेने की बात दूर सुधाकर द्विवेदी ने घोषित किया कि जो देश हित के लिए विदेश से विद्या सीखकर आए उसका ऋषि के समान आदर होना चाहिए।''[1]

इन लेखकों को यह भी पता था कि समाज के लोग उन्हें इनकी बातों के लिए गालियाँ भी देंगे। परन्तु फिर भी लोग सोचने पर मजबूर तो अवश्य हुए होंगे?

भारतेंदु की गिनती श्रेष्ठ वक्ताओं में की जाती थी। उनका बलिया वाला भाषण आज भी याद किया जाता है। इस व्याख्यान में उन्होंने लोगों को चेताया है। अपने नाटकों के माध्यम से लोगों की निद्रा तोड़ने की कोशिश भी की। सत्य हरिश्चन्द्र, नील देवी, अंधेर नगरी, विषस्य विषमौषधम आदि के माध्यम से समाज में चेतना आई और ये साहित्यिक विद्याएँ आज भी प्रासंगिक है। स्वदेशी की कामना करते हुए बलिया वाले भाषण में भारतेंदु कहते हैं कि- ''जब तक सौ-दो-सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जाति से बाहर न निकाले जाएंगे, दरिद्र न होंगे, वरन् जान से न मारे जाएंगे, तब तक कोई देश न सुधरेगा।''[2]

आज 'हिंदू' शब्द का अर्थ संकीर्ण लिया जाता है परन्तु 1884 में भारतेंदु ने हिंदू शब्द को अधिक व्यापक बनाते हुए कहा था- ''इस महामन्त्र का जप करो, जो हिन्दुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू है। हिंदू की सहायता करो। बंगाली, मराठा, पंजाबी, मदरासी, वैदिक, जैन, ब्रह्मणों, मुसलमानों सब एक का हाथ एक पकड़ो।''[3]

भारतेंदु ने यह भाषण अंग्रेज अधिकारियों की मौजूदगी में दिया था। यह उनकी निर्भीकता का प्रमाण था, जिससे लोग प्रेरणा प्राप्त कर रहे थे। भारतेंदु युग की नाटक रचना उस समय के युगीन वातावरण से प्रभावित दिखाई पड़ती है। हरिश्चन्द्र मैग्जीन

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.41
2 वहीं, पृ.42
3 वहीं, पृ.42-43

में बहुत से नाटक धारावाहिक रुप में प्रकाशित होते थे। श्रीनिवासदास का 'तप्ता संवरण' कार्तिक प्रसाद खत्री का 'रेल का विकट खेल', 'बाल विधवा संताप', 'ग्राम पाठशाला' 'प्रतापनारायण मिश्र का 'भारत-दुर्दशा रूपक', 'कलिकौतुक रुपक' आदि में युग भावना विशेष रुप से परिलक्षित हुई है। इन रचनाओं का आमजन पर विशेष रुप से प्रभाव पड़ा, क्योंकि ये लोक जीवन से और स्थानीय समस्याओं से जुड़ी थी।

राधाचरण गोस्वामी के प्रहसन 'तन-मन-धन श्री गुसाई जी के अर्पण' और 'बूढ़े-मुँह मुहाँसे' विशेष रुप से लोकप्रिय हुए। पहले प्रहसन में तो मन्दिर में रहने वालों गोस्वामी का असली चेहरा दिखाने का प्रयास किया है और दूसरे में किसान और जमींदारों के संघर्ष के साथ-साथ हिंदू-मुस्लिम एकता को दिखाने का प्रयास किया जाता है। यह उस समय की युगीन चेतना है कि अन्याय के खिलाफ हिंदू और मुस्लिम साथ खड़े होते हैं। सर्व-धर्म-समभाव में विश्वास रखने वाले राधाचरण गोस्वामी विचारों में भारतेन्दु से अधिक उग्र थे। स्वामी दयानन्द के व्याख्यान सुनने के लिए अपना कुल धर्म भी छोड़ दिया था। परन्तु फिर भी किसी एक मत में बँध कर नहीं रहे। स्वयं गोसाई होते हुए भी इन्होंने 200 के लगभग लेख लिखे, जो गोसाई धर्म की नींव हिलाने वाले थे। हिंदी संबंधी आंदोलन में इन्होंने लगभग 21000 लोगों के हस्ताक्षर करवाए। विधवा-विवाह के समर्थन में इनके विचार अपने समकालीनों से अधिक उग्र थे। इनका मत इस प्रकार से था, ''आप यदि कोई राजा-महाराजा किसी विधवा कन्या से पुनर्विवाह करना चाहे तो राजान्नपोषित सब पण्डित व्यवस्था दे देंगे कि विधवा-विवाह सशास्त्र है परन्तु इन दुखियाओं को कौन पूछता है? वरन् पण्डितों ने विधवा-विवाह का खंडन अपनी जीविका का हेतु बना रखा है। साधारण हिन्दू लोग अपनी जाति के नियमों के आबद्ध है। जब तक यह विषय जाति में ग्राह्य न हो, विधवाओं का कष्ट दूर नहीं होगा।''[1]

---

1 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिंदी नवजागरण और राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.206-207

कर्मेन्दु शिशिर का कहना है- ''हिंदी नवजागरण के लेखकों में एक विशेषता यह मिलती है कि वे सिर्फ कलम चलाने वाले रचनाकार भर नहीं होते थे। बल्कि वे अपने समय और देश के प्रति सकर्मक जागरुकता रखते थे। भारतेन्दु मंडल के लगभग रचनाकारों ने विभिन्न संगठनों का निर्माण किया था और आगे बढ़कर जनता के संघर्षों में भागीदार भी हुए थे। इनकी बुनियादी विशेषता समूहवाद की थी।''[1]

ये रचनाकार विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से जनता से जुड़ते थे। गोस्वामी जी ने वृन्दावन से 'भारतेंदु' नाम का पत्र निकालते थे। इस पत्र ने आंदोलन करके मथुरा से वृन्दावन तक रेल मार्ग का निर्माण करवाया। 'यमलोक की यात्रा' इनकी महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें गो-दान करने पर स्वर्ग जाने का मजाक उड़ाया है।

भारतेंदु युगीन लेखक बालकृष्ण भट्ट का सिद्धान्त वाक्य है- 'साहित्य जन-समूह के हृदय का विकास है'। जनसमूह की भावनाओं को लेकर ही इन्होंने साहित्यिक रचनाएँ की जिसका अपेक्षित प्रभाव भी पड़ा। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और बद्रीनाथ चौधरी जैसे रचनाकारों ने भारतेन्दु की परम्परा को आगे बढ़ाया तो बालमुकुन्द गुप्त जैसे पत्रकारों ने नई शैली विकसित की। हास्य और व्यंग्य का ऐसा सम्मिश्रण होता था कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। प्रत्येक लेखक को उसकी विशिष्ट शैली से पहचाना जा सकता था। ग्रामीण बोलियों से इनकी निकटता थी। दाँत, भौं, नाक पर भी इन्होंने निबंध लिखे तो ब्रैडला स्वागत, अरी बुढ़ापा और तृप्यन्ताम जैसी कविताएँ भी लिखी। ब्राह्मण ने स्वदेशी आंदोलन चलाया। उसी प्रकार बालकृष्ण भट्ट ने 32 वर्षों तक हिंदी प्रदीप चलाया। हिंदी आलोचना का जन्म हिंदी प्रदीप से माना जाता है। जिससे साहित्य के माधुर्य से लेकर 'ज्वार की रोटी' तक का माधुर्य है।

'शिवशम्भु के चिट्ठे' के माध्यम से बालमुकुन्द गुप्त ने राजनीतिक-व्यंग्यात्मक लेख लिखे, जिनको लोगों ने बड़े चाव से पढ़ा। उस युग के साहित्य की मुख्य बात

---

1 (सं.) कर्मेन्दु शिशिर, हिंदी नवजागरण और राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृ.16

यह है कि लोक साहित्य को विशेष महत्त्व दिया गया। कवि वचन सुधा में भारतेंदु ने विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, ग्राम्य भाषा में गीत लिखने के लिए। साधारण भाषा में असाधारण संदेश पहुँचाने के लिए भारतेंदु कितने प्रयत्नशील थे इसका प्रमाण उनकी इस विज्ञप्ति से मिलता है- ''सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्राम-गीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नहीं होता।''[1] भारतेन्दु ने लोगों से निवेदन किया था कि छोटे-छोटे छन्दों में गीत व छन्द बनाकर भेजे ताकि उन्हें प्रकाशित किया जा सके।

संगीत को लोक साहित्य के साथ जोड़कर उसे व्यापक रुप में प्रसारित करने का प्रयत्न हो रहा था ताकि उसे ग्राम्य समाज तक पहुँचाया जा सके। इन ग्राम गीतों के विषय भी समसामयिक थे जैसे- बाल-विवाह, शराब, शिक्षा, जन्मपत्री, भ्रूण-हत्या, बहुजातित्व आदि। इन विषयों के माध्यम से लोगों में चेतना लाई गई। टैक्स, अकाल, गरीबी आदि पर आल्हा लिखे जाते थे। सारसुधानिधि, हिंदी प्रदीप, भारत मित्र, हरिश्चन्द्र मैग्जीन आदि में आल्हा छपते थे। उस युग के लेखकों का जन-भाषा में साहित्य रचना उनके आम-जन से जुड़ाव का प्रतीक है।

ग्राम-गीतों के माध्यम से अशिक्षितों में भी चेतना जगाने का प्रयत्न किया। एक ओर तो सामाजिक-राजनीतिक आंदोलन के लिए वातावरण तैयार करना था तो दूसरी ओर अपने ही लोगों की रूढिवादी परम्पराओं से मुकाबला करना था। ''जनता के पुराने संस्कारों को छूना उसके धर्म को चुनौती देना था, एक बार हुसकाई जाकर जनता सभी नये विचारों को संदेह से देखने लगती। परन्तु भारतेंदु ओर उसके साथियों ने इसकी चिन्ता न करके दृढ़ता से अपना युद्ध छेड़ दिया। नास्तिक, किरिस्तान कहे

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.12

जाने पर भी उन्होंने अपना सुधार का मार्ग न छोड़ा। इसके साथ ही उन्हें अपनी भाषा के लिए लड़ना था।''[1]

इन सब बातों का हिंदी समाज पर प्रभाव भी हुआ। फलस्वरुप हिंदी संबंधी आंदोलन में तीव्रता आई। परिणामस्वरुप सन् 1900 में अंग्रेजी सरकार को कचहरियों में हिन्दी को प्रवेश देना पड़ा।

उस समय में बहुत से मुद्दे ऐसे थे जोकि तत्कालीन लेखकों ने अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से उठाया था। जिनका लोगों पर अपेक्षित प्रभाव भी पड़ा। कुछ मामलों में तो ब्रिटिश सरकार को अपना निर्णय बदलना पड़ा। यह सब पत्र-पत्रिकाओं की तरफ लोगों के बढ़ते रुझान की वजह से था। भारतीय पत्रकारिता ने भारत में स्वायत्त शासन, लेजिस्लेटिव, प्रान्तीय कौंसिल तथा ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व की माँग संसद में उठाई। लोगों ने इस माँग को धार दी। इसका परिणाम यह हुआ कि पहली बार भारतीयों को संवैधानिक ढाँचे में स्थान मिला। ''प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए चलाए जा रहे इस अभियान से विवश होकर 1892 में 'इंडियन एक्ट' पास किया गया जिसमें भारतीयों की संख्या 9 से बढाकर 10 कर दी गई।''[2]

अन्य विषयों पर समाचार पत्रों के माध्यम से लोग जागरुक हुए जैसे- प्रेस एक्ट, इलबर्ट बिल, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट, बंग-भंग के विरोध में क्रांतिकारी लेख आदि। इन विषयों पर जनता के तीव्र विरोध के बावजूद सरकार को अपनी मंशा बदलनी पड़ी। भारतमित्र, हिंदी प्रदीप, हिन्दोस्थान जैसे पत्रों ने तो बंग-भंग को रोकना तो उद्देश्य बना लिया था। फलस्वरुप सरकार को यह आदेश वापिस लेना पड़ा।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, 1975, पृ.14

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण एवं हिन्दी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.262

पत्रकारिता के आंदोलन के कारण ही 'दादा भाई नोरौजी' को ब्रिटिश संसद में प्रतिनिधित्व मिला।

ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व के लिए पत्र-पत्रिकाओं और उनके नियमित पाठकों ने संघर्ष किया। सिविल सर्विस में भी भारतीयकरण की मांग हिंदी समाज द्वारा उठाई गई। जिसके कारण एक भारतीय और 6 यूरोपीय की नियुक्ति का आदेश दिया गया। भारतीय पत्रों के आन्दोलन के कारण ही सिविल सर्विस की परीक्षा भारत और इंग्लैंड दोनो स्थानों पर कराने का विधेयक पारित किया गया।

हिंदी में आलोचना का जन्म भी भारतेन्दु युग में हुए ऐतिहासिक विवादों के बाद हुआ। भारतेंदु ने नाटक (1881) नामक निबन्ध लिखा। इसमें भारतीय, पाश्चात्य और लोकनाट्य को मिलाकर नाटक को आधुनिक रुप देने का प्रयास किया गया। 'लाला श्री निवास दास' ने 'संयोगिता स्वयंवर' लिखकर ऐतिहासिक नाटक का श्रीगणेश किया। इस नाटक की आलोचना सर्वप्रथम बालकृष्ण भट्ट ने 'सच्ची समालोचना' और 'प्रेमघन' ने 'संयोगिता स्वयंवर और उसकी आलोचना' से की। इस प्रकार हिंदी साहित्य में विवादों की नींव पड़ी। ''यहाँ के विवादों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि न केवल आचार्य बल्कि लेखक, पाठक और आलोचक तीन बिन्दुओं से विवाद पूर्णता पाता है। जबकि संस्कृत में विवाद में ऐसी सुविधा नहीं थी। यहाँ विवाद को नया तेवर इसलिए भी मिलता है कि हर कोई अपना पक्ष रखने के लिए स्वतंत्र है, कोई बंधन नहीं है। उसका नतीजा यह हुआ है कि कई आचार्यों के बीच तो पत्रों के नौ-नौ, दस-दस, अंकों तक विवाद चलते रहे हैं।''[1]

आगे चलकर मिश्र बंधुओं के हिंदी नवरत्न में कबीर को न शामिल करने का विवाद हुआ। देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास पर विवाद हुआ। द्विवेदी जी और बालमुकुन्द गुप्त के बीच 'भाषा की अनस्थिरता' संबंधी विवाद हुआ। इन विवादों में लेखक, आलोचक के साथ-साथ पाठक भी भाग लेते थे। दिलचस्प विवाद कई-कई

---

1 डॉ. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012, पृ.26

अंकों तक चलता था। इन विवादों में व्यक्ति विशेष पर नहीं बल्कि उसके कार्यों और नीतियों पर व्यंग्य किया जाता था। अच्छाईयों को स्वीकार किया जाता था। स्वामी दयानन्द से समकालीन लेखकों का छत्तीस का आँकडा था, परन्तु आर्य समाज के कल्याणकारी कार्यों को स्वीकारने में उन्हें किसी प्रकार का कोई संकोच नहीं था। भारतेंदु ने 'स्वर्ग में विचारसभा का अधिवेशन' में भी इस बात को खुले दिल से स्वीकारा है। इसी प्रकार 'ब्रह्म समाज' के कार्यों का विवेकसम्मत मूल्यांकन कर उनके समाजोपयोगी कार्यों की प्रशंसा की।

भारतेंदु युग में नाटक, उपन्यास, कविता, निबन्ध, एकांकी, प्रहसन के साथ-साथ आलोचना का भी नवीनीकरण हुआ। पाठकों के सामने विभिन्न पुस्तकों पर अपनी राय देकर पुस्तक के गुण-दोष की परीक्षा की जाती थी और आग्रह किया जाता था कि वे पुस्तक पढ़े या नहीं। समीक्षकों ने लेखक और पाठक के बीच में सेतु का कार्य किया। संपादक और लेखक ही समीक्षक होते थे। हिंदी पत्रकारिता और संपादक दोनों ने एक पाठक वर्ग तैयार किया। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्राप्ति स्वीकार, हमारी अलमारी, हमारा पुस्तकालय आदि स्तंभ होते थे, जिनमें नियमित रुप से पुस्तकों का परिचय करवाया जाता था। यही आगे चलकर पुस्तक समीक्षा के रुप में विकसित हुआ और इसी ने कई स्तरों पर पाठकों की रुचियों का संस्कार भी किया। ''युगीन परिस्थितियों की माँग ने हिंदी आलोचना को राजमहल की चारदीवारी से निकालकर नुक्कड़ पर ला खड़ा किया। एक बार साहित्य का परिवेश बदला तो दर्शक और श्रोता भी बदल गए। नयी दुनिया का पाठक ओर श्रोता तथा दर्शक कोई सामंती परिवेश का सहृदय नहीं बल्कि भारत के हिंदी प्रदेश की आम जनता थी। नये युग में साहित्यकारों ने अपना नया नया दायित्व समझा और तदनुरूप कार्य किया। यह कार्य हिंदी प्रदेश की सामान्य जनता को देश-दशा से परिचित कराने का गुरूतर भार था।''[1]

---

1 डॉ. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012, पृ.68

भारतेंदु काल में सबसे अधिक नाटक और निबंध लिखे गए। नाटकों का सफल संचालन मंच पर हुआ। स्वयं भारतेंदु और उनके सहयोगी उसमें अभिनय करते थे। नाटक मंडलियाँ बनी हुई थीं, जिनके द्वारा नाटक खेले जाते थे ताकि लोगों की रुचियों, को परिष्कृत करने के साथ-साथ उन्हें प्रभावित किया जा सके। स्वहित की कामना उत्पन्न की जाए। आलोचना के माध्यम से लेखकों को अपनी रचनाओं में परिष्कार करने की सलाह दी जाती थी। ''एक प्रकार से इन आलोचकों ने आलोचना में भी देश-दशा और सामाजिक स्थिति पर विचार करके सांस्कृतिक दायित्व का भी निर्वाह किया। भारतेंदु युगीन यह समालोचना, आलोचना या पुस्तक समीक्षा की सामाजिक सार्थकता को भी बढ़ाती रही है। यहाँ आलोचकों का वागविलास नहीं, बल्कि एक तरह का लेखक, पाठक, आलोचक के बीच सामंजस्य स्थापन का भाव मिलता है।''[1]

यद्यपि इस काल की रचनाओं में प्रौढ़ता का अभाव मिलता है, परन्तु पाठक और लेखक के बीच सेतु का निर्माण अवश्य हो जाता है ऐसा आभास पाया जाता है। इसी सेतु ने आगे चलकर हिंदी नवजागरण को नई दिशा प्रदान की। सामाजिक और राजनीतिक क्रान्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। हिंदी समाज पर इस युग के नवजागरण का प्रभाव पड़ा जो आगे चलकर विकसित रुप में सामने आया।

---

1 डॉ. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012, पृ.71

तृतीय अध्यायः
बालमुकुंद गुप्तः व्यक्तित्व एवं प्रतिरोध का स्वर

3.1 बालमुकुंद गुप्त : एक परिचय

3.2 शिवशंभु के चिट्ठों में जातीय चेतना

3.3 भारतमित्र और सामाजिक जागरण

3.4 भाषा चिंतन : अनस्थिरता विवाद

अध्याय तृतीय
बालमुकुन्द गुप्तः व्यक्तित्व एवं प्रतिरोध का स्वर

3.1 बालमुकुंद गुप्तः एक परिचय

जीवन परिचय :

वर्तमान हरियाणा प्रदेश में रेवाड़ी जिले का एक छोटा सा गाँव गुडियानी अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। पूर्वकाल में यह गाँव पंजाब प्रान्त, रोहतक जिले कस्बा झज्जर के अन्तर्गत पड़ता था। इसी झज्जर कस्बे के नवाब 'अब्दुर्रहमान खान' को अंग्रेजों ने 1857 की क्रान्ति में लड़ने के कारण विद्रोही घोषित कर दिया था।

गुड़ियानी ग्राम रेवाडी से हिसार जाने वाली रेलवे लाईन पर जाटूसाना रेलवे स्टेशन से दो किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इसी ग्राम में हिंदी पत्रकारिता के सूत्रधार बाबू बालमुकुन्द गुप्त का जन्म हुआ। श्री मदन गोपाल के अनुसार- ''गुप्त के आरंभिक काल में इस गांव की आबादी थोडी ही थी। गांव में दो प्रमुख जातियों के लोग रहते थे। बहुसंख्यक तो पठान (अफगान) थे जो घोड़ों का व्यापार करते थे और अल्पसंख्यक महाजन लोग थे जो वाणिज्य और सूद का धन्धा करते थे। पठान व्यापारी अपने बच्चों को उर्दू और फारसी की शिक्षा के लिए मक़तब भेजते परन्तु महाजन लोगों में शिक्षा का प्रचार नहीं था। बालमुकुन्द गुप्त गांव में अपनी जाति के पहले बालक थे जिनकी शिक्षा उर्दू और फारसी में हुई।''[1]

बालमुकुन्द गुप्त का जन्म 14 सितंबर सन् 1865 ई0 को लाला पूरणमल के घर में हुआ। इनके पूर्वज डीघल (रोहतक) से आकर आजीविका के लिए यहाँ बसे थे। इनके दो छोटे भाई और दो छोटी बहने थीं। दस वर्ष की अवस्था में सन् 1875 में इन्हें गाँव के मकतब भेजा गया। जहाँ से उन्होंने उर्दू-फारसी की शिक्षा पाई। विलक्षण प्रतिभा के धनी बालमुकुंद गुप्त ने जिला स्तर पर होने वाली पाँचवी कक्षा अच्छे स्तर

---

1 मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.7

से पास की। इनके अध्यापक ने इनके पिता लाला पूरणमल को बालक बालमुकुन्द गुप्त को आगे पढ़ाने के लिए प्रेरित किया। परन्तु इनके पिताजी कुछ सोच पाते उससे पहले ही मात्र चौंतीस वर्ष की अवस्था में सन् 1879 में इनका निधन हो गया। कुछ दिनों बाद ही इनके दादा गोरधन दास का भी निधन हो गया। परिवार को संभालने की जिम्मेदारी चौदह वर्षीय बालक बालमुकुन्द गुप्त पर आ पड़ी। परन्तु परिस्थितियों से हार माने बिना इन्होंने अपना सारा ध्यान अध्ययन को छोड़कर पैतृक व्यवसाय में लगाया। सन् 1880 में रेवाड़ी के व्यापारी छाजूराम की पुत्री अनारो देवी से इनका विवाह हुआ। इसी बीच स्वाध्याय के बल पर 1886 में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। इससे आगे इन्होंने कोई शैक्षणिक योग्यता तो नहीं हासिल की परन्तु स्वाध्याय के बल पर बंगला, संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया। गुप्त जी इन भाषाओं में अपेक्षित योग्यता के स्तर तक केवल अपने स्वाध्याय के बल पर पहुँचे थे। उर्दू पत्रकारिता से अपना साहित्यिक जीवन का आरंभ बालमुकुंद गुप्त ने अपने गुरु मुंशी वजीर मुहम्मद खान तथा मुंशी बरकत अली खान की प्रेरणा से किया। 'शाद' (आनन्द) उपनाम से इनकी उर्दू नज्मे पद्यपरक मासिक पत्र 'गुलदस्तों' में पढ़ी जाती थी। इसके अतिरिक्त अवध पंच, मथुरा अखबार, जमाना, भारत प्रताप आदि उर्दू अखबारों में इनकी रचनाएँ बहुत अधिक प्रसिद्ध हुई। ''उनकी कविताएँ और लेख (उपनाम था मि0 हिंदी) 'अवध पंच' में तो प्रकाशित होते ही थे। 'उर्दू-ए-मुअल्ला', 'रहबर' और 'विक्टोरिया गजट' में भी छपते थे। उर्दू पत्रकारिता में उनका खासा नाम था।''[1]

झज्जर के पं. दीनदयालु शर्मा के परामर्श पर गुप्त जी ने 1886 ई0 में चुनार से प्रकाशित 'अखबारे चुनार' का सम्पादन स्वीकार किया। 1888 ई0 में 'कोहेनूर' जो लाहौर से प्रकाशित होता था, उसके सम्पादक बने। 1886 से 1889 तक उर्दू पत्रों का सम्पादन किया।

---

1 मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.11

1889 ई0 में 'भारत धर्म महामंडल' के द्वितीय अधिवेशन वृन्दावन में उर्दू सम्पादक की हैसियत से इनकी मुलाकात हिंदी अखबार 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक मदन मोहन मालवीय जी से हुई। मालवीय जी एक ही नजर ही में इनकी प्रतिभा का भांपकर इन्हें 'हिन्दोस्थान' के संपादकीय मंडल में ले गए। इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता में इनका आगमन हुआ।

'हिन्दोस्थान' से इनका संबंध 1889 ई0 से फरवरी 1891 ई0 तक रहा। इसके बाद 1893 ई0 से 1898 ई0 तक 'हिंदी बंगवासी' में सम्पादन कार्य किया। 16 जनवरी 1899 ई0 से 2 सितम्बर 1907 तक 'भारत मित्र' को नई बुलंदियों तक पहुँचाया। 'हिन्दोस्थान' और 'हिंदी बंगवासी' को छोडने का कारण इनका स्वाभिमान रहा है। अंग्रेजों के विरुद्ध प्रखर रुप में लिखने के कारण इन्हें 'हिन्दोस्थान' के संपादक मंडल से बाहर होना पड़ा। 'भारत मित्र' में प्रकाशित 'शिवशम्भु के चिट्ठे' अंग्रेजों की क्रूर नीतियों का कच्चा चिट्ठा था। इनकी पत्रकारिता में व्यंग्य की तीखी धार थी, तो हास्य का पुट भी था। यही इनकी शैली की विशेषता थी। टेसू और जोगीड़ा के माध्यम से लोकगीतों को नया रंग दिया। भक्ति के साथ देशभक्ति का मिश्रण किया।

'भारतमित्र' से गुप्त जी का संबंध 2 सितम्बर सन् 1907 तक का रहा। अस्वस्थ होने के कारण जलवायु परिवर्तन की इच्छा से वैद्यनाथ धाम गए परन्तु कोई लाभ न होता देख आने गांव गुड़ियानी वापस जाने का मन बनाया। रास्ते में 18 सितम्बर सन् 1907 को दिल्ली में लाला लक्ष्मीनारायण की धर्मशाला में इन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। इस प्रकार पत्रकारिता के क्षितिज पर अनुप्राणित करने वाला प्रकाश बिखेर कर दिव्य नक्षम सदा-सदा के लिए प्रणाम कर गया।

व्यक्तित्व

बाह्य व्यक्तित्वः-

गुप्त जी की वेशभूषा में सादगी और शिष्टता थी। इनकी वेशभूषा सामान्य होती थी। बचपन में सामान्य बालकों की तरह धोती कुर्ता ओर टोपी पहनते थे। ''डॉ. नत्थन सिंह ने उनके विषय में लिखा है कि, ''उनका शरीर माँसल तथा पुष्ट था। उनका मुख मंडल प्रभावशाली तथा चेहरा गोल और भरा हुआ था। रंग गोरा गेहुंआ, आँखें बड़ी मस्तक चौड़ा तथा गर्दन ऊँची थी। कुल मिलाकर उनका बाह्य व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली था।''[1] शरीर पर ढीला कुर्ता, धोती, गले में साफी, सिर पर मारवाड़ी शैली की पगड़ी बाँधते थे। परन्तु 'भारतमित्र' के संपादक बनने के समय में पगड़ी की जगह गोल फ्लैट कैप तथा बन्द गले का पहनने लगे। गले की साफी सिल्क की हो गयी थी जो घुटनों तक होती थी तथा मस्तक पर चंदन का टीका लगाते थे।

गुप्त जी वैष्णव धर्म के नियमों का पालन करते थे। रोज गंगा स्नान करना, नियमित रुप से गीता तथा विष्णु सहस्त्रनाम का पाठ करना, नीचे बैठकर भोजन करना, संध्या को भ्रमण, ईश्वर प्रार्थना, अन्य धार्मिक कार्य करना, शाम को शीघ्र भोजन करना और 10 बजे तक सोने के लिए जाना उनकी दैनिक क्रिया थी।

आन्तरिक व्यक्तित्वः-

एक तरफ तो बालमुकुन्द गुप्त सनातन धर्म में दृढ़ विश्वास रखते हैं, वहीं दूसरी तरफ देशभक्ति से परिपूर्ण कट्टर राष्ट्रवादी दिखाई देते हैं। इनके जीवन की कई घटनाओं से इनके विनोदप्रिय होने का परिचय मिलता है। रामकुमार गोयनका के संस्मरण 'गुप्त जी की बातें' और पं. सकल नारायण मिश्र के संस्मरण 'परिहास प्रिय गुप्त जी' से इनके विनोदप्रिय होने का प्रमाण मिलता है। चाटुकारिता से इन्हें विशेष घृणा थी। 'पंजाब में लायल्टी' कविता चाटुकारों पर व्यंग्य है। स्वाभिमानता उनके खून में थी। जनहित और देश हित में कार्य करना वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। पाश्चात्य

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.22

संस्कृति के घोर विरोधी थे। उग्र राष्ट्रवादी होने के कारण साम्राज्यवाद विरोधी थे। सामाजिक विचारों में भारतीय संस्कृति के पक्षधर होते हुए पुरातनवादी कहे जा सकते हैं, परन्तु राष्ट्रीय विचारों में अपने समय से बहुत आगे निकले हुए थे।

''उनके व्यक्तित्व के दो अत्यन्त उज्ज्वल पक्ष थे- एक देशभक्ति और दूसरा मानव कल्याण। राष्ट्रहित के लिए वह हिंदू-मुस्लिम एकता अनिवार्य समझते थे। होली तथा ऋतुओं पर टिप्पणी लिखते हुए वह देशहित का विस्मरण नहीं कर पाते और न नागरी अक्षरों का समर्थन करते हुए हिंदू-मुस्लिम एकता को।''[1]

नवजागरण की जिस भावना का उदय भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने किया था उसी को आगे बढ़ाने का कार्य 'बाबू बालमुकुन्द गुप्त' ने किया। उनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता का उद्घोष सुनाई पड़ता है। 'बाबू बालमुकुंद गुप्त' पर शोध कर चुके 'डॉ. राजेन्द्र सिंह' का कहना है- ''भारत के गौरव की पुनर्स्थापना का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य ही उनके जीवन का परम एवं चरम प्राकाम्या था। देशवासियों में देशभक्ति की भावना उद्दीप्त उनका एकमात्र उद्देश्य था, क्योंकि वे स्वदेश भावना को और स्वेदश हित की ही कामना को ही परम धर्म मानते थे। अपने 'भारतमित्र' के द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय उत्थान में सर्वतोभावेन योगदान दिया।''[2]

युगीन रचनाकारों में बालमुकुन्द गुप्त में राष्ट्रीय भावना का स्वर सबसे अधिक मुखर दिखाई पड़ता था। चाहे 'शिवशम्भु के चिट्ठे' हो या फिर 'बंग विच्छेद' स्वदेशी आंदोलन आदि। देश स्थिति का यथावत् वर्णन करना 'गुप्त जी' की राष्ट्रीय भावना का ही एक ही पहलू है। अंग्रेज, भारतीयों की राष्ट्रीयता को कुचलने के लिए उन पर क्या-क्या अन्याय कर रहे थे इसका वर्णन गुप्त जी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। देश, विदेश में होने वाली घटनाओं पर राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करते थे।

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.26

2 डॉ. राजेन्द्र सिंह, बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का साहित्य, कवि सभा दिल्ली, शाहदरा, दिल्ली, 1996, पृ.115

राष्ट्रीय चेतना से भरपूर लेख लिखने के कारण गुप्त जी को उर्दू पत्र 'अखबारे-चुनार' और हिंदी पत्र 'हिन्दोस्थान' छोड़ना पड़ा। 'गुप्त जी' ने उन देशभक्तों के बारे में भी लिखा है, जिन्होंने राष्ट्रीयता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी। देशभक्तिपूर्वक लेखों के कारण जेल में जाने वाले सम्पादकों की हालात पर भी लिखा। 'बालमुकुन्द गुप्त' के उग्र लेखों से राष्ट्रीयता की तीव्र लहर फैल गई। बालमुकुंद गुप्त अपने युग के प्रतिबिम्ब थे। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र का कहना है- ''गुप्त जी चूँकि युग चेतना के प्रति सचेत थे और उनकी जातीय निष्ठा बलवती थी, इसलिए स्वाभाविक था कि उग्र राष्ट्रीयता ही पत्र की नीति बने।''[1]

अंग्रेजों ने भारत में सुशासन का ढिंढोरा पीटा। बहुत से लोगों ने इसका समर्थन भी किया। परन्तु गुप्त जी इस भ्रम से सदैव दूर रहे और अपनी रचनाओं के माध्यम से लोगों को भी जागरूक करने का प्रयास किया। भारत और भारतीयता के प्रश्न को सैनिक की तरह उठाया। उन कारणों का निराकरण करने का प्रयास किया जो राष्ट्रहित के विरोध में पड़ते थे।

'गुप्त जी' के व्यक्तित्व का मुख्य गुण स्वाभिमानता रहा है। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी, इन्होंने इस गुण का त्याग नहीं किया। गुप्त जी आत्म-सम्मान और आत्म-निर्भरता को राष्ट्रीयता का प्रमुख गुण मानते थे। हिंदी बंगवासी जब गलत राह पर चला तो इन्होंने स्वाभिमान का परिचय देते हुए उसे छोड़ दिया। 'भारतमित्र' का सम्पादक बनने से पूर्व भी इन्होंने उसके मालिक से वचन लिया था, कि वे इनके कार्य में दखल नहीं देंगे। एक भरे-पूरे परिवार की पोषण की जिम्मेवारी होते हुए भी इन्होंने स्वाभिमान से कभी समझौता नहीं किया। बालमुकुंद गुप्त के परम मित्र पं. दीनदयालु शर्मा की लोकप्रियता का हिंदी बंगवासी फायदा उठाना चाहता था। ''उन दिनों सुप्रसिद्ध हिंदी वक्ताशिरोमणि पण्डित दीनदयालु जी से कुछ अनबन हो जाने से 'हिंदी बंगवासी' में उनका विरोध करना निश्चय हुआ था। उस समय बाबू बालमुकुंद गुप्त को 'हिंदी

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ.255

बंगवासी' से जो आर्थिक सहायता दी जाती थी, वह हिंदी पत्रों की उस प्रारम्भिक दशा में अल्प ही हिंदी लेखकों को मिलती रही होगी। बाबू बालमुकुंद गुप्त के परिवार पालन के लिए धन की बड़ी भारी आवश्यकता रहने पर भी उन्होंने उसकी कुछ भी परवाह नहीं की और स्पष्टतया कह दिया कि पण्डित जी से मेरी मित्रता बडी घनी है, 'हिंदी बंगवासी' से उनकी विरुद्धता होने से मुझे उसकी सेवा से अलग होना पड़ेगा।''[1]

इनकी स्वाभिमानता और ईमानदारी का एक परिचय हमें तब मिलता है जब 'श्री वेकंटेश्वर समाचार' के मालिक ने इन्हें 'भारतमित्र' छोडने और अपने समाचार पत्र में आने के लिए दोगुने वेतन का लालच दिया तो अपने मित्र पं. जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल से गुप्त जी ने कहा है, ''गरियार बैल घुमाकर जोता जाता है।''[2] इनका स्वाभिमान केवल स्वयं का स्वाभिमान नहीं था देश और देशवासियों को सम्मान भी उन्हें उतना ही प्रिय था। लॉर्ड कर्जन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिए गए भाषण में पूर्व के लोगों को मिथ्यावादी तथा सत्य का अनादर करने वाला कहा था। इस स्वाभिमानी-देशभक्त पत्रकार ने इसका विरोध 'शिवशंभु के चिट्टे और खत' के माध्यम से दिया। ''यह देश भी यदि विलायत की भांति स्वाधीन होता और यहाँ के लोग ही यहाँ के राजा होते, तब यदि अपने देश को यहाँ के लोगों से अधिक सच्चा साबित कर सकते थे तो आपकी अवश्य कुछ बहादुरी होती। स्मरण करिए, उन दिनों को कि जब अंग्रेजों के देश पर विदेशियों का अधिकार था। उस समय आपके स्वदेशियों की नैतिक दशा कैसी थी, उसका विचार तो कीजिए। यह वह देश है कि हजार साल पराये पाँव के नीचे रहकर भी एकदम सत्यता से च्युत नहीं हुआ है।''[3]

निर्भीकता उनकी लेखनी का विशेष गुण रहा है। इन्होंने जो भी लिखा निडर होकर लिखा। उस समय के बहुत से पत्रकार राजभक्ति की चाश्नी में डुबोकर अपनी

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 1985, पृ.254

2 मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.67

3 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्तः संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 21-22

रचनाएँ लिखते थे, परन्तु इन्होंने खुल्लम-खुल्ला, बेधडक, निड़रता से अपनी रचनाओं को वाणी दी। चाहे वह 'शिवशम्भु के चिट्टे' हो, चाहे 'शाइस्ता खां का खत फुलर साहब के नाम' बंग-भंग विरोधी लेख हो, राष्ट्र भाषा हिंदी के समर्थन की रचनाएँ, टेसू या जोगीड़ा के माध्यम से लिखी गई कविताएँ सभी में निर्भीकता का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। इसी कारण से इन्हें अपने जीवन में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बाल्यकाल में ही पिता की मृत्यु होने के कारण परिवार की जिम्मेवारियों से रुबरु होना पड़ा। परन्तु इन्होंने हार नहीं मानी। अपनी निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता के कारण ही वे उस समय के दिग्गज महावीर प्रसाद द्विवेदी को भी जवाब देने में पीछे नहीं हटे। मारवाडियों की विशेषताओं के साथ-साथ उनकी सीमाओं को भी रेखांकित किया। कलकत्ता के विकास में मारवाड़ियों के योगदान को सराहा, तो उनकी अज्ञानता के प्रति रोष भी प्रकट किया। आलोचना करते समय भी वे निष्पक्ष ही रहे। उन्होंने कृति के आधार पर उसके गुण-दोषों का निरुपण किया, व्यक्ति के आधार पर नहीं। दूसरों के भी ऐसा करने की सलाह देते थे। एक बार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उनकी पुस्तक 'खिलौना' की आलोचना बगैर लेखक का नाम जाने की, परन्तु पता चलने पर उनसे क्षमा याचना की तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है- ''जो चीज छापकर बेची जाती है उस पर कोई आलोचना करे तो अनुचित क्या है। खिलौना पर आपके लिखने से मुझे हर्ष है, दुःख नहीं। ऐसी बातों का ख्याल मुझे नहीं होता..... (मैंने) आपकी कविता में दोष दिखाने की चेष्टा नहीं की परन्तु आज्ञा हो तो करुँ। पर शर्त यह है कि उसमें अन्य भाव न समझा जावे। जबरदस्ती किसी का दोष दिखाना मेरी आदत नहीं।''[1]

गुप्त जी ने अंग्रेजों के अत्याचारों, शानो-शौकत, अपव्यय, कर-टैक्स, अकाल, गरीबी के कारण भारतीय प्रजा की दुर्दशा का खुलकर निर्भीकता से विरोध किया है। भारतीय प्रजा के दुःख-दर्द को गुप्त जी सहज अनुभव करते और उनके प्रति

---

1 मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.41

सहानुभूति व्यक्त करते थे। उनकी लेखनी देशवासियों के दुःख, दर्द को दूर करने का सतत् प्रयास करती रही है।

बालमुकुंद गुप्त वैष्णव धर्म में आस्था रखने वाले थे। हिंदू धर्म में उनकी परम आस्था थी। परन्तु आडम्बर रहित साधना ही उन्हें प्रिय थी। इसी साधना का उन्होंने ताउम्र पालन किया। ''बालमुकुंद गुप्त सनातन धर्म के अनुयायी थे, वैष्णव और शाकाहारी। सवेरे नहा-धोकर माथे पर तिलक अवश्य लगाते। ठाठ-बाट और आडम्बर के विरुद्ध थे।''[1] श्री भारत धर्म महामंडल की सभाओं में अक्सर भाग लेने जाया करते थे। इसका एकमात्र उद्देश्य हिंदुओं को एक मंच पर इकट्ठा करना था। इसमें हिन्दुओं के विभिन्न मतावलंबियों को एक मंच पर उसी तरह एकत्रित करना था, जिस प्रकार कांग्रेस ने राजनीतिक प्लेटफार्म पर एकत्रित किया था। सनातन धर्म और हिंदी के प्रचार के लिए अपने मित्र दीनदयाल शर्मा के साथ मिलकर भाषणों की व्यवस्था करते। वाणी शर्मा जी की होती थी, परन्तु लेखनी इनकी चलती थी। विभिन्न पत्रों में भी इन्होंने धार्मिक लेख लिखे। परन्तु इनका धार्मिक होना सांप्रदायिक होना नहीं था। अपने धर्म में इनकी पूर्ण निष्ठा थी, परन्तु अन्य धर्मों का ये पूर्ण आदर करते थे। अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए इन्होंने ताउम्र तक कार्य किए।

परिस्थितियों ने गुप्त जी को विधिवत् अध्ययन करने का अवसर नहीं दिया। पारिवारिक परिस्थितियों के चलते पांचवीं कक्षा से आगे की पढ़ाई नहीं कर पाए। परन्तु स्वाध्याय के बल पर 21 वर्ष की आयु में मिडिल परीक्षा पास की। परन्तु इससे पूर्व इन्होंने अपने गुरु के मार्गदर्शन में कविता, नज़्में (उर्दू) लिखना आरम्भ कर दिया था। शाद (आनन्द) के उपनाम से इनकी नज़्में झज्जर के मुशायरों में पढ़ी जाती थी और इनकी खूब वाहवाही होती थी। आगे इन्होंने गुलदस्ता, अवध-पंच, उर्दू-ए-मुअल्ला, रहबर, विक्टोरिया गजट आदि में अपनी रचनाएँ भेजी। उर्दू पत्रकारिता से अपनी साहित्यिक जीवन की शुरुआत की फिर हिंदी पत्रकारिता में आए।

---

1 मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.22

गुप्त जी आरम्भ से ही अध्ययनशील थे, उर्दू के विभिन्न लेखकों को पढ़कर ही इन्होंने लिखना आरम्भ किया। इनकी शिक्षा का माध्यम भी उर्दू-फारसी था। वे प्रायः विभिन्न भाषाओं के अखबार पढ़ते थे, जो वे जानते थे। स्वाध्याय के बल से ही उन्होंने हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, बंगला जैसी भाषाएँ सीखी। 'हिन्दोस्थान' के संपादक मंडल में रहते हुए इन्होंने इन भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। 'हिन्दोस्थान' से जाने के बाद अपने ग्राम गुड़ियानी में रहकर अपने मित्र श्रीधर पाठक से अंग्रेजी सीखी और उन्हें उर्दू सिखाई। इनकी अध्ययन शीलता का ही परिणाम था कि इन्हें उस समय के नामी उर्दू और हिंदी के पत्रों का संपादक बनने का अवसर मिला। गुप्त जी ने समालोचना के लिए बहुत सी हिंदी पुस्तकों को पढ़ा। वे बड़े ध्यान से पुस्तक पढ़ते थे चाहे वह आलोचना के लिए हो या अनुवाद के लिए या फिर इतिहास लेखन के लिए। दूसरों द्वारा लिखे गए लेखों, अनुवाद कार्यों, आलोचना को भी वे पैनी दृष्टि से देखते थे। अध्ययन करने में वे पूरी-पूरी रात बिता देते थे।

गुप्त जी के जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक संघर्ष आते और जाते रहे। परन्तु इन्होंने न तो परिस्थितियों से हार मानी और न ही संघर्ष से। मडेल भगिनी का जब उन्होंने अशुद्ध अनुवाद देखा तो उसके संपादक तक यह संदेश पहुँचाया कि यह भाषा का रूप बिगाड़ रहे हैं। स्वयं जब अनुवाद करके दिया तो उसकी बहत प्रशंसा हुई। जिस कार्य को गुप्त जी हाथ में ले लेते थे, उसे पूरी तन्मयता से पूरा करते थे। 1902 में रत्नावली का अनुवाद करने का बीड़ा उठाया, तो समयाभाव के कारण अच्छा काम नहीं कर सके, छपाई भी खराब हुई। परंतु फिर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उस अनुवाद की प्रशंसा की। परन्तु ये स्वयं संतुष्ट नहीं थे। इसलिए दोबारा से अनुवाद करने की ठानी। ''शुद्धिकरण के लिए अपने सामने दो संस्कृत, दो बांग्ला, दो ही हिंदी के संस्करण रखे, कविता का जो बहुत सारा अंश छूट गया था उसे संयोजित किया। पुस्तक को शुद्ध और सरल बनाने की चेष्टा की।''[1]

---

1 मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.45-46

'गुप्तजी' अपने पाठकों से बहुत प्रेम करते थे। पाठकों को वे भगवान स्वरुप समझते थे। ''भारतमित्र का कार्यभार सम्भालने पर 'गुप्तजी' ने बंगवासी की प्रतिवर्ष पाठकों को एक पुस्तक उपहार के तौर पर देने की परम्परा को भी अपनाया। उन्होंने अष्टछाप के कवि नन्ददास की 'रास पंचाध्यायी' और 'भ्रमर गीत' की प्रमाणित प्रतियाँ उपलब्ध कर और उनका संपादन कर पाठकों को उपहार के रुप में दी। आगे चलकर गुप्त जी ने अब्दुर्रहीम खानखाना द्वारा लिखित 'अकबरनामा' और 'मुंशी देवीप्रसाद' द्वारा लिखित 'जहाँगीरनामा' और 'हुमायूँनामा' की प्रतियाँ भी उपहार में दी। ऐसे ही एक हजार पन्ने की 'हिंदी भागवत' भी दी गई।''[1] गुप्त जी का विचार था कि पाठकों को तथ्य से अवगत कराना प्रत्येक संपादक का कर्त्तव्य होता है। इसलिए इन्होंने जो भी लिखा सत्य और प्रमाणिक लिखा। हैदराबाद के दीवान 'गुप्त जी' के बडे प्रशंसक थे। इन्होंने 'गुप्त जी' को बुलाया। परन्तु 'गुप्त जी' ने कहलवाया कि मेरे लिए जो पाठक दो पैसे का 'भारतमित्र' पढ़ता है वही महाराज कृष्ण प्रसाद (हैदराबाद के दीवान) हैं। यदि उन्हें मुझे जानना है तो दो रुपये मासिक देकर 'भारतमित्र' का ग्राहक बने और पढें।

शिष्टता 'गुप्त जी' के स्वभाव में थी। चाहे वाद-विवाद हो या फिर आलोचना इन्होंने शिष्टता का दामन कभी नहीं छोड़ा। व्यवहारिक रुप से ये आचार्य द्विवेदी का आदर करते थे। परन्तु सैद्धान्तिक रुप से जहाँ इन्हें कुछ गलत लगा, उसे इन्होंने शिष्टता से टोक दिया। द्विवेदी जी के समर्थकों ने इनके वंश-वर्ण तक पर आक्रमण किया था, जिससे द्विवेदी जी बहुत रूष्ट हुए थे। परन्तु इन्होंने अशिष्ट व्यवहार कभी नहीं अपनाया। अपने व्यवहारिक और सैद्धान्तिक जीवन को अलग-अलग रखा। हिंदी बंगवासी से इस्तीफा देने के बाद जब उन्हें 'भारतमित्र' से निमन्त्रण आया तो उन्हें एक दफ्तर से दूसरे में जाना अखरा। इसलिए पहले वे अपने गाँव गए और वहीं से निमंत्रण स्वीकार किया। अन्य पत्रों के निमंत्रण भी उन्होंने अपने ग्राम से ही स्वीकार

किए। ''गुप्त जी व्यवहार में शिष्टता पर बड़ा जोर देते थे। जो बात उन्हें अखरती वह साफ-साफ कह देते।''[1]

'गुप्त जी' विनोदी प्रवृत्ति के इंसान थे। बातों ही बातों में हँसी की फुलझडियाँ छोड़ते रहते थे। यही प्रवृत्ति उनकी रचनाओं में भी दिखाई पड़ती है। बचपन से ही उपहास प्रिय घटनाएँ उनके जीवन की दिखाई पड़ती हैं। एक बार स्कूल के साथियों के सहयोग से 'गुप्त जी' ने स्कूल की छत पर ऊँट चढ़ा दिया था। छत पर ऊँट देखते लोग हँसते रहे, परन्तु ऊँट मालिक परेशान हो गया। फिर इन्होंने दीवार के सहारे पूलिया लगाकर ऊँट को उतारने की तरकीब बताई। 'रामकुमार गोयनका' के संस्मरण 'गुप्तजी की बातें' में उनकी उपहास प्रियता का उदाहरण मिलता है। कलकत्ता में इनके किसी जानकार के घर पर संगीत सभा का आयोजन था। भीड़ अधिक थी, तभी इनके मित्र छोटेलाल मिश्र बाहर से कमरे में बैठने के लिए झाँकने लगे तो इन्होंने कहा, ''चले आइये महाराज! हम हिंदुस्तानी तो रबड़ के होते हैं, सिकुड़े जाते हैं। इतना कहना था कि समस्त वातावरण हास्य में डूब गया।''[2] ये अपनी रचनाओं को विनोदपूर्वक वृतांतों के बीच में लपेटकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते थे। शिवशम्भु के चिट्ठे, आत्माराम के लेख, फुलर के खत, टेसू-जोगीड़ा की कविताएँ, पॉलिटिकल होली आदि रचनाएँ उदाहरण हैं।

वर्तमान युग में जब हिंदी-उर्दू का अंतर साम्प्रदायिक स्वरुप धारण कर गया है तो आवश्यकता है 'गुप्त जी' के उन मूल्यों को पहचानने की जो उन्होंने हिंदी और उर्दू के संबंध में दिये थे। उनका मानना था कि हिंदी और उर्दू दो सगी बहने हैं। जब इसे नागरी लिपि में लिखा जाताहै तो यह हिंदी हो जाती है और फारसी में लिखा जाता है तो यह उर्दू हो जाती है, इनका उद्‌गम एक है। धर्म को भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं होता। ये स्वयं उर्दू से हिंदी में आए थे। इसलिए इनकी भाषा में

---

1 मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.31
2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.24

चुलबुलाहट, रवानगी और तीखापन है। गुप्त जी के व्यक्तित्व का मुख्य पहलू सिर्फ हिंदी-उर्दू का मेल नहीं है। डॉ. नत्थन सिंह का कहना है- ''उनके व्यक्तित्व के दो अत्यन्त उज्ज्वल पक्ष थे- एक देशभक्ति और दूसरा मानव कल्याण। राष्ट्रहित के लिए वह हिंदू-मुस्लिम एकता को अनिवार्य समझते थे। होली तथा ऋतुओं पर टिप्पणी लिखते हुए वह देशहित का विस्मरण नहीं कर पाते थे और न नागरी अक्षरों का समर्थन करते हुए हिंदू-मुस्लिम एकता का। ..... राष्ट्र विरोधी कार्य चाहे हिंदू का हो चाहे मुसलमान का, वह उसका जमकर विरोध करते हैं।''[1]

गुप्त जी ने हिंदी भाषा और लिपि संबंधी निबंध लिखे हैं। हिंदी और नागरी लिपि का समर्थन वैज्ञानिक ढंग से किया है। हिंदी में बिंदी, गरारेदार पंडित, मुसलमानी नाराजी, उलटे अक्षर आदि जैसे महत्त्वपूर्ण निबंध हैं, जिनमें हिंदी भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से समर्थन है। जस्टिस शारदाचरण मित्र के साथ उस आंदोलन का पूरा समर्थन किया जिसमें भारत की सभी भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने को कहा गया था। भाषा और व्याकरण संबंधी विषय पर इनका विभिन्न विद्वानों से विवाद चलता था। इसमें उर्दू और हिंदी भाषा के शब्द, व्याकरण, मुहावरे आदि होते थे। इन्होंने उर्दू को भी इतना महत्त्व दिया जितना कि हिंदी को। हिंदी पत्रकारिता में आने के बाद भी उर्दू पत्रों में अपनी रचनाएँ भेजते रहे। 'हिंदी पत्रों का इतिहास' लिखने से पहले 'उर्दू समाचार पत्रों का इतिहास' लिखा। उर्दू पत्रों का इतिहास लिखने वाले ये पहले व्यक्ति थे। सन् 1900 में नागरी को कचहरियों के प्रवेश पर मान्यता मिलने पर जो बखेड़ा खड़ा हुआ उसे शांत करने के प्रयास के लिए कई लेख लिखे। हिंदू-मुसलमानों दोनों को शांत करते हुए- 'नागरी अक्षर' में कहते हैं, ''यदि इस विषय को केवल हिंदू-मुसलमान के मेल में कुछ झमेल पड़े तो अच्छी बात नहीं। नागरी प्रचारिणी सभा वालों को चाहिए कि जब तक यह नया बखेड़ा शांत न हो जाए तब तक खूब शांति से काम लें, झूठ-मूठ के के आनन्द में उन्मत होने की कोई जरुरत नहीं है।

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.26

मुसलमानों को यह जानना चाहिए कि जिस भाषा को उर्दू कह रहे हैं, वह हिंदी में से अलग नहीं है। उर्दू के आदि कवियों ने उस भाषा को हिन्दवी कहकर पुकारा है।''[1]

गांधी जी के आंदोलन के कई वर्ष पहले गुप्त जी और उनके समकालीनों ने स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया, अंग्रेजी का विरोध तथा स्वभाषा को महत्त्व देने के लिए तन-मन-धन से प्रयास किया। अन्य समकालीनों में राजभक्ति तथा राष्ट्रभक्ति का मिला-जुला स्वरुप दिखाई पड़ता है, परन्तु गुप्त जी अंग्रेजों की नीयत को बहुत पहले ही ताड़ गए थे। इसलिए 'पॉलिटिकल होली' जैसी कविता लिखकर देशवासियों को जगाना चाहा। लंदन में उदार दल की सरकार बनने से लोगों को भ्रम था कि अब हालात सुधरेंगे, परन्तु गुप्त जी साफ-साफ कहते हैं कि सभी विदेशी एक जैसे ही हैं। लोग जेल जाने से डरते थे परन्तु इन्होंने जेल को कृष्ण मंदिर कहा। सन् 1920 के आंदोलन से पहले इन्होंने जेल को पवित्र स्थल कहा और यह भी कहा कि उस स्थान की धूल मस्तक पर लगाने योग्य होगी। जिन समस्याओं को लेकर गुप्त जी ने लिखा वह आज भी हमारे समक्ष उपस्थित है। परन्तु बालमुकुंद गुप्त अपनी दूर दृष्टि से भावी समस्याओं को देख रहे थे और उनका समाधान भी बता रहे थे।

बालमुकुंद गुप्त विविध विषयों के जानकार थे, इसलिए उन्होंने अपने पत्रों को सिर्फ राजनीति तक ही सीमित नहीं रखा। विभिन्न व्यक्तियों के रेखाचित्र और जीवन चरित्र उन्होंने 'भारतमित्र' में प्रकाशित करवाए। विभिन्न विषयों की पुस्तकों का अनुवाद हिंदी में करवाया। मातृभाषा के लिए उन्होंने विशेष प्रयत्न किया। वे चाहते थे कि अच्छे-अच्छे लेखकों की पुस्तकों का अनुवाद हिंदी में हो। हिंदी में अच्छी पुस्तकें लिखी जाएं, जो विद्यार्थी अंग्रेजी पढ़ते हैं उनके हृदय में हिंदी रुपी बीज बोया जाए। 'गुप्त जी' ने यूरोपीय और भारतीय इतिहासविदों के बारे में लिखा। उर्दू-फारसी के रेखाचित्र भी लिखे।

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.5

गुप्त जी भारतीय संस्कृति और आदर्श के उपासक थे। उनके मन में क्रूर शासक अंग्रेजों के प्रति रोष और प्रतिरोध का भाव था, तो भारतीय जनमानस के प्रति अपूर्व अनुराग और सहानुभूति थी। राष्ट्रीयता उनके मन की भावधारा और हृदय को ऊष्मा, ऊर्जा देने वाली प्राणधारा थी।

3.2 शिवशंभु के चिट्ठे में जातीय चेतनाः-

''ज़माना था गौरांग महाप्रभुओं का जिनके शासन में रोना भी गुनाह था। कोयल का कूकना अपराध था और बुलबुल के गाने पर कठिन प्रतिबंध था। 'इस कफस में बुलबुलों का चहचहाना है मना' किन्तु उसी जमाने में गुप्त जी व्यंग्यात्मक बाण छोड़ते थे। भय का लेशमात्र भी उन्हें अनुभव नहीं होता था। उन्होंने लॉर्ड कर्जन के नाम से 'शिवशंभु के चिट्ठे' लिखे जो व्यंग्य साहित्य के अद्‌भुत उदाहरण हैं। इन चिट्ठों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुप्त जी को तत्कालीन राजनीतिक विषयों तथा समस्याओं का विशद् ज्ञान रहता था और उनके विश्लेषण करने की पैनी दृष्टि एवं क्षमता रहती थी।''[1] ये वाक्य श्री रघुनन्दन मिश्र ने गुप्त जी के बारे में कहे थे। शिवशंभु के चिट्ठों के माध्यम से जिस जातीय भावना को बालमुकुन्द गुप्त अभिव्यक्त कर रहे थे, उनका निचोड़ इन वाक्यों में है। शिवशंभु के चिट्ठे 'बालमुकुंद गुप्त' की श्रेष्ठ कृति है। इसी कृति का दूसरा भाग 'चिट्ठे और खत' है। पहली रचना 'शिवशंभु के चिट्ठे' गुप्त जी के जीवन काल में ही 1906 में भारतमित्र प्रेस, कलकत्ता से ही प्रकाशित हो गई थी। इसमें आठ निबंध है। इन्हीं आठ निबन्धों को ही चिट्ठे कहा जाता है। दूसरी रचना 'चिट्ठे और खत' में ग्यारह निबन्ध हैं। यह रचना उनकी मृत्यु के बाद ही पुस्तककार के रुप में प्रकाशित हो पाई थी। इन ग्यारह निबंधों में कुछ राजनीतिक प्रखरता वाले निबंध हैं तो कुछ सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले निबंध हैं। तीन खत भी इस रचना में सम्मिलित हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

---

1 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्तः शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ.49

'शिवशम्भु के चिट्ठे' पहले उर्दू पत्र जमाना में छपे थे। बाद में भारतमित्र संपादक 'गुप्त जी' ने 'भारतमित्र' में इन्हें छपवाया। इनकी पहली किश्त 11 अप्रैल 1903 के भारतमित्र में प्रकाशित हुई थी। ये चिट्ठे उस समय लिखे गए थे, जब बालमुकुंद गुप्त 'भारतमित्र' के संपादक की हैसियत से लॉर्ड कर्जन के दिल्ली दरबार से होकर आए थे। अपने अनुभवों को व्यंग्य के साथ मिश्रित करके 'गुप्त जी' ने चिट्ठों का आकार प्रदान किया था। डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त का कहना है कि, ''उनके निबन्धों में विदेशी शासकों की नीति पर मीठा व्यंग्य किया गया है। 'शिवशंभु' के उपनाम से उन्होंने अनेक निबन्ध लिखे जो शिवशंभु के चिट्ठों के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें लॉर्ड कर्जन को सम्बोधित करके भारतवासियों की राजनीतिक विवशता को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। कहीं-कहीं उनका व्यंग्य बड़ा तीखा हो गया है।''[1] शिवशंभु शर्मा भंगेडी है। हर समय भांग के नशे में चूर रहता है। किंतु सोते-जागते हर समय भारत का हित ही उन्हें दिखाई देता है। उन्होंने अनेक व्यंग्य प्रधान निबंध लिखे, जिनमें लॉर्ड कर्जन, लॉर्ड मिण्टो और भारत सचिव लॉर्ड मार्ले आदि उनके शिकार बने। अपने व्यंग्य के तीरों से उन्होंने विदेशी शासन की क्रूरता और कूटनीति को अनावृत्त किया। लॉर्ड कर्जन आदि के भारत विरोधी कार्यों को एक-एक करके गिनवाया और देशवासियों में राष्ट्रप्रेम की भावना जगाई। डॉ. राजेन्द्र सिंह का कहना है- ''बालमुकुंद गुप्त का निबंध अत्यंत सशक्त है। अत्याचारों को देखकर तिलमिला उठने वाली देशभक्त आत्मा का व्यंग्य है। उसमें तीक्ष्णता, तड़पन, खीज सब कुछ है। 'शिवशंभु के चिट्ठे' राजनीतिक व्यंग्य में अपना कोई सानी नहीं रखते। भंगेडी शिवशंभु के दिवास्वप्नों में विदेशी शासनों पर करारी चोटें की गई हैं। दिल्ली दरबार, कलकत्ता का जुलूस, विक्टोरिया स्मारक का निर्माण और भारत के शासन काल में उसके द्वारा

---

1 डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, खंड- द्वितीय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010,पृ.349

उपयोग किये गये वैभव-विलास को बुलबुल उड़ाने का स्वप्न कहकर गुप्त जी ने तीव्र चोटें की हैं।''[1]

'शिवशंभु के चिट्ठे' में जातीय भावना का स्पष्ट स्वरुप दिखाई पड़ता है। इन चिट्ठों में उस समय की युग भावना परिलक्षित होती है। ये चिट्ठे इतने लोकप्रिय हुए थे कि अंग्रेजों ने इनका अनुवाद करवाकर पढ़ा था।

कर्जन के आगमन से पूर्व भारत निरंतर पड़ने वाली प्राकृतिक आपदाओं से ग्रस्त था। अकाल, हैजा, प्लेग, दुर्भिक्ष आदि विपदाएँ भारत में मुँह फैलाए बैठी थी। लाखों लोग और पशु मौत के मुँह में समा गए थे। ऐसे समय में जब कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता थी, अंग्रेज शासक ऐश और आराम में डूबे हुए थे। अनावश्यक कार्यों पर अनाप-शनाप व्यय कर रहे थे। 1902 में लॉर्ड कर्जन ने अपने अहं और दंभ को दिखाने के लिए दिल्ली दरबार का आयोजन किया था। इस आयोजन पर एक लाख अस्सी हजार पौण्ड खर्च किए गए। लॉर्ड कर्जन ने कलकत्ता के वायसराय बनते ही लोक विरोधी कार्य आरम्भ कर दिये थे। लॉर्ड कर्जन ने कलकत्ता के मैदान से अखतर लोदी की लाठ को उठवा कर उस स्थान पर 7221875 रुपये की लागत से विक्टोरिया मैमोरियल हाल का निर्माण करवाया। अंग्रेज बस्ती वाले इलाकों में विकास कार्य करवाए और भारतीय इलाकों की अनदेखी की। यूनिवर्सिटी एक्ट पारित करके शिक्षा को मँहगी किया। बंगाल की एकता को तोड़ने के लिए बंग-भंग करवाया।

डॉ. बच्चन सिंह का कहना है, ''लॉर्ड कर्जन की भारत विरोधी नीति से गुप्त जी अत्यधिक क्षुब्ध थे। उस क्षोभ आक्रोश को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने के लिए व्यंग्य एकमात्र तरीका था। इसे व्यंग्य ना कहकर विडंबना (आइरनी) कहना अधिक संगत है। गुप्त जी के चिट्ठों का सारा ढाँचा विडंबनात्मक है।''[2] पहला 'चिट्ठा बनाम

---

1 डॉ. राजेन्द्र सिंह, बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का निबन्ध साहित्य, कवि सभा दिल्ली, शाहदरा, दिल्ली, 1996, पृ.177-178

2 डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.127

लॉर्ड कर्जन' है। जिसमें 'गुप्त जी' ने उन कार्यों की समीक्षा की है जिन्हें लॉर्ड कर्जन ने अपने पहले कार्यकाल के दौरान किया था। इन भारत विरोधी कार्यों पर 'गुप्त जी' ने 'शिवशंभु के चिट्ठों' के माध्यम से तीखी प्रतिक्रिया जाहिर की। कर्जन को उसके कर्त्तव्य की याद दिलाते हुए 'गुप्त जी' कहते हैं, ''आप बारम्बार अपने दो तुम-तराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मैमोरियल हॉल और दूसरा दिल्ली दरबार, पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी'?''[1]

गुप्त जी ने कर्जन की तुलना 'शिवशंभु शर्मा' नामक बालक से की है, जिसे बचपन से ही बुलबुलें रखने का चाव था। परंतु हिंदू होते हुए वह अन्य पठान बच्चों की तरह बुलबुल नहीं रख सकता था। इसलिए स्वप्न में ही बुलबुलों से खेलने का शौक पूरा करता है। परन्तु जब स्वप्न टूटते हैं तो न तो बुलबुल है और न ही आनंद। इसी प्रकार कर्जन के कार्य भी अस्थाई और सारहीन है। दिल्ली दरबार के साथ-साथ विक्टोरिया मैमोरियल हॉल में ही बनी मूर्तियों पर व्यंग्य किया है। ये मूर्तियाँ तो सिर्फ पक्षियों के बैठने के काम आती है। चन्द अमीर लोग इन्हें देखकर चले आते हैं परन्तु जो शासक अच्छे लोकहित कार्य कर गए हैं। उनकी मूर्ति तो प्रजा के हृदय में विद्यमान हैं जैसे- अकबर, विक्रमादित्य आदि। इसी संदर्भ में शिवशंभु शर्मा कहता है- ''यह मूर्तियाँ किस प्रकार के स्मृति चिह्न हैं? इस दरिद्र देश के बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखने से ही विदित होता है कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं है।''[2] इस चिट्ठे के अंत में 'शो और ड्यूटी' में अंतर समझाया कि 'शो' को 'शो' ही समझना चाहिए 'ड्यूटी' नहीं।

दूसरा चिट्ठा 'श्रीमान् का स्वागत' लॉर्ड कर्जन के दोबारा दो वर्ष के लिए आने पर लिखा गया था। यह भारतमित्र के 17 दिसम्बर 1904 के अंक में प्रकाशित हुआ

---

1 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.166
2 वहीं, पृ.167

था। इस चिट्ठे में कर्जन के दोबारा आने पर भारतवासियों के मन में जो उथल-पुथल हो रही थी उसी का वर्णन है- ''इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आए हैं और आप यह जानते भी हैं कि आप क्यों आते हैं। यदि भारतवासियों का बश चलता तो आपको न आने देते और आपका वश चलता तो और भी कई सप्ताह पहले आ विराजते! पर दोनों ओर की बागडोर किसी और के ही हाथ में है।''[1]

इन शब्दों के माध्यम से कर्जन के गर्व पर चोट तथा भारतीयों का कर्जन के आगमन पर विरोध झलकता है। दिल्ली दरबार की व्यवस्थाओं पर जमकर प्रहार किया और कर्जन के आगे की योजनाओं पर भी कटाक्ष किया। गरीब, भूखी, लाचार जनता पर दया दिखाने की बजाय अपनी झूठी शान के लिए पैसे को बर्बाद करना, कर्जन की आदत थी। जो गुप्त जी जैसे संपादक को असहनीय था। लोगों को जागरूक करने के लिए, उनकी सुषुप्त राष्ट्रीयता को जगाने के लिए गुप्त जी को कलम का सहारा लेना पड़ा।

'शिवशंभु के चिट्ठे' की तीसरी किश्त 'वायसराय के कर्त्तव्य' शीर्षक से प्रकाशित हुई। अपने कल्पित नाम, शिवशंभु शर्मा को भारतीय गरीब जनता का प्रतिनिधि घोषित करते हुए 'गुप्त जी' ने लिखा है- ''बिना बुलाये यह दीन भंगड ब्राह्मण शिवशंभु शर्मा तीसरी बार अपना चिट्ठा लेकर आपकी सेवा में उपस्थित है। इसे भी प्रजा के प्रतिनिधि होने का दावा है। इसी से यह राजप्रतिनिधि के सम्मुख प्रजा का कच्चा चिट्ठा सुनाने आया है। आप सुनिये न सुनिये, यह सुनाकर ही जावेगा।''[2]

लेखक का स्पष्ट कहना है कि उसके पास जनता के प्रतिनिधि होने का प्रमाण नहीं है, परन्तु वह फिर भी चिथड़ा-पोश कंगालों का प्रतिनिधि मानता है। क्योंकि उसने इसी मिट्टी में जन्म लिया है और इसी मिट्टी में उसके मरने की इच्छा है। देश

---

1 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.182

2 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.187

के प्रति राष्ट्रीयता जाहिर करता हुआ शिवशंभु कहता है- ''बचपन में इसी देश की धूल में लोटकर बड़ा हुआ, इसी भूमि के अन्न-जल से उसकी प्राण रक्षा होती है।.... ..... गांव में उसका कोई झोंपड़ा नहीं है। जंगल में खेत नहीं है, एक पत्ती भर भी उसका अधिकार नहीं। इस भूमि पर उसका जरा स्वत्व न होने पर भी इसे वह अपनी समझता है।''[1] स्वयं को इसी भूमि का प्रतिनिधि मानकर, कर्जन को इसी धरती का शासक होने के नाते उसके कर्त्तव्यों की याद दिलाते हैं। ''जिन आडम्बरों को करके आप अपने मन में बहुत प्रसन्न होते हैं या यह समझ बैठते हैं कि बड़ा कर्त्तव्य पालन किया, वह इस देश की प्रजा की दृष्टि में कुछ भी नहीं है। वह इतने आडम्बर देख चुकी, सुन चुकी और कल्पना कर चुकी है कि और किसी आडम्बर का असर उस पर नहीं हो सकता।''[2]

कर्जन को पिछले कार्यों के लिए लताड़ते हुए गुप्त जी ने शासक को अपने कर्त्तव्य की याद दिलाई। भारतीय प्रजा के हितों की खातिर लार्ड कर्जन ने क्या किया, यह आईना दिखाया।

एक बात इस चिट्ठे में गुप्त जी ने और कही, वह थी 'सत्य बोलो'। सत्यवादी युधिष्ठिर का उदाहरण देते हुए गुप्त जी कहते हैं- ''सत्यवादी युधिष्ठिर के मुख से जो निकल जाता था, वही होता था। आयु भर में उसने एक बार बहुत भारी पॉलिटिकल जरुरत पड़ने पर कुछ सहसा झूठ बोलने की चेष्टा की थी। वह बात महाभारत में लिखी हुई है। जब तक महाभारत है, वह बात भी रहेगी।''[3]

गुप्त जी ने कर्जन को असत्य बोलने का परिणाम युधिष्ठिर के उदाहरण से समझाने की चेष्टा की है। असत्य बोलने के कारण कर्जन को वाकबीर माना है।

---

1 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.188

2 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.190

3 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं.- 2005, पृ. 172

उसकी कथनी और करनी में अंतर माना है। चौथे चिट्ठे में 'गुप्त जी' ने अंग्रेजों की उस नीयत का पर्दाफाश किया है, जिसके कारण वे भारतीयों को नीच और गिरा हुआ मानते हैं। उनकी प्रगति के रास्ते बंद करते हैं। भारतीयों को हमेशा नीच, गंवार, हीन और असभ्य बनाए रखना चाहते हैं, ताकि वे उन पर शासन करते रहें। उन्हें शारीरिक और मानसिक रुप से इतना प्रताड़ित करते हैं कि उनकी सोचने-समझने की शक्ति क्षीण हो जाए। 'पीछे मत फेंकिए' निबंध अंग्रेजों की इसी मानसिकता को दर्शाता है। अंग्रेजों और भारतीयों की तुलना करते हुए गुप्त जी कहते हैं- ''आप जैसे उच्च श्रेणी के विद्वान के जी में यह बात कैसे समायी कि भारतवासी बहुत से कार्य करने में योग्य नहीं और उनको आपके सजातीय ही कर सकते हैं। श्रम में, बुद्धि में, विद्या में, काम में, वकतृता में, सहिष्णुता में, किसी बात में, इस देश के निवासी संसार में किसी जाति के आदमियों से पीछे रहने वाले नहीं है।''[1]

इसी निबंध में कर्जन की तुलना रावण से की है। आज अंग्रेजी साम्राज्य का सूर्य चमक रहा है। परन्तु एक दिन ऐसा आएगा जब ये लोकविनाश के कार्य इसी साम्राज्य के पतन के कारण बनेगा। कितने ही शासक आए परन्तु इस भूमि को अपने साथ कोई नहीं ले जा सका। भारतीय प्रजा को भगवान ने आपको अर्पण किया है, अब यह आपके हाथ में है कि इसका उद्धार कीजिए या विनाश।

भारत की प्राचीन सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक उपलब्धियों का बखान करते हुए 'गुप्त जी' ने अंग्रेजों को ललकारा है। अंग्रेज भारतीयों का अस्तित्व समाप्त करना चाहते हैं परंतु ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि भारतीयों की जड़े इतनी मजबूत हैं कि कोई भी विदेशी शासक उन्हें हिला नहीं पाएगा। ''जिस जाति से पुरानी कोई जाति इस धरा-धाम पर मौजूद नहीं, जो हजार साल से अधिक की घोर पराधीनता सहनकर भी लुप्त नहीं हुई, जीती है, जिसकी पुरानी सभ्यता और विद्या की आलोचना करके

---

1 (सं.) निर्मला जैन, रेखा सेठी, निबंधों की दुनियाः बालमुकुंद गुप्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली- 2009, पृ. 33

विद्वान और बुद्धिमान लोग आज भी मुग्ध होते हैं, जिसने सदियों से इस पृथ्वी पर अखंड शासन करके सभ्यता और मनुष्यत्व का प्रचार किया, वह जाति क्या पीछे हटाने और धूल में मिला देने के योग्य है?''[1]

अगला निबंध 'आशा का अंत' उस मानसिकता को दर्शाता है जिसमें भारतीयों ने अंग्रेजों से किसी भी लोकहित कार्य की अपेक्षा ही छोड़ दी थी। भारतीय प्रजा अंग्रेजी राज के सुख स्वप्न देखा करती थी, परन्तु उनके यह स्वप्न शिवशंभु शर्मा के बुलबुल वाले स्वप्नों की भांति भंग हो जाते हैं। कर्जन ने स्थानीय संस्थाओं में भी भारतीयों की सदस्यता समाप्त कर दी थी। बहुत से ऐसे पद थे जिन पर भारतीय कार्य नहीं नहीं कर सकते थे, सिर्फ अंग्रेज ही कर सकते थे। गुप्त जी ने इस भेदभाव की नीति की तीखी आलोचना 'आशा का अंत' निबंध में की। ''अंत में गत वर्ष आपने यह भी साफ कह दिया कि बहुत से पद ऐसे हैं, जिनको पैदाइशी तौर से अंग्रेज ही पाने के योग्य हैं।''[2]

स्वदेश प्रेम का चित्रण करते हुए 'गुप्त जी' ने यहाँ के निवासियों की नैतिक दशा का वर्णन किया है। इतनी विपरित परिस्थितियों में भारतीयों का मनोबल नहीं गिरा है। भारतीयों की इन्हीं विशेषताओं का वर्णन करते हुए 'गुप्त जी' ने कहा- ''सुनिये, विजित और विजेता में बड़ा अंतर है जो भारतवर्ष हजार साल से विदेशीय विजेताओं के पांवों में लौट रहा है, क्या उसकी प्रजा की सत्यप्रियता विजेता इंग्लैंड के लोगों की सत्यप्रियता का मुकाबला कर सकती है? यह देश भी यदि विलायत की भांति स्वाधीन होता और यहाँ के लोग ही राजा होते, तब यदि अपने देश के लोग ही यहाँ के राजा होते, तब यदि अपने देश के लोगों को यहाँ के लोगों से अधिक सच्चाा साबित कर सकते तो, आपकी अवश्य बहादुरी होती।''[3]

---

1 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.194

2 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.200

3 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.202

प्रत्येक निबंध में 'गुप्त जी' अंग्रेज शासकों को यह याद दिलाना नहीं भूले कि भारतीय प्रजा की अंग्रेजी राज में क्या हालत है? एक शासक के कर्त्तव्य क्या होते हैं? राष्ट्रभक्ति की भावना से ओत-प्रोत 'गुप्त जी' अंग्रेजों की राजभक्ति को सिरे से नकारते हुए लोगों को जागरुक करने का प्रयत्न किया। भारतीयों के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक वैभव का बखान करते हुए भारतीयों के नैतिक चरित्र को उजागर किया है।

18 मार्च, 1905 के 'भारतमित्र' में 'एक दुराशा' शीर्षक से निबंध प्रकाशित हुआ। इसमें होली के अवसर पर ब्रजराज कृष्ण और ग्वाल बालों की सम्मिलित होली, राजा-प्रजा की समानता का सूचक बताया है, जिसका अंग्रेजी राज में अभाव है। अब समय ऐसा है कि राजा, प्रजा की शक्ल तक नहीं देखता। कर्जन जैसे शासक के बारे में गुप्त जी ने कहा है- ''क्या कभी श्रीमान् का जी होता होगा कि अपनी प्रजा में जिसके दण्ड-मुण्ड के विधाता होकर आये हैं किसी एक आदमी के मिलकर उनके मन की बात पूछे या कुछ आमोद-प्रमोद की बातें करके उसके मन को टटोलें? माई लॉर्ड को ड्यूटी का ध्यान दिलाना सूर्य को दीपक दिखाना है।''[1]

ब्रिटिश राज के बारे में भारतीय प्रजा के क्या विचार हैं, लोग अंग्रेजी शासन के बारे में क्या सोचते हैं, इस बारे में गुप्त जी लिखते हैं- ''क्या कहकर वे अपने राजा और उसके प्रतिनिधि को संबोधित करें? किन संबंधों में ब्रिटिश राज्य में हम अपनी जन्मभूमि में एक उंगल भूमि के अधिकारी नहीं, जिसमें हमारे शरीर को फटे-चिथड़े भी नहीं जुडे और न कभी पापी पेट का पूरा अन्न मिला, उस राज्य की जय हो।''[2]

कर्जन का कार्यकाल पूरा होने पर 'गुप्त जी' ने 'विदाई संभाषण' लिखा। इस निबंध में कर्जन की पिछले कार्यों की समीक्षा है और जाते-जाते बंग-विच्छेद करने का दु:ख भी है। यहाँ से जाने के बाद कर्जन का क्या हाल हुआ होगा? यहाँ पर किए गए

---

1 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.181
2 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.183

कार्यों पर व्यंग्य करते हुए गुप्त जी ने कहा है- ''अब कुछ करना रह भी गया हो तो उसके पूरा करने की शक्ति माई लॉर्ड में नहीं है। आपके हाथों से इस देश को जो बुरा-भला होना था, वह हो चुका। एक ही तीर आपके तर्कश में और बाकी थी, उससे आप बंगभूमि का वक्षस्थल छेद चले। बस यहीं आकर आपकी स्मरण शक्ति समाप्त हो गई। इस देश की भलाई की ओर तो आपने उस समय भी दृष्टि न की, जब कुछ भला करने की शक्ति भी आप में थी।''[1]

जाते-जाते लॉर्ड कर्जन ने अपना आखिरी हथियार चलाकर बंगाल के दो टुकड़े कर दिये। परन्तु बंगाल की राष्ट्रीय एकता को नहीं तोड सके। ''यह बंग विच्छेद बंग का विच्छेद नहीं है। बंग निवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए वरन् और युक्त हो गए। जिन्होंने गत 16 अक्टूबर का दृश्य देखा है, वह समझ सकते हैं कि बंग देश या भारतवर्ष में ही नहीं अपितु पृथ्वी भर में यह अपूर्व दृश्य था।''[2]

3.3 भारतमित्र में सामाजिक जागरणः

'भारतमित्र' आरंभ से ही राजनीतिक पत्र रहा था। यद्यपि सामाजिक मुद्दे भी इसमें समय-समय पर उठते रहे, परन्तु राजनीतिक अभाव की पूर्ति करना ही मुख्य उद्देश्य रहा। उस समय के नामी पत्रों में सारसुधानिधि, उचित वक्ता, और भारतमित्र ही प्रमुख थे। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र का कहना है- ''साहित्य के साथ ही अन्य विषयों के लेख भी इन पत्रों में प्रकाशित होते थे। साहित्य और राजनीति की प्रमुखता रहती थी। इन पत्रों में प्रहसन, व्यंग्य तथा ललित निबंधों की अधिक संख्या रहती थी। इन पत्रों का एकमात्र उद्देश्य था सामाजिक कुरीतियों से लड़ना और जातीय उन्नयन। इसीलिए सामाजिक और राजनीतिक विषयों की ओर इन पत्रों का विशेष झुकाव था। ''कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले पत्रों में 'भारतमित्र' 'सारसुधानिधि' और 'उचितवक्ता'

---

1 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.188
2 वहीं, पृ.190

अपनी राजनीतिक तेजस्विता के लिए अत्यंत प्रसिद्ध एवं सम्मानित थे।''[1] देश, दशा, समाज, शासन का यथार्थ चित्रण उस समय के समाचार पत्रों में पाया जाता था। पत्रों के संपादकों ने असाधारण साहस का परिचय देते हुए राजनीतिक और सामाजिक वातावरण का खुला वर्णन किया है।

'भारतमित्र' का प्रकाशन पं. छोटूलाल मिश्र और पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र ने किया। बंगला पत्र 'सोमप्रकाश' से प्रभावित होकर पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र के मन में हिंदी पत्र-प्रकाशन की महत्त्वाकांक्षा उदित हुई। पं. छोटूलाल मिश्र पत्र के संपादक थे और पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र प्रबंध संपादक। इसका पहला अंक 17 मई, 1878 ई0 को पाक्षिक रुप में, सरस्वती प्रेस कलकत्ता से निकला था। अपनी पहली ही संख्या में इस पत्र ने अपना उद्देश्य स्पष्ट किया था। इस पत्र के बारे में डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र लिखते हैं- ''राजा, प्रजा, राज्य, व्यवस्था, वाणिज्य, भाषा और सबके ऊपर देशहित की चर्चा करने वाला 'भारतमित्र' एक तेजस्वी राजनीतिक पत्र के रुप में चर्चित और विख्यात हुआ..... सुसभ्य प्रजा हितैषी राजा लोग समाचार पत्रों को स्वाधीनता देकर उत्साहित करते हैं- क्योंकि समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरुप होता है।''[2]

आरंभ से ही 'भारतमित्र' की नीति समाज कल्याण की रही थी। चाहे वह राजनीतिक के माध्यम से हो, चाहे वह आर्थिक समस्याओं को लेकर और चाहे वह भाषा के महत्त्व को लेकर रही है। अंग्रेजों की नीतियों को जनता के सामने लाना और उनके सुशासन का भंडाफोड करना ही भारतमित्र का उद्देश्य रहा।

वह समय राजनीतिक, सामाजिक और भाषा संबंधी आंदोलनों का था। इन्हीं आंदोलनों का प्रभाव उस युग के साहित्य पर भी दिखाई पड़ता है। जनता को जगाने का माध्यम यही पत्र-पत्रिकाएँ थी। इसीलिए पत्र संपादकों ने अपनी समस्त शक्ति लगाकर पत्र साहित्य की परम्परा को जीवित रखा। उस समय पत्र का लिखा हुआ

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 1985, पृ.115-116
2 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ.130

एक-एक शब्द सत्य माना जाता था। इसीलिए समाज की बुराइयों का शोधन करने का माध्यम भी यही पत्र-पत्रिकाएँ थी। यह साहित्य जनता का साहित्य था, इसकी भाषा हिंदी थी। हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए व्यापक आंदोलन हो रहे थे। अलग-अलग मातृभाषी लोगों ने अपनी मातृभाषा में लिखना छोड़कर हिंदी में लिखना आरंभ किया। यह एक बहुत बड़ी बात थी। हिंदी के माध्यम से समाज में जागृति लाने की कोशिश की जा रही थी। हिंदी, नागरी और गोरक्षा सामाजिक चेतना के पर्याय बन गए थे, जिसका समर्थन राष्ट्रहित वाले पत्र कर रहे थे। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है- ''वे अपने साहित्य की रचना कचहरियों की भाषा में न कर सकते थे, उसके लिए जनता की भाषा को अपनाना आवश्यक था। कचहरी, सरकार और अन्य विशिष्ट वर्गों के विरोध के होते हुए भी उन्होंने हिंदी गद्य का एक रुप स्थिर किया।''[1]

तात्कालिक समाज अनेक सामाजिक बुराइयों से घिरा हुआ था। पाश्चात्य संस्कृति और नवीन शिक्षा प्राप्त वर्गों की बदली हुई मानसिकता के परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक जीवन के आदर्श डगमगाने लगे थे। ऐसे समय में संवेदनशील रचनाकारों ने अपने पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज की दशा सुधारने का बीड़ा उठाया। डॉ. मीरा रानी बल का कहना है, ''उस काल में व्याप्त जाति-व्यवस्था अनेक वैवाहिक कुसंस्थाओं, पर्दा-प्रथा आदि सामाजिक समस्याओं के विरूद्ध व्यापक अभियान छेड़कर उसने सामाजिक जन-जागरण का प्रवर्त्तन किया था। अतः सामाजिक चेतना के उद्‌बोधन में जितनी भूमिका तत्कालीन समाज-उन्नायकों राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, रानाडे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि की रही उनसे अधिक नहीं तो उनके समकक्ष उस युग के पत्रकारों की भी रही।''[2]

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.14

2 डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.155

'भारतमित्र' उस समय के पत्रों में अग्रणीय था। सामाजिक समस्याओं को लेकर 'भारतमित्र' में समय-समय पर लेख प्रस्तुत होते रहते थे। आरंभ से ही इसकी नीति सामाजिक, राजनीतिक हित की रही। इसके पहले संपादक छोटूलाल मिश्र पुरातन प्रिय थे, परन्तु सामाजिक सुधारों का खुलकर समर्थन किया और यह रीति आगे तक चलती रही। बाल-विवाह को सरकार ने असंवैधानिक घोषित कर दिया था, परन्तु कुछ रुढिवादी लोग इसका विरोध कर रहे थे तो भारतमित्र ने सरकार का समर्थन करते हुए कहा कि- ''उन्नति के प्रधान प्रतिबंधक बाल्य विवाह को समाज से विदूरित कर्ने के लिए ऐसा यत्न कर रही हैं और सब आदमियों को एकतान होकर इस नियम के शीघ्र ही प्रचलित हो जाने की पोषकता कर्नी चाहिए।''[1]

बाल विवाह को निषेध करने के लिए भारतमित्र ने एक उपाय और सुझाया था, 2 जून, 1878 के लेख में लिखा था- ''बंग देश से बाल विवाह उठा देने के लिए प्रसिडेन्सी विभाग के स्कूल इनस्पेकटर ने एक उपाय स्थिर किया है, जो बालक विवाहित है वो कलकत्ते के विश्वविद्यालय में प्रवेशिका प्रवेश न देने पावे, इस प्रकार का एक आइन करना उचित है।''[2] राजनीतिक समस्याओं के साथ-साथ अकाल, गरीबी, भूखी, बेरोजगारी, धार्मिक मुद्दों पर भी 'भारतमित्र' ने लिखा। भारत से निर्यात होने वाले चावलों पर ड्यूटी हटाने का अनुरोध लंदन के एक अंग्रेज मिस्टर जर्जटकर ने 'टाइम्स' पत्र में किया तो 'भारतमित्र' संपादक ने 19 सितम्बर, 1878 ई0 के अंक में संपादक ने टिप्पणी दी जिसका शीर्षक था। 'अपने को ठाँव नहीं, पाँच पीर संग चले।' भारतवर्ष में उस समय अकाल पड़ा हुआ था और अंग्रेज बाहर चावल भेज रहे थे। इसी पर कटाक्ष करते हुए संपादक ने लिखा था, ''दूसरे का दुःख दूर करने के पहले उसी प्रकार अपना दुःख दूर करना उचित है, इस देश में आजकल जैसी दुर्भिक्ष की

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985, पृ.409-410

2 उद्धृत डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.158

बढ़ती है उसके लिए देश-हितैषी समदु:खगणों को यह उचित है जो पहले भारत को उस कष्ट से बचावे तब उस्से और का अपकार करे जो स्वयं दीन, निराहार और मुट्ठी भर अन्न के लिए लालायित रहते हैं। उनसे सहाय्य की प्रार्थना करना और बलपूर्वक छीन लेना दोनों एक ही समान है।''[1]

'भारतमित्र' के 1883 ई0 के कई अंकों में सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी के बंगाली पत्र पर राजद्रोह का मुकदमा चलाने और इलबर्ट बिल की चर्चा हुई। प्रेस एक्ट के रद्द करने पर लॉर्ड रिपन का धन्यवाद किया गया। उनकी प्रशंसा में कई लेख 'भारतमित्र' में निकले। स्वामी दयानन्द के सामाजिक कार्यों की सदैव भारतमित्र ने प्रशंसा की, यद्यपि दयानन्द से वैचारिक मतभेद हिंदू धर्म के अनुयायियों के थे।

30 अक्टूबर, 1883 ई0 को स्वामी दयानन्द का देहांत हुआ था। 1 नवंबर, 1883 ई0 के लेख में 'स्वामी दयानंद सरस्वती' नामक लेख निकला। इस लेख के बारे में 'गुप्त निबंधावली' में कहा गया है, ''उसमें स्वामी दयानंद जी की बहुत कुछ प्रशंसा की गई है और उनको महात्मा कहकर स्मरण किया गया है। ..... इस महात्मा के जो संकल्प थे यदि सब पूर्ण हो जाते, हमें इनके मरने का इतना बड़ा शोक न होता।''[2] 1884 ई0 के अंकों में हिंदी आंदोलनों की चर्चा की गई। पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी ने लिखा है, ''भारतमित्र किसी स्वार्थसाधना के लिए नहीं निकाला गया था। इसका उद्देश्य एक राजनीतिक पत्र का अभाव दूर करना था। इसमें राजनीति की चर्चा तो मुख्यकर होती थी, अन्य आनुषङ्गिक विषय भी छूटने नहीं पाते थे। उन दिनों हिंदी का आंदोलन करना हिंदी पत्रों का कर्त्तव्य समय-समय पर हिंदी की हिमायत में लिखे गये। गो-रक्षा पर भी अच्छे लेख निकले और अनेक लोकोपकारी विषयों की चर्चा हुई।''[3]

---

1 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली 1985, पृ.410

2 (सं.) बृजकिशोर वशिष्ठ, उर्दू-हिंदी समाचार पत्रों का इतिहास (बालमुकुन्द कृत), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.130

3 पं. अम्बिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, 2005, पृ.146

उर्दू-हिंदी के विवादों को भी भारतमित्र ने स्थान दिया। 1886 और 1887 में गोरक्षा जैसे मुद्दों को बड़े जोश के साथ भारतमित्र ने उठाया। 1891 में 'सहवास बिल' का तीव्र विरोध 'भारतमित्र' ने किया। 1894 ई0 में एक महत्त्वपूर्ण समाजपयोगी कार्य 'भारतमित्र' ने किया वह था कलकत्ता में पानी के जुए का खेल बंद करवाना। पानी के इस खेल में बहुत से लोग बर्बाद हो गए, जिसके कारण अपराधियों की संख्या बढ़ गई थी। ''भारतमित्र ने इसका आंदोलन आरंभ किया। पहले उसे कई बार विफल मनोरथ होना पड़ा पर अन्त में सन् 1897 ई0 में सफलता प्राप्त हुई। बंगाल गवर्नमेंट ने पानी का जुआ बन्द करने के लिए एक आईन बना दिया।''[1]

एक अन्य समाजपयोगी कार्य की सफलता भी 'भारतमित्र' के माध्यम से हुई वह था चेक का भुगतान रात को बंद करवाना। कलकत्ता के व्यापारियों या महाजनों से बंगाल बैंक रात से ही भुगतान वसूला करते थे। परन्तु 'भारतमित्र' ने बंगाल बैंक के मुंशी की सहायता से रात का भुगतान बंद करवाया।

इस कार्य के बारे में बालमुकुंद गुप्त ने लिखा है- ''भारतमित्र कलकत्ते के बड़े बाजार का पत्र है इससे बड़े बाजार की सेवा वह जन्मदिन से करता आया है। पानी का जुआ उठवा देने में उसने बड़े बाजार की अच्छी सेवा की। उसके बाद दूसरा काम का भुगतान उठवा देना है। पहले बड़े बाजार के मारवाडियों में दस्तूर था कि वह हुण्डियों के रुपये का भुगतान रात को किया करते थे। रात को दो-दो बजे रुपये चुकाने पड़ते थे। इसमें बड़ा कष्ट और अनर्थ होता था। वह चाल आंदोलन करके उठाई गई।''[2]

16 जनवरी, 1899 ई0 को 'गुप्त जी' ने 'भारतमित्र' का संपादन भार संभाला। इन्होंने आते ही जनहित को ध्यान में रखते हुए पत्र का आकार तो बढ़ा

---

1 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.497

2 (सं.) बृजकिशोर वशिष्ठ, उर्दू-हिंदी समाचार पत्रों का इतिहास (बालमुकुन्द कृत), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.143-144

दिया परन्तु मूल्य घटा दिया। 'भारतमित्र' के संबंध में गुप्त जी के मत इस प्रकार से थे, ''भारतमित्र राजनीतिक पत्र है, आदि से इसकी यही पॉलिसी है। हिंदी का प्रचार और राजनीतिक चर्चा इसके प्रधान उद्देश्य हैं। धर्म का आंदोलन करना इसकी पॉलिसी नहीं है पर जरुरत पड़ने पर उसी में शरीक होना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। सदा से पुरानी चाल के हिंदू इसके परिचालक हैं, इससे उनके धर्म की इसे काम पड़ने पर तरफदारी करनी पड़ती है। यही चाल इसकी आरंभ से अब तक है।''[1]

बाबू बालमुकुंद गुप्त के संपादन काल में 'भारतमित्र' में उनकी रचना 'चिट्ठे और खत' लेखों के रुप में प्रकाशित होते रहे। इन लेखों में बहुत से लेख सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रखते थे। मेले का ऊँट, मनुष्य गणना, अधिमास निर्णय मेम्बर बुलाने की तरकीब, मारवाड़ी महाशयों के नाम आदि कुछ ऐसे ही निबंध हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी कविताएँ भी सामाजिक पृष्ठभूमि को लिए हुई थी। 'मेले का ऊँट' निबंध में लेखक ऊँट की अनदेखी पर क्षोभ प्रकट करता हुआ वर्तमान मारवाड़ी समाज पर व्यंग्य करता है। ऊँट भूतकाल में किए गए कार्यों की याद दिलाता हुआ कहता है, ''आज से पचास साल पहले रेल कहाँ थी। मैंने मारवाड़ से मिरजापुर तक और मिरजापुर से रानीगंज तक कितने ही फेरे किए हैं। महीनों तुम्हारे पिता तथा उनके भी पिताओं का घर-बार मेरी ही पीठ पर रहता था। जिन स्त्रियों ने तुम्हारे बाप और बाप के भी बाप को जना है वह सदा मेरी पीठ को ही पालकी समझती थी। मारवाड में मैं सदा तुम्हारे द्वार पर हाजिर रहता था, पर यहाँ वह मौका कहाँ है?''[2]

9 मार्च 1901 को 'मनुष्य गणना' नाम से निबंध भारतमित्र में छपा, जिसमें मर्दों और हिजड़ों की तुलना की गई है। बहुत से ऐसे कार्य जिन्हें करने में मर्दों को

---

1 (सं.) बृजकिशोर वशिष्ठ, उर्दू-हिंदी समाचार पत्रों का इतिहास (बालमुकुन्द कृत), स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.140

2 (संपादक) निर्मला जैन, रेखा सेठी, निबंधों की दुनियाः बालमुकुंद गुप्त, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2009, पृ.63

शर्म आनी चाहिए, परंतु फिर भी वे करते हैं, इसीलिए लेखक ने व्यंग्य किया है कि फिर मनुष्य गणना में हिजड़ों को मर्द क्यों न लिखा जाए? मर्द स्त्री बनकर नाचते हैं, अपने से अच्छी आर्थिक स्थिति वाले की खुशामद भी करते हैं, अब मर्दों ने हथियार रखना भी छोड़ दिया है। बहुत से मर्द स्त्रियों के इशारे पर नाचते हैं। ये सारे कार्य हिजड़े भी करते हैं। आगे चलकर बेगार देने पर व्यंग्य किया है कि हम कमजोर पड़कर बेगार क्यों देते हैं? सरहदी लड़ाई में सरकार ने हरियाणा और पंजाब के लोगों से बेगार लिया था, बैलगाडियों और ऊँट के रुप में, और अब किसी भी आदमी को पकड़कर मनुष्य गुणना करने को दे देते हैं।

इसी प्रकार का एक और निबंध 'अधिमास निर्णय' 15 जून, 1901 के 'भारतमित्र' में छपा। इस निबंध में पंडितों की उस व्यवस्था पर कटाक्ष किया है जिसमें उन्होंने लोगों को मूर्ख बनाकर वर्ष के मास को एक से दो कर देते हैं, जैसे कुछ लोग दो दीवाली, दो होली, दो जन्माष्टमी मनाते हैं। उसी प्रकार काशी के पंडितों ने आषाढ़ को अधिमास सिद्ध किया है और श्रावण को अधिमास दरभंगा नरेश ने सिद्ध किया है। कुछ लोग दो आश्विनी होने की बात कहते हैं, क्योंकि इसमें दो पितृपक्ष होंगे तो ब्राह्मणों को लाभ मिलेगा। कुछ लोग कार्तिक मास के अधिमास होने की बात करते हैं। परन्तु लेखक (शिवशंभु शर्मा) चाहता है कि दो होली के दो त्योहार हो क्योंकि होली गरीबों का त्योहार है। होली को अमीर-गरीब, राजा-प्रजा सब मिलकर मनाते हैं। सामाजिक पृष्ठभूमि को लिए हुए अगला निबंध 'मेम्बर बुलाने की तरकीब' है। मारवाडियों की विसंगतियों को यह निबंध उजागर करता है। मारवाड़ी एसोसिएशन नामक संस्था के मेम्बर सभा की मीटिंग में उपस्थित नहीं होते। मेम्बर लोग इसे फालतू का काम समझते हैं और चाहे-अनचाहे चंदा भिजवा देते हैं। संपादक बालमुकुंद गुप्त ने कुछ रोचक उपाय सुझाए जिससे लोग सभा में आ सके-

''1. मेम्बरों के पास जो बुलावे का कार्ड भेजा जाता है वह न भेजकर पारसी थियेटर वाले के विज्ञापन की भांति बाजे-गाजे के साथ विज्ञापन बंटा करें।

2. कभी-कभी एसोसिएशन हॉल में कोई थियेटर या ख्याल जरूर करें। बहुत मेम्बर आया करेंगे।

3. कभी-कभी डॉक्टर कैलास बाबू को भी सभी की ओर से निमन्त्रित किया जाया करे। उनके आने से अवश्य खूब भीड़ होगी।''[1]

इसके अतिरिक्त और भी उपाय जैसे एसोसिएशन हॉल में महफिल का आयोजन, हॉल के द्वार पर झण्डा, रोशनी और बाजे का प्रबंध, मेम्बरों को बुलाने के लिए आने-जाने की गाड़ी का प्रबंध किया जाए।

स्वयं मारवाडी समाज का हिस्सा होते हुए 'गुप्त जी' ने मारवाडी समाज की बहुत सी विसंगतियों को निबंधों के माध्यम से उठाया। 'मारवाडी महाश्यों के नाम' निबंध में संपादक ने मारवाडियों के अधर्म के रास्ते पर चलने पर व्यंग्य किया है। कुछ मारवाडियों ने विद्या के प्रति अनुग्रह दिखाया तो संपादक ने कटाक्ष करते हुए कहा, ''खबरदार! खबरदार! विद्या के कभी पास न फटकना। विद्या का और तुम्हारा कुछ मेल नहीं। चौदह पीढ़ी तक का पता लगा लो विद्या से तुम्हारा कुछ सरोकार नहीं निकलेगा। विद्या तुमसे और तुम विद्या से सदा कोसों तक भागते रहे हो। विद्या ने तुमसे और तुमने विद्या से कभी कुछ लाभ नहीं कमाया। जहाँ तुम रहते हो वहां से कोसों दूर खड़े रहकर भी विद्या के पर जलते हैं। ऐसे जो तुम हो तुम्हें विद्या से क्यों सरोकार है।

कलकत्ते में जब तुम्हारे पूर्व पुरुष आए तो उन्हें विद्या अपनी पीठ पर चढ़ा के नहीं लाई थी, ऊँट लाया था।''[2]

किसानों की दुर्दशा का जो चित्रण भारतमित्र संपादक 'बालमुकुंद गुप्त' ने जो अपनी कविताओं में किया है वह अन्य कहीं दुर्लभ है। उनकी कविताओं के माध्यम से

---

1 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड- 3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.93

2 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.97

उस समय की साम्राज्यवादी लूट का अनुमान लगाया जा सकता है। जो लगान किसानों को देना होता था वह उनकी फसल से भी ज्यादा होता था। अंग्रेज शासक लगान वसूलने के लिए अत्याचार और लूट का सहारा लेते थे। जो किसान सारे समाज के लिए अनाज उपजाते हैं वह स्वयं भूखे मरते हैं। उनकी यही दशा आज की भी है। गुप्त जी ने अपनी हर रचनाओं में समाज की यथार्थ स्थिति का वर्णन किया है चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक, भारतमित्र' में छपी 'रामविनय' कविता में लिखते हैं-

''बहु दिन बीते राम प्रभु खोये अपनो देस।
खोवत है बैठ के भाषा भोजन भेस।।
नहीं गांव में झूपडो नहिं जंगल में खेत।
घर ही बैठे हम कियो अपनो कंचन रेत।।''[1]

भारतमित्र 15 अक्टूबर, 1904 को भूख ओर गरीबी का यथार्थ चित्रण 'गुप्त जी' ने भारतमित्र के माध्यम से किया। 'हे राम' में लिखते हैं-

''केते बालक दूध के बिना अन्न के कौर।
रोय-रोय जी देते हैं कहा सुनावे और।।''[2]

(भारतमित्र 1 अक्टूबर, 1904)

लेखक भक्ति की रचनाओं में भी भगवान से देश की दशा सुधारने की प्रार्थना करता है। उनके केंद्र में गरीब जनता ही है।

अन्य रचनाओं में समाज की अन्य विसंगतियों को उभारा गया है। ढोंगी, पाखंडी गुरुओं और उनके शिष्यों की भी पोल खोली गई है। 'बाबाजी वचनम्' (जोगीड़ा) इसी प्रकार की रचना है जिसमें गुरु ओर चेले की वास्तविकता समाज के सामने लाई गई है। धनिक-रसिक समाज की रहन-सहन और जीवन शैली पर व्यंग्य

---

1 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.489

2 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.487

करते संपादक गुप्त जी ने 'आजकल का सुख' कविता लिखी। धनी-रसिक समुदाय के लोग घर में बीवी के होते हुए भी अन्य कहीं प्रेम ढूँढते हैं। लेखक ने कहा है-

''पद्मिनी घर में है पर उससे सुख मिलता नहीं।
उसके कोरे प्रेम से दिल का कमल खिलता नहीं।।.....
देशहित कह कहके नाहक फाडते हो क्यों गला।
कौन परहित में फँसेगा छोड़के अपना भला।।.....
धूल लिखना खाक पढ़ना जाय सब चूल्हे में जाय।
कुछ न सोचो नाच मुंजरे और मदिरा के सिवाय।।''[1]

धनी लोग सिर्फ भोग विलास में डूबे रहते थे। उन्हे विद्या, परिश्रम, देशहित से कोई सरोकार नहीं था। हिंदू समाज की दूषित मनोवृत्तियाँ इस कविता के माध्यम से उभारी गई हैं।

स्त्रियों की दशा दिखाने के लिए कुछ रचनाएँ 'भारतमित्र' में आई। इनमें से कुछ रचनाएँ तो स्त्री की सोचनीय दशा को प्रदर्शित करती थीं तो कुछ ऐसी भी थीं जोकि पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित और भारतीय संस्कृति से दूर होती स्त्रियों के लिए थी। बाल-विधवा के पुनर्विवाह के समर्थन में 'गुप्त जी' ने लिखा है- ''बालक विधवा की शादी में करते हैं जो चूक, ऐसे मूरख भ्रातगण के फिट्टे मुँह पर थूक।''[2]

नारियों की सोचनीय दशा को उभारने के लिए 'अबला विलाप' कविता 12 जून 1899 ई0 के भारतमित्र में छपी। बाल-विनोद के लिए भी भारतमित्र में बहुत सी सामग्री छपी। स्वयं संपादक गुप्त जी ने बच्चों के लिए 'खिलौना' नाम की पुस्तक चित्रों सहित सरल हिंदी में छापी। बच्चों का मनोबल ऊँचा उठाने के लिए गुप्त जी ने 'जरुर कर सकते हो' 'रेलगाड़ी', प्रभात, खल और साधु जैसी कविताएँ लिखीं।

---

1 (सं.) पं. झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.690, 693, 694

2 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.351

''जो जल में नहिं घुसे तैरना उसको कैसे आवे,
जो गिरने से हिचके उसको चलना कौन सिखावे।''.....
हिसहिस, हिसहिस हिसहिस करती रेल धडाधड जाती
जिन जंजीरों से जकड़ी है उन्हें खूब खुडकाती है।
दोनों और दूर से दुनिया देख रही है बाँध कतार,
धुएँ के बल से जाती है धुआं उड़ाती धूंआधार।।''[1]

'गुप्त जी' ने 'भारतमित्र' के माध्यम से हिंदू मर्यादा व हिंदूपन की बात कही है। परंतु उनका हिंदूपन कर्मकांडी व पूजा-पाठी नहीं है। उनका हिंदूपन नैतिकता में है, आचरण में है। मध्यकालीन संतों की तरह उन्होंने सदैव धार्मिक शिक्षाओं को महत्त्व दिया। हिंदू धर्म के माध्यम से ही उन्होंने नैतिकता एवं सामाजिक मर्यादा का बोध उत्पन्न कराया है। उनके हिंदू धर्म में दूसरे धर्म के प्रति नफरत या घृणा का भाव नहीं है। उनमें अपने धर्म को श्रेष्ठ या अन्य को निष्कृष्ट करने का भाव नहीं दिखाई देता। हिंदू धर्म का आडम्बर रहित प्रचार करने वाले के लिए 'गुप्त जी' कहते हैं-

''हिंदूपन पर लेक्चर झाड़ो, गाओ ताल बेताल,
कलम चलाओ, बात बनाओ, गला फाड़ चिल्लाओ।
हिंदू धरम प्रचार करो भाई, होनोलूलू जाओ,
जो न बने तुमसे कुछ भाई, पीटो पकड़ लुगाई।''[2]

मध्यकालीन संतों की तरह प्रभु को अपने अंदर ही खोजने को 'गुप्त जी' ने 'मनरे' कविता के माध्यम से कहा है-

''मन रे सब घट के अंदर, क्यों भूला फिरे मछन्दर,.....
देवी देवी सभी इस घट में आंख खोल दर्शन कर।
इस ही में षट् दर्शनशाला धर्मभवन शिवमन्दिर।''[1]

---

1 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.337-338

2 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.455

'भारतमित्र' संपादक बालमुकुंद गुप्त ने धर्म संबंधी निबंध भी लिखे। धर्म उनकी नस-नस में था। उनका धर्म सामिष्टगत था। उनकी धर्म संबंधी विचारधारा में राष्ट्रभक्ति का मिश्रण था। उनका धर्म स्वदेश और स्वजाति-सापेक्ष है। एक बार 'आर्यावत' ने 'भारतमित्र' के नाम और उद्देश्य में अंतर बताते हुए कहा था कि भारतमित्र हिंदुओं का तरफदार है। तो भारतमित्र संपादक गुप्त जी ने आर्यावत के आरोपों का उत्तर देते हुए कहा, ''भारतमित्र भारतवर्ष का कागज है। भारतवर्ष हिंदुओ का देश है। हिन्दुओं की इसमें प्रधानता है। हिंदुओं ने ही 'भारतमित्र' को जन्म दिया है, जिन लोगों ने इसे चलाया है वह हिंदू हैं और जो इसमें लिखते हैं, वह भी हिंदू है। इसी से 'भारतमित्र' हिंदुओं का तरफदार है और वह तरफदारी किसी मजहब वाले से लड़ाई करके नहीं, दूसरे मजहब को अपने मजहब में मिलाने के लिए नहीं, केवल हिंदुओं की मुल्की, माली और राजनीतिक तरफदारी है।''[2]

भारतमित्र हिंदुओं का पत्र अवश्य था, परंतु साम्प्रदायिक नहीं। हिंदी और उर्दू के भेद में भी भारतमित्र ने हिंदी का पूर्ण समर्थन कभी नहीं किया। वह अंग्रेजों की नीतियों को सदैव जनता के सामने लाने का प्रयास करता रहा। वह युग राजनीतिक-मानसिकता पराधीनता का था। अंग्रेजों ने चारों तरफ से शोषण का शिकंजा कसा हुआ था। ऐसे समय में कुछ लोग ऐसे भी थे जो सिर्फ अपने स्वार्थ के लिए अथवा अंग्रेजों की दृष्टि में ऊँचे उठने के लिए शासकों की गुलामी करते थे। ऐसे राष्ट्रद्रोहियों को 'भारतमित्र' ने कभी नहीं बख्शा। 'गुप्त जी' ने 'पंजाब में लायल्टी' और 'हम हैं नमक हलाल' जैसी रचनाओं से राष्ट्रद्रोहियों पर करारा व्यंग्य किया था।

''आप सभी हैं जानते हम हैं नमक हलाल,
ओरों से मिलता नहीं तभी हमारा ख्याल।

---

1 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद रचनावली, खंड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.395

2 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ.265

'घूसखोर' ही है कहा, मारी तो नहिं लात,

फिर क्यों कुरसी त्याग दे ऐसी क्या है बात।''[1]

पंजाब के लोगों की राजभक्ति पर व्यंग्य करते हुए गुप्त जी कहते हैं-

''खान बहादुर-राय बहादुर, कितने ही सरदार नवाब,

सब मिल-जुलकर लूट रहे हैं, लायल्टी का खूस सबाब।

ऐरा-गैरा नत्थू खैरा सब पर इसकी मस्ती है,

लायल्टी लाहौर में अब भूसे से भी कुछ सस्ती है।.....

पेट बन गये हैं इन सबके लायल्टी के गुब्बारे,

चला नहीं जाता है, थककर हाँफ रहे हैं बेचारे।''[2]

अपनी बात को कहने के लिए 'गुप्त जी' ने टेसू और जोगीड़ा जैसे लोकगीतों का सहारा लिया। ताकि जनसाधारण गूढ़ रहस्य वाली बात को भी आसानी से समझ सके।

''घर में बैठे चैन से खाओ, देस भेस चूल्हे में जाओ।

जिन पर है, ईश्वर की मार, उनका कुछ मत करो विचार।

उनके तुम नीरे मत जाओ, अपनी ढोलक आप बजाओ।''[3]

मनुष्य स्वार्थ में कितना अंधा हो जाता है कि वह सिफ अपने पेट की खातिर ही जीता है। इसी बात पर व्यंग्य करते हुए गुप्त जी ने कहा है-

''साधो पेट बड़ा हम जाना, यह तो पागल फिरे जमाना।.....

जबसे जन्मे सिवा पेट के और न कुछ पहचाना,

लड्डू पेड़ा पूरी बरफी रोटी साबूदाना,

---

1 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.426

2 (सं.) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.642-643

3 (सं.) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.697

सब जाता है इसी पेट में हलवा तालमखाना।

यही पेट चटकर गया होटल, पीग्या बोतलखाना।''[1]

स्वदेशी आंदोलन के द्वारा भी 'भारतमित्र' ने लोगों में चेतना जगाई। 'ताऊ और हाऊ' कविता के माध्यम से स्वदेशी चेतना के साथ-साथ राजभक्तों पर भी व्यंग्य किया गया है। 'स्वदेशी आंदोलन', आशीर्वाद (कविता), आशीर्वाद (निबंध) से लोगों को विदेशी माल का बहिष्कार करने ओर स्वदेशी माल अपनाने की प्रेरणा दी है।

बंग-भंग पर बड़े ही मार्मिक लेख 'भारतमित्र' में प्रकाशित हुए। बंग-भंग के पश्चात् हुए स्वदेशी आंदोलन का समर्थन करते हुए 'गुप्त जी' कहते हैं-

''चाहे बंग होय सौ भाग, पर न छूटे अपना अनुराग,

भोग विलास सभी दो छोड़, बाबूपन से मुँह लो मोड़।

छोड़ो सभी विदेशी माल, अपने घर का करो ख्याल,

अपनी चीजें आप बनाओ, उनसे अपना अंग सजाओ,

भजो बंगमाता का नाम, जिससे भला होय अंजाम।''[2]

एक विशेष बात जो भारतमित्र के माध्यम से गुप्त जी ने कही थी 'अंग्रेजी राज की सीधी-सीधी आलोचना'। गुप्त जी ने भारतमित्र में उन पत्रों की भी आलोचना की जोकि अंग्रेजों के प्रति राजभक्ति दिखाते थे। विलायत के 'टाइम्स' पत्र ने भारतीयों को नसीहत दे डाली कि उन्हें स्वाधीनता के बारे में सोचना नहीं चाहिए, क्योंकि अंग्रेजों ने भारत को तलवार के दम पर जीता है और भारतीयों पर अपने दल-बल से ही शासन करेंगे। इस पर गुप्त जी भारतमित्र में लिखते हैं, ''पर हम कहते हैं कि यह सफेद झूठ है कि अंग्रेजों ने भारत को तलवार से जीता है- वरचं भारतवासियों की तलवार ने स्वयं यह देश फ़तह करके अंग्रेजों के सुपर्द कर दिया था। 'टाइम्स' क्लाइव

---

1 (सं.) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.689

2 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.443

के समय की बात याद करें, उसी ने भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव डाली है। उसकी सेना चन्दा साहब और फ्रांसीसियों से घिर गई थी और रसद निबड़ गई थी तो मालूम है, उसके हिंदुस्तानी सिपाहियों ने यह कहा था, सुनिये साहब! गोरों को भात खाने दीजिये, हम लोग माँड पीकर गुजारा कर लेंगे। टाइम्स को जानना चाहिए कि इस देश के वीरों ने तुम्हारे गोरों को चावल देकर और आप उसका माँड पीकर तलवार बजाई है और यह देश तुम्हारे लिए जीत दिया है। इसी प्रकार हिंदुस्तानियों की मदद से ही अंग्रेजों ने इस देश में अपना अधिकार फैलाया है।''[1] भारतमित्र में बालमुकुंद गुप्त ने 22 महापुरुषों के जीवन वृत्त लिखकर छापे थे। इनमें से कुछ हिंदी के बड़े लेखक एवं साहित्यकार थे। दो प्रसिद्ध साधु- हरिदास एवं रामस्वरुप, एक फारसी के विद्वान- मुंशी सज्जाद हुसैन आजाद, चार बादशाह- अकबर, टोडरमल, शाइस्ता खाँ, शेखसादी, दो यूरोपीय विद्वान- मैक्समूलर, हरबर्ट स्पेन्सर थे। ये चरित चर्चा इन विद्वानों द्वारा समाज को इनके द्वारा किए गए कार्यों को श्रृद्धांजलि है। इसके अतिरिक्त इनके द्वारा लिखित 'उर्दू-हिंदी पत्रों का इतिहास' भी धारावाहिक रुप में 'भारतमित्र' में छपा, जिससे उस युग के समाचार पत्रों को जानने का अवसर मिलता है। यह सामाजिक और राजनीतिक क्रांति का आगाज था जो भारतमित्र के माध्यम से बालमुकुंद गुप्त कर रहे थे। श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने 'भारतमित्र' के बारे में लिखा है, ''श्री बालमुकुन्द गुप्त के संपादन में साप्ताहिक 'भारतमित्र' ने उग्र राष्ट्रीयता का पोषण किया और हिन्दी पत्रकारिता के अन्य प्रश्नों पर भी चर्चाएँ चलाईं।''[2]

3.3 भाषा चिंतनः अनस्थिरता विवाद

स्वभाषा

'भारतमित्र' सदैव हिंदी का पक्षधर रहा था। इसका मुख्य कारण यह था कि गुप्त जी के संपादन काल में इस पत्र ने हिंदी भाषा की महत्ता, नागरी लिपि की

---

1 (सं.) मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माताः बालमुकुंद गुप्त, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990, पृ.60

2 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.123

पक्षधरता और व्याकरण की शुद्धता के संबंध में एक आंदोलन सा छेड़ दिया था। 'गुप्त जी' साहित्य का संबंध समाज से मानते थे। साहित्य का जो स्वरुप समाज के लिए हितकारी हो उसी को महत्त्व देते थे। इसी कारण से उन्होंने हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने पर जोर दिया। परन्तु हिंदी का सरल और सामाजिक रुप उन्हें स्वीकार्य था। हिंदी को वे न तो संस्कृत की तत्सम शब्दावली से अलंकृत करने के पक्ष में थे और न ही अरबी-फारसी के शब्दों से भरने के पक्ष में थे। लिपि के विषय में भी उनका यही मत था। जो लिपि वैज्ञानिक ढंग से अधिक लोगों को स्वीकार्य हो, जो आम लोगों को सुलभ हो, वही लिपि सर्वमान्य होनी चाहिए। हिंदी भाषा की भूमिका, हिंदी भाषा, ब्रज भाषा और उर्दू जैसे लेख हिंदी भाषा के उद्‌भव और विकास पर लिखे गए थे। इनमें कवि चन्द से लेकर भारतेंदु काल तक की हिंदी की यात्रा की कहानी है। भारतमित्र संपादक 'गुप्त जी' ने हिंदी की जन्म स्थली दिल्ली माना है और ब्रजभाषा से इसकी उत्पत्ति माना है। फारसी और ब्रजभाषा के संयोग से हिंदी की उत्पत्ति मानी है। अमीर खुसरो, कबीर, नानक, जायसी आदि कवियों की भाषाओं में भी उर्दू, फारसी, संस्कृत और ब्रजभाषा के शब्द पाए जाते हैं।

हिंदी भाषा का महत्त्व बताने के लिए 'हिंदी की उन्नति' ओर 'भारत की भाषा' जैसे निबंध 'भारतमित्र' ने पाठकों को दिए। भारतमित्र संपादक 'गुप्त जी' हिंदी भाषा पर एक पुस्तक छापकर पाठकों को उपहार स्वरुप देना चाहते थे, परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु ने उन्हें यह कार्य नहीं करने दिया। उनकी मृत्यु के बाद उनके मित्रों ने यह पुस्तक छपवाई। जिसमें उनके हिंदी भाषा से संबंधित निबंध संकलित थे। हिंदी के बारे में लोगों को प्रोत्साहित करते हुए गुप्त जी कहते हैं, ''केवल गाल बजाने से भाषा की उन्नति नहीं होती है। भाषा की उन्नति के लिए लेखक चाहिए। लेखक बनने के लिए पाठक चाहिए और पाठक होने के लिए मातृभाषा पर अनन्त-अनुराग, अनन्त प्रेम, अनन्त भक्ति चाहिए। जब तक इन वस्तुओं का अभाव रहेगा तब तक मातृ-भाषा की उन्नति-उन्नति चिल्लाना केवल गाल बजाकर भूख बढ़ाना है।.....

यदि हिंदी पर सचमुच अनुराग हुआ हो तो हिंदी की उन्नति के लिए धन संग्रह कीजिये, सुयोग्य पण्डितों से हिंदी की प्रयोजनीय पुस्तकें लिखवाकर धन से खरीद लीजिये। वह पुस्तकें देश में बाँटकर देशवासियों में हिंदी पढ़ने का शौक फैलाइये तभी मातृभाषा की उन्नति होगी, तभी हिंदी अपने उचित स्थान को प्राप्त कर देशवासियों को अपने फल-फूल, पत्र-पत्रलवों से सुशोभित होकर बहार दिखा सकेगी।''[1] हिन्दी नवजागरण के पुरोधाओं ने हिन्दी को सुगम और सरल बनाने के लिए प्रयत्न किए। गुप्त जी से पहले राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द आरंभ में ही हिन्दी-उर्दू-अरबी से मिश्रित आसान भाषा और एक लिपि के लिए मांग उठा चुके थे। वीर भारत तलवार ने लिखा है, ''कठिन अरबी-फारसी शब्दावली का विरोध करते हुए भी राजा शिवप्रसाद ने हिन्दी-उर्दू को दो अलग भाषाएँ न मानकर राज-काज की भाषा और शिक्षा के माध्यम के लिए सिर्फ उनकी लिपि एक करने की माँग उठाई।''[2]

गुप्त जी ने सदैव इस बात का समर्थन किया कि कोई एक भाषा ऐसी हो जिसमें देश के सभी प्रांतों के लोग आपस में बात कर सके। क्षेत्रीय विषमताओं के चलते लोग हिंदी से दूर भागते हैं। परन्तु हिंदी को यदि लोग अपना लें तो ये विषमताएँ दूर हो सकती हैं। 'गुप्त जी' कहते हैं- ''सचमुच भारतवर्ष के लिये एक देश व्यापी भाषा की बहुत भारी जरुरत है। भारतवासियों के पास इस समय ऐसी कोई भाषा नहीं है जिसमें भारत के सब प्रांतों के लोग बात कर सके। इसी से इन्डियन नेशनल कांग्रेस में अंग्रेजी से काम लिया जाता है। अंग्रेज इस समय अंग्रेजी को संसार व्यापी भाषा बना रहे हैं और सचमुच वह सारी पृथ्वी की भाषा बनती जाती है। वह बने, उसकी बराबरी करने का हमारा मुकद्दर नहीं है, पर तो भी यदि हिंदी को भारतवासी सारे भारत की भाषा बना सके तो अंग्रेजी के बाद दूसरा दर्जा पृथ्वी पर इसी भाषा का होगा।''[3]

---

1 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.31
2 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.115-116
3 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.34

अंग्रेजी के खतरे को गुप्त जी ने कितना पहले ही भाँप लिया था और चेतावनी भी दी थी। इसलिए हिंदी भाषा को सम्पूर्ण भारत की भाषा बनाने का समर्थन करते हैं। हिंदी में वह सभी गुण है जिससे वह सारे भारत की संपर्क भाषा बने।

स्वलिपिः-

सन् 1900 ई0 में जब अंग्रेजी सरकार ने 'नागरी' को भी कचहरियों की भाषा बनाने का फैसला लिया तो उर्दू वालों को लगा जैसे उनके साथ अन्याय हो गया। उर्दू के समर्थन में संस्थाएँ और प्रचारक सभाएँ बनी। हिंदी और उर्दू वालों के बीच मतभेद होने आरंभ हो गए। इसी विवाद को शांत करने के लिए 'भारतमित्र' ने जी-जान लगा दी। कुछ समाचार पत्र उर्दू का समर्थन कर रहे थे और कुछ हिंदी का। परन्तु 'भारतमित्र' ने दोनों के बीच मध्यस्थता स्थापित करने का प्रयास किया। उदाहरण और वैज्ञानिक तर्क देकर यह विवाद सुलझाने का प्रयास किया। नागरी अक्षर, मुसलमानी नाराजी, उलटे अक्षर, उलटी दलील, गरारेदार पण्डित, उर्दू को उत्तर (कविता) जैसी रचनाएँ लिखकर हिंदी का समर्थन वैज्ञानिक रीति से किया। हिंदू-उर्दू विवाद पर भारतमित्र संपादक गुप्त जी की टिप्पणी थी- ''यदि इस विषय को लेकर केवल हिंदू-मुसलमान के मेल में कुछ झमेल पड़े तो अच्छी बात नहीं। नागरी प्रचारिणी सभा वालों को चाहिए कि जब तक यह नया बखेडा शांत न हो तब तक खूब शांति से काम करें। झूठ-मूठ के आनन्द में उन्मत होने की कोई जरुरत नहीं है। मुसलमानों को यह जानना चाहिए कि जिस भाषा को वह उर्दू कह रहे हैं वह हिंदी से अलग नहीं है। उर्दू आदि के कवियों ने उस भाषा को हिन्दवी कहकर पुकारा है।''[1]

विरोधी वर्गों ने देवनागरी पर व्यापारी वर्ग की आवश्यकताओं के पूर्ण नहीं करने का आरोप लगाया था। इसी आरोप का खंडन करते हुए 'गुप्त जी' ने भारतमित्र में लिखा था कि सिर्फ दिल्ली, कलकत्ता के ही नहीं लखनऊ के मुसलमान भी अपना

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.5 (गुप्त जी के निबंध)

बहीखाता नागरी अक्षरों में लिखते हैं। देवनागरी को धर्म के साथ जोड़ने वालों को तर्क दिया था, ''देवनागरी किसी भाषा का नाम नहीं है, वह तो केवल अक्षरों का नाम है। कोई पण्डित ऐसा नहीं है जो मुसलमानों को देवनागरी अक्षर सिखाने से इनकार करे। पश्चिमोत्तर प्रदेश में ही हजारों मुसलमान शुद्ध देवनागरी लिख-पढ़ सकते हैं। केवल पढ़ते ही नहीं, स्कूल मास्टर बनकर कितने ही हिंदुओं को पढ़ाते हैं।''[1]

उर्दू समर्थक और हिंदी विरोधियों को भारतमित्र संपादक ने इस प्रकार से तर्क दिए थे कि जिनसे हिंदी की वैज्ञानिकता सिद्ध की जा सके। लखनऊ में देवनागरी भाषा के विरोध में जलसा हुआ था तो वहाँ के नवाब ने हिंदी और उर्दू को एक समान बताया था। भारतमित्र का उत्तर था- ''नवाब साहब कोई ऐसी तरकीब बतायें कि जिससे 'जोती प्रसाद' लिखने में उर्दू में 'जूती प्रसाद' न पढ़ा जाए, रूम लिखने में इटली की राजधानी 'रोम' न पढ़ा जाए, 'चीन' लिखने में 'चैन' न पढ़ा जाए।''[2]

गुप्त जी जन सामान्य द्वारा बोले जाने वाली सरल, सहज और गतिशील भाषा के समर्थक थे, केवल पढ़े-लिखे लोगों द्वारा बोले जाने वाली साहिबाना भाषा के पक्ष में नहीं थे। इसलिए वे तर्क देते हैं, ''हिंदी वालों को इस बात की चेष्टा करनी होगी कि उर्दू वाले फारसी-अरबी को छोड़कर थोड़ा हिंदी की ओर झुके और हिंदी वाले कुछ उर्दू की ओर बढ़ें।''[3] राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने भी ऐसी भाषा की हिमायत की थी, जिसमें हिन्दी और उर्दू की आसान शब्दावली मिश्रित हो, जिसे जनसामान्य अपनी बोली समझ सके। ''शिवप्रसाद ने उर्दू भाषा का विरोध नहीं किया। शिक्षा विभाग में बहुत व्यवहारिक कारणों से उन्होंने भाषा का रूप ऐसी बोलचाल का रखा, जिसमें हिन्दी और उर्दू दोनों मिलकर एक हो जाती थीं। लेकिन वे जानते थे कि नागरी लिपि

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.5-6 (गुप्त जी के निबंध)

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.299

3 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.300

को लागू किये बिना अदालतों में चलने वाली राजभाषा उर्दू के अरबी-फारसी शब्दांडबर से छुटकारा नहीं मिल सकता।''[1]

एक लिपि का प्रश्न भी भारतमित्र ने उठाया था। भाषा के साथ जुड़ा हुआ प्रश्न लिपि का है। अंग्रेजों ने हिंदुओं और मुसलमानों के बीच मतभेद बढ़ाने के लिए हिंदी को हिंदुओं की तथा उर्दू को मुसलमानों की भाषा बताया, परन्तु भारतमित्र ने सदैव इस नीति का विरोध किया। हिंदी के पक्ष में अथवा उर्दू के विरोध की उसकी कोई मनोग्रंथी नहीं थी। परन्तु बहुसंख्यक जनता की सुविधा के लिए देवनागरी लिपि का समर्थन कर रहा था। देवनागरी लिपि की समर्थन में भारतमित्र ने कई लेख प्रकाशित किए।

भारतमित्र का विचार था कि भारत की सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जाएं। यह विचार उस मत का समर्थन था जिसमें भारतीय भाषाओं के सभी पत्रों को एक ही लिपि में लिखा जाए। कलकत्ता हाईकोर्ट के पूर्व जज सर गुरुदास बनर्जी तथा कलकत्ता हाईकोर्ट के तत्कालिक न्यायधीश शारदाचरण मित्र ने इसी मत का समर्थन किया था। इसी संदर्भ में शारदाचरण मित्र का लेख 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में प्रकाशित हुआ था। अपने विचार को मूर्त रुप देने के लिए जज साहब ने कलकत्ता में 'एक लिपि विस्तार' परिषद् की स्थापना की और 'देवनागर' नाम का एक मासिक पत्र निकाला था। इस पत्र में एक पृष्ठ पर मूल भाषा पर सामग्री छपती थी और दूसरे पृष्ठ पर वही सामग्री देवनागरी लिपि पर छपती थी। 'गुप्त जी' ने इस कार्य को पूर्ण समर्थन दिया। कानपुर के मासिक पत्र 'ज़माना' में 'हिन्दुस्तान में एक रसमुलखत' नामक एक लेख लिखा। जिसमें एक लिपि विस्तार परिषद् और देवनागर पत्र की लिपि के संदर्भ में सराहना की। इसी तरह का एक पत्र 'प्रवासी' नाम का बंग भाषा से था परन्तु उसमें हिंदी, बंगला, मराठी और गुजराती आदि भाषाएँ होती थी। प्रवासी को लेकर ही 'भारत की भाषा' नामक लेख 'भारतमित्र' में सन् 1904 ई0 में छपा था।

---

1 वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.62

इसी तरह के लेख देवनागरी अक्षर, उलटे अक्षर, एक लिपि की जरुरत, नागरी अक्षर आदि लेख लिखे। देवनागरी लिपि को सबसे प्राचीन लिपि 'भारतमित्र' ने तर्कों के आधार पर सिद्ध किया। नागरी लिपि की महत्ता बताते हुए भारतमित्र संपादक गुप्त जी कहते हैं, ''देवनागरी अक्षर भारतवर्ष में सबसे उत्तम अक्षर है। भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत इन्हीं अक्षरों में लिखी जाती है। सीखने में भी यही सबसे जल्द आते हैं।''[1]

परन्तु उर्दू समर्थकों का तर्क था कि नागरी अक्षरों में लिखने से उर्दू भाषा की शुद्धता समाप्त हो जाएगी। इसी तर्क का उत्तर देते हुए भारतमित्र सम्पादक 'गुप्त जी' का कहना था- ''इब्रानी भाषा से यह अक्षर अरबी में आये। परन्तु 'क्या आये' न उनमें 'य' है न 'त' न 'च' है, न 'ड' है न 'ड़' न 'ग' है। फारसी वालों ने उनकी बनावट को जरा सीधा करके उसमें 'चे' 'पे' 'गाफ' घुसेडा है। परंतु बाकी की कसर रह गयी। पीछे आयी उर्दू। उसके लिए तो देवनागरी के सभी वर्णों की आवश्यकता थी, इसलिए उर्दू वालों ने एक 'हे' गढ़ी 'डाल' बनाई और 'डे' निकाली। परन्तु उससे भी क्या हो सकता था 'घ' रह गया। छ, झ, ठ, ढ़ थ इत्यादि। कितने ही व्यंजन रह गए। 'ण' की आवाज उर्दू में नहीं है। 'प्रचारिणी' लिखने में वह 'परचारिनी' लिखेंगे।''[2]

अनस्थिरता विवादः-

उस युग के पत्रों का महत्व हिंदी भाषा की स्थापना में ही नहीं, बल्कि हिंदी भाषा को शुद्ध करने में भी रहा है। उस युग के चलने वाले विवादों से हमें इसकी जानकारी मिलती है। अनस्थिरता विवाद, शेष विवाद आदि ऐसी आलोचनाएँ थीं जिनके उदाहरण आज भी दिये जाते हैं। 'सरस्वती' के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

---

1 (संपादक) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.37

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.7 (गुप्त जी के निबंध)

को ऐसा प्रतीत हुआ कि अब तक हिंदी लेखन में अनेक अभाव रहे हैं। उन्होंने भारतेंदु और उनके साथियों की व्याकरण संबंधी भूलें 'भाषा और व्याकरण' नामक एक लम्बा लेख लिखकर गिनवाई। द्विवेदी जी को लगा कि हिंदी के मानक रुप का अभी तक अभाव है। गद्य के मानक रुप को स्थिर करने के लिए सर्वमान्य व्याकरण की आवश्यकता है। गुप्त जी जो भारतेंदु को अपना गुरु मानते थे उन्होंने प्रमाण द्वारा यह सिद्ध किया कि ये भूलें प्रेस की हो सकती हैं। आचार्य द्विवेदी जी ने जो संशोधन किया था गुप्त जी उससे सहमत नहीं थे। आत्माराम के नाम से दस लेख लिखकर हिंदी के शीर्ष आचार्य की आलोचना कर डाली। द्विवेदी जी के समर्थकों ने 'गुप्त जी' के वंश तक पर आक्रमण कर डाला। गुप्त जी की आलोचनाओं पर 'हिन्दी बंगवासी' में गोविन्द नारायण मिश्र ने 'आत्माराम की टें-टें' शीर्षक नाम लेख लिखा। इस पर जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने द्विवेदी जी पर टिप्पणी दी। ''अधिकांश लेखक और कवि लिखने के समय व्याकरण को ताक पर रख देते हैं और डंके की चोट पर उसका बहिष्कार करते हैं। कुछ लोग तो यहाँ तक कहने का दुःसाहस कर बैठते हैं कि हिन्दी में अभी व्याकरण नहीं है। 'यहाँ उनका आशय द्विवेदी जी के लेख से था।' पर यह उनकी सरासर भूल है, हिन्दी में व्याकरण था और है, नहीं है तो उसके मानने वाले।

जब श्री द्विवेदी जी ने 'अनस्थिरता' के प्रयोग को सही ठहराया तो उन्होंने 'भारतमित्र' में 'साहित्य में हाईकोर्ट' शीर्षक एक लेख लिखा।..... .... अब द्विवेदी जी अनस्थिरता की हिमायत किस प्रकार करते हैं, वह सुनिए- अस्थिरता की जगह अनस्थिरता शब्द अनुचित नहीं। जिसमें अतिशय अस्थिरता है, उसके लिए अनस्थिरता का ही प्रयोग हम अच्छा समझते हैं- किस व्याकरण की रू से? आप आगे चलकर और भी कहते हैं- संस्कृत व्याकरण से यदि अशुद्ध है तो हुआ करे, किन्तु हम हिन्दी लिख रहे हैं। क्यों महाराज जी! आप जैसे संस्कृत के विद्वान के योग्य यह उत्तर हुआ? बंगवासी के 'टें-टें' वाले यह बुद्धिमता भले ही दिखलावें, पर आपके मुँह से यह बात नहीं निकलनी चाहिए। अच्छा, यह बताइए कि

'रिषि' 'रिनि' आदि लिखने के कारण पं. प्रताप नारायण की संस्कृतज्ञता पर तो इतनी दीर्घ शंका हो गई, पर अपनी अनस्थिरता पर आपको लघुशंका नहीं हुई? धन्य न्याय! अनरिनि की तरह अनस्थिरता शुद्ध है तो अनमंगल, अनशुभ, अनकाल, अनपूर्ण, अनपरिपक्व शब्द मजे में व्यवहृत होने चाहिए। खैर, चाहे जो हो 'अनस्थिरता' ने आपकी विद्वता, उदारता आदि की थाह लगा दी। अब चाहे आप हाईकोर्ट की कौन कहे, प्रीवि कौंसिल भी चले जाएं तो बुंद से भेंट नहीं होगी।''[1] अंत में द्विवेदी जी को 'कल्लू अलहत' नाम से 'सरगो नरक ठिकाना नहीं' लिखकर विवाद शांत करना पड़ा।

द्विवेदी जी भारतेंदु कालीन लेखकों की रचनाओं में दोष दिखाकर 'भाषा की अनस्थिरता' का नाम दिया तो 'गुप्त जी' ने अनस्थिरता को अशुद्ध बताकर द्विवेदी जी की छोटी-छोटी कमियाँ वाक्यों में दिखाई। आत्माराम के नाम से दस लेखों में आचार्य द्विवेदी के भाषा और व्याकरण लेख की आलोचना की। यह आलोचना कम और भाषा का शुद्धिकरण अधिक था। जिन गलतियों को द्विवेदी जी भूल से या आदतन लिख जाते थे, उनकी तरफ हिंदी समाज का ध्यान आकर्षित किया। ऐसा नहीं है कि गुप्त जी अपने अहम और दंभ का मिथ्या प्रदर्शन करने के लिए द्विवेदी जी से उलझ पड़े थे। द्विवेदी जी के 'भाषा और व्याकरण' नामक निबंध में गुप्त जी को जहां गलतियाँ दिखाई पड़ी वहीं उन्होनें टोक दिया। व्यंग्य कला में तो गुप्त जी निपुण थे। अनस्थिरता शब्द से चलकर द्विवेदी जी बहुत सी त्रुटियों को वे पकड़ते चले गये और उनकी तरफ हिंदी समाज का ध्यान आकर्षित किया। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''इस विवाद के लिए अंशतः द्विवेदी जी उत्तरदायी थे।..... यहाँ व्यंग्य के लिए इतनी बढ़िया सामग्री थी कि बालमुकुन्द गुप्त उसका उपयोग न करते तो यह भी अक्षम्य अपराध होता। द्विवेदी जी ने जिन मुख्य बातों पर ध्यान केन्द्रित करना उचित समझा

---

1 सम्मेलन पत्रिकाः जन्मशती विशेषांक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, स्वं पंडित जगन्नाथ त्रिवेदी की व्याकरणिक मान्यताएँ, पृ.30-31 उद्धृत जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ.113-114

था, उनके साथ ऐसी साधारण बातें मिला दी थीं, कि लेख का मूल उद्देश्य का आँखों से ओझल हो जाना अनिवार्य था। वह यदि समकालीन लेखकों की रचनाओं से ऐसे उदाहरण देते तो लोग बुरा न मानते। पर उन्होंने उदाहरण चुने, सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से, फिर शिवप्रसाद से, राधाचरण गोस्वामी और काशीनाथ खत्री से। लोगों को ऐसा लगा कि वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन साहित्यकारों पर आक्रमण कर रहे हैं। इसलिए जब बालमुकुंद गुप्त ने द्विवेदी जी पर आक्रमण किया तब उनके साथ हिंदी के बहुत से लेखक हो गये और बालमुकुन्द के लेखों में केवल उनका अपना रोष नहीं वरन् साधारण हिंदी पाठकों का भी रोष व्यक्त हुआ।''[1] गुप्त जी ने द्विवेदी जी के बारे में कहा है- ''आपका पहला ही वाक्य है- मन में जो भाव उदित होते हैं, वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं।' क्यों जनाब, भाषा की सहायता से मन के भाव दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं या भाषा से? आप टाँगों की सहायता से चलते हैं या टाँगों से? आँखों की सहायता से देखते हैं या आँखों से? कानों की सहायता से सुनते हैं या खास कानों ही से?..... जो अपनी बोली जानते हैं वह इस वाक्य को इस तरह लिखते- 'मन में जो भाव उठते हैं, वह भाषा से दूसरों को सुना दिये जाते हैं' अथवा मन की बात बोलकर दूसरों को जता दी जाती हैं।''[2]

आचार्य द्विवेदी का मत था कि हिंदी में एक सर्वमान्य व्याकरण अभी तक नहीं बना है। इसलिए पुरानी सौ-पचास साल पुरानी भाषा आज की भाषा से नहीं मिलती। इसी कारण वे मानते थे कि इससे भाषा को अनस्थिरता प्राप्त हो गई। परंतु गुप्त जी का मानना था कि पुरानी से पुरानी हिंदी आज भी समझी जाती है। सूरदास, रैदास, कबीर आदि संतों की हिंदी आज भी समझी जाती और बोली जाती है। गुप्त जी ने

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.265

2 (संपादक) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.75

द्विवेदी जी द्वारा अनावश्यक रुप से 'को' के प्रयोग पर विरोध जताया। गुप्त जी कहते हैं- ''द्विवेदी जी को 'को' की बड़ी बीमारी है, ऊपर के वाक्य में है- 'बहुत से वाक्यों को न समझ सके' सीधी सी बात है- 'बहुत से वाक्य न समझ सके'। 'को' इसमें फालतू है। जिनको हिंदी जानने वालों की सोहबत नहीं, वह इसी तरह 'को' की भरमार करते हैं। अर्द्ध को बनना उनकी आदत हो जाती है।''[1]

गुप्त जी द्वारा 'को' के अनावश्यक प्रयोग पर आपत्ति किये जाने के बाद द्विवेदी जी ने अपनी भाषा में सुधार किया और गुप्त जी को भी नसीहत दी, ''हमारे जुबादाँ समलोचक फ़रमाते हैं कि पंजाब, युक्त प्रदेश, दिल्ली, आगरा, काशी, पटना के लेखक 'करें', 'हमें' बोलते और लिखते हैं 'करैं' 'सकैं' नहीं। बेहतर है, हम अपनी देहाती चाल को छोड़ने की कोशिश करेंगे, पर आप भी थोड़ी सी उदारता दिखाइए। उदारता यह कि गुप्त जी सहानुभूती, अप्रम्पार, स्मर्ण आदि लिखना छोड़े।''[2]

द्विवेदी जी का मत था कि व्याकरण की दृष्टि से भाषा बोली और लिखी जानी चाहिए परंतु गुप्त जी का मत था कि आम-जन की भाषा व्याकरण के अनुसार नहीं बोली जाती। इसी पर व्यंग्य करते हुए भारतमित्र संपादक ने कहा था- ''द्विवेदी जी एक काम अच्छा करते हैं कि सबको व्याकरण की दृष्टि से देखते हैं। वह चाहते हैं कि लोगों में कोई बात व्याकरणा विरुद्ध न हों। चाहे छींके, चाहे खांसे, चाहे खायें, चाहे पियें, रोये या हँसे, व्याकरण का सदा ध्यान रखें।''[3] द्विवेदी जी के अनुसार भाषा व्याकरण सम्मत होनी चाहिए जिससे उसकी एकरूपता निर्धारित की जा सके, परन्तु गुप्त जी का मानना था कि भाषा में देशी भाषाओं के शब्द अवश्य हों जिससे वह बोलचाल की भाषा लगे। वे मुहावरेदार भाषा को महत्व देते थे। डॉ. रमेश कुमार का

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.32 (गुप्त जी के निबंध)

2 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.266

3 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.42

कहना है, ''व्यक्तिगत आलोचना-प्रत्यालोचना के बीच भाषा संबंधी जो कुछ तथ्य उभरकर आए उन पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि गुप्त जी और द्विवेदी जी दोनों दो परम्पराओं के प्रतिनिधि साहित्यकार हैं। गुप्त जी उर्दू, फारसी और अरबी की परम्परा में रचे-बसे साहित्यकार हैं जबकि द्विवेदी जी संस्कृत की परम्परा के अनुवर्ती आचार्य है। अतः भाषा संबंधी दोनों की मान्यताओं में भी पर्याप्त अन्तर है। फिर भी कई मुद्दों पर दोनों के मत में पर्याप्त समानता भी है। द्विवेदी जी और गुप्त जी में यही विरोध और एकता के स्वर हैं।''[1] द्विवेदी जी ने राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के पुस्तक में त्रुटियाँ निकाली तो गुप्त जी ने 'राजा शिवप्रसाद की इसलाह' नामक व्यंग्यात्मक लेख लिखा। राधाचरण गोस्वामी के मासिक पत्र 'भारतेंदु' में द्विवेदी जी 'वह' का बहुवचन 'वे' रखने का सुझाव दिया। परंतु गुप्त जी का मत था कि 'वह' शब्द को एकवचन और बहुवचन दोनों में रखा जाये। द्विवेदी जी पर व्यंग्य करते हुए गुप्त जी कहते हैं- ''विपद तो यह है कि द्विवेदी जी न भाषा जानते हैं, न व्याकरण और टाँग अड़ाते हैं दोनों में 'जब आपको' किसी देश की बोली की ही खबर नहीं है तो उसके व्याकरण के सुधार के लिये क्यों दौडते हैं? 'वह' और 'वे' की बहस से व्याकरण भरे पड़े हैं।''[2]

इसी प्रकार और छोटी-बड़ी गलतियाँ जो आचार्य द्विवेदी जी ने की थी उस पर ध्यान आकर्षित करते हुए गुप्त जी ने कहा- ''मुहाविरा, गलत लिखा गया है, इसका उच्चारण पूछकर द्विवेदी जी इसे सही लिखे तो अच्छा। 'मुहाविरे' की परिभाषा की जगह 'मुहाविरा की परिभाषा' चाहिये। यह एक मोटी भूल है, 'समझ ली जायेगी' के मुकाबिले में रह 'जाय' ठीक नहीं। या तो पहले ही 'गी' न चाहिये, नहीं तो पीछे भी एक 'गी' जोड़ने की जरुरत है।''[3] इस विवाद का परिणाम हितकारी हुआ। गुप्त जी के

---

1 डॉ. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012, पृ.199

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.48-49

3 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.51 (गुप्त जी के निबंध)

साथ चले इस ऐतिहासिक विवाद के पश्चात् द्विवेदी जी ने अपनी भाषा में सुधार किया और साथ-साथ हिंदी में ऐसे शब्द प्रयोग करने को कहा जिन्हें अधिक से अधिक प्रान्तों के आदमी समझ सकें। डॉ. रामविलास शर्मा ने इस विवाद के महत्त्व का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, ''इस बार विवाद से अनेक हिंदी लेखक अपने प्रयोगों के प्रति अधिक सतर्क हुए। स्वयं द्विवेदी जी अपने गद्य लेखन के प्रति और अधिक सचेत हुए। निराला के साहित्यिक जीवन में जो महत्त्व 'भावों की भिडन्त' लेख का था, उससे मिलता-जुलता महत्त्व द्विवेदी जी के जीवन में अनस्थिरता वाले विवादों का हुआ। उनके संपादन काल को अभी दो ही साल बीते थे। यह विवाद उनके सम्पादकीय जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ, यह अच्छा हुआ। 1905 के बाद सरस्वती की भाषा वैसी ही नहीं रही जैसी वह 1905 से पहले थी।''[1]

द्विवेदी जी के वाक्य लम्बे-लम्बे और संस्कृत निष्ठ होते थे। वे वाक्यों में अर्थात् लगाते थे परंतु गुप्त जी के मत में भाषा सरल, सहज, मुहावरेदार और प्रवाहमान होनी चाहिए जो आम लोगों को समझ में आ सके। इसी बात को गुप्त जी ने इस प्रकार कहा है- ''भाषा का एक दोष जटिल लिखना भी है। द्विवेदी जी मानों इसके आचार्य हैं। दास आत्माराम को यही बात समझाते-समझाते कई सप्ताह लगा गये। जिस वाक्य में अर्थात् की जरुरत पड़ती है उसको सरल, स्वच्छ भाषा लिखने वाले कभी पसंद नहीं करते। पर द्विवेदी जी का काम बिना अर्थात् के चलता ही नहीं है।''[2]

'गुप्त जी' ने अनस्थिरता संबंधी लेख 'द्विवेदी जी' की आलोचना में लिखे। उनका उद्देश्य सिर्फ व्याकरण और भाषा की शुद्धता से था न कि किसी गर्व या अहं का प्रदर्शन करना। गुप्त जी ने कहा- ''शुद्ध मन और नेक नीयती से जो काम किया

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ.266

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.60-61

जाता है, आत्माराम की समझ में उसके लिए किसी माफी-नामे की जरुरत नहीं है। सच्चे को कसम खाने की जरुरत नहीं है। यदि द्विवेदी जी ने हिंदी लेखकों के दोष नेकनीयती से दिखाए हैं तो आदि और अंत में माफी किस कसूर के लिए माँगी? हो सके तो द्विवेदी जी यह बात आत्माराम को समझा दें। आत्माराम ने जो कुछ लिखा है, बडी नेकनीयती और साफदिली से लिखा है। हिंदी के पुराने और नये सुलेखकों और सेवकों की, उनके दर्जे के अनुसार जैसी कुछ इज्जत उसके जी में है उसी हिसाब से एक रत्ती भी कम इज्जत वह द्विवेदी जी की नहीं करता। उसने जो कुछ लिखा है द्विवेदी जी के लेख पर लिखा है, उनकी लेख प्रणाली पर लिखा हे और हिंदी की समझ पर लिखा है, उनके ऊपर कुछ नहीं लिखा।''[1] गुप्त जी ने द्विवेदी जी पर जो भी टिप्पणियाँ दीं वह उनकी लेख प्रणाली पर थी। व्यक्तिगत स्वार्थ के चलते या अपने अहम का प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने द्विवेदी जी पर मिथ्या आरोप नहीं लगाए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन लेखकों को गुप्त जी अपना गुरु मानते थे। इसलिए जब द्विवेदी जी ने उनकी लेख प्रणाली पर आरोप लगाए तो गुप्त जी ने इनका जवाब देने के लिए इस विवाद का आरम्भ किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने गुप्त जी के इस अनस्थिरता संबंधी विवाद पर टिप्पणी देते हुए कहा है, ''बालमुकुन्द गुप्त ने हरिश्चन्द्र के तेज, तीखे और बेधड़क लिखने की तारीफ की थी ये गुण उनमें स्वयं जरा भी कम न थे, कुछ ज्यादा भले ही हों। उन्होनें भारतेन्दु की रक्षा के लिए यों व्यंग्यशास्त्र उठाया है कि मानो किसी ने पवित्र देवमन्दिर को भ्रष्ट कर दिया हो या उनके गुरु को ही गाली दी हो। भारतेन्दु की सम्मान रक्षा बालमुकुन्द जैसे लेखक अपना परम कर्त्तव्य समझते थे।''[2]

---

1 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.104

2 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.58

इस विवाद के कई साल पश्चात् आचार्य किशोरीदास वाजपेयी जब महावीर प्रसाद द्विवेदी जी से मिलने गए तो द्विवेदी जी ने अपने मन के उद्‌गार वाजपेयी जी से कहे। यह बात सन् 1931 या 1932 की है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने अपने संस्मरण 'समालोचक प्रतिभा एवं कर्त्तव्यनिष्ठा' में द्विवेदी जी के विचारों के बारे में लिखा है, ''भैया, गलती से वह 'अनस्थिरता' शब्द निकल गया था। मैं उस समय भी उसे गलत समझता था और आज भी गलत समझ रहा हूँ। गलत न सही, प्रवाह प्राप्त तो वह है ही नहीं। प्रवाह ही भाषा में बड़ी चीज है। मैं तुरन्त स्वीकार कर लेता, यदि उस तरह कोई पूछता-कहता। बात कुछ दूसरे ढंग से कही गयी। यह भी नहीं कहा गया कि 'अनस्थिरता' सही है या गलतय बल्कि कहा यह गया कि 'द्विवेदी जी अनस्थिरता को व्याकरण से सिद्ध करें'। सो इस ललकार का जवाब मैंने दिया। परन्तु व्याकरण से सिद्ध हो जाने पर भी कोई शब्द भाषा में चल नहीं जाता, यदि प्रवाह प्राप्त न हो।..... और भैया, मुझे भी अपनी शक्ति के अनुसार हिंदी का कुछ काम करना था। वैसा काम करने के लिए साख की भी जरुरत है। प्रभाव उखड़ गया, तो सब गया। जिस ढंग से और जिस रूप में वह विवाद उठाया गया था, उसे मैंने उचित न समझा। उस समय मैं दब जाता, तो लोग खिल्ली उड़ाते और मैं उस रूप में कुछ न कर पाता।''[1]

द्विवेदी जी के इन विचारों से स्पष्ट है कि वे जान-बूझकर इस विवाद में पड़े थे। अपनी साख को बनाये रखने के लिए उन्होंने यह विवाद आगे बढ़ाया था। वहीं गुप्त जी अपनी बात पर आरंभ से अन्त तक कायम रहे। सही को सही और गलत को गलत स्पष्ट रुप से कहा बिना अपने मान-सम्मान की परवाह किये बिना।

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1950, पृ.410-411

चतुर्थ अध्यायः
हिंदी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान

4.1 स्वाधीनता की चेतना

4.2 अंग्रेजी राज की आलोचना

4.3 हिंदी की जातीय चेतना के निर्माण में योगदान

4.4 हिंदी गद्य का निर्माण

4.5 हिंदी का आलोचनात्मक विवेक

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान

4.1 स्वाधीनता की चेतना-

उन्नसवीं सदी के अन्तिम चरण में ही भारतीय राष्ट्रीयता का निर्माण हो रहा था। देश के कोने-कोने से राष्ट्रीय जागरण की लहरें उठ रही थीं। अंग्रेजों का विरोध जितना ज्यादा बढ़ता जा रहा था। दादा भाई नॉरौजी, लाला लाजपत राय, सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी, बाल गंगाधर तिलक जैसे सेनानी राष्ट्रीय जागरण की ज्योति जलाए हुए थे। रामकृष्ण परमहंस विवेकानंद, दयानन्द, देवेन्द्रनाथ टैगोर जैसे मनीषी अपनी अमृतवाणियों से जनजागरण का गान कर रहे थे। पराधीनता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए समस्त देश छटपटा रहा था। कलकत्ता, बम्बई और लाहौर उस युग के राष्ट्रीय संचेतना के केन्द्र बन गए थे। साहित्य युग का दर्पण होता है। उन्नीसवीं सदी में जो महत्व कलकत्ता का था वह अन्य किसी नगर का नहीं था। इसी कलकत्ता से राष्ट्रीयता के अग्रदूत गुप्तजी ने हिन्दी जगत में जिस सक्रिय और सप्रमाण राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति की वह अन्य कहीं मिलनी दुर्लभ है। भारतेंदु की इस विरासत को आगे बढ़ाने में गुप्तजी ने विशिष्ट भूमिका निभाई। श्री मुनीश्वर झा के शब्दों मेंः- ''यदि भारतेन्दु हिन्दी गगन के पूर्णेन्दु थे तो बालमुकुंद भारत और भारती के ''मित्र। दोनों आलोक पुरुष थे। दोनों एक ही परम्परा में आये थे, किन्तु दोनों की भूमिका भिन्न भी दोनों के रूप भिन्न थे। दोनों ही अंग्रेजी शासन की दुर्नीति के विरोधी थे। किन्तु एक में क्षोभ था, दूसरे में आक्रोश, एक में कवि की भावुकता थी, दूसरे में सैनिक की कर्मठता। दोनों का अपना-अपना महत्व है। दोनों हमारे राष्ट्रीय नवजागरण के अमर गायक थे और राष्ट्र निर्माण में दोनों ने अपनी रीति से अर्ध्य चढ़ाया था।''[1]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 18

गुप्त जी का सम्पूर्ण साहित्य यथा निबंध, काव्य, टेसू गीत उनके राष्ट्रीय विचारों का संवहन है। वे राजनीतिक दृष्टि से जागरूक पत्रकार थे। राष्ट्रीय समस्याओं पर बड़े ही निर्भीक ढंग से उन्होंने लेखनी चलाई। 'शिवशंभु के चिट्ठों का अपना राजनीतिक महत्व तो है ही साथ-साथ वे राष्ट्रीय जागृति का भी माध्यम बने। श्री झा के शब्दों में ''बालमुकुंद जी बड़े निर्भीक थे। चापलूसी उन्हें पसंद न थी। महत् उद्देश्य ही उनके लिए जीवन था। देशवासियों में देशभक्ति की भावना उद्दीप्त करना वे चाहते थे। जन कल्याण उनका आदर्श था।''[1] बालमुकुंद गुप्त जिस मशाल को लिए राष्ट्रीय जागरण की रोशनी फैला रहे थे वह मशाल 'भारतमित्र' था। यद्यपि भारतमित्र से पहले उन्होंने उर्दू और अन्य हिंदी पत्रों में भी कार्य किया था, परन्तु उनका ख्याति का आधार स्तंभ भारतमित्र ही बना। इस पत्र के बारें में डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र का कहना है, ''बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की बंगीय हिंदी पत्रकारिता का नेतृत्व 'भारत मित्र' संपादक बाबू बालमुकंद गुप्त के हाथ में था, जिन्हें अपनी राष्ट्रीय निष्ठा और उग्र स्वर के कारण कालाकांकर के राजा रामपाल सिंह के पत्र 'हिन्दोस्थान' की नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। 16 जनवरी 1899 को गुप्त जी ने 'भारतमित्र' का संपादन भार संभाला इसके संचालन का दायित्व भी उन्हीं पर था। अपनी रुचि के अनुसार 'भारतमित्र' को उन्होंने नयी व्यवस्था और नया रुप दिया। उन्होंने पत्र का आकार बड़ा किया और मूल्य कम कर दिया। गुप्तजी चूंकि युग चेतना के प्रति सचेत थे और उनकी राष्ट्रीय निष्ठा बलवती थी, इसलिए स्वाभाविक था कि राष्ट्रीय स्वर की रचना ही पत्र का उद्देश्य हो''[2] 'हिन्दोस्थान' और 'हिन्दी बंगवासी' के संपादन काल में गुप्त जी ने जो कुछ लिखा वह जागरण का आरंभ था, परन्तु भारतमित्र तक आते-आते उसकी ज्योति और तीव्र हो गई थी। ''कलकत्ते का भारतमित्र सम्पूर्ण

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा : विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त, एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 19

2 (सं.) वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिताः विविध आयाम, भाग-1, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006, पृ.106

हिन्दी संसार के आलोक का उत्स बन गया। उस पत्र द्वारा गुप्त जी ने राष्ट्रीय उत्थान में सर्वतोभावेन योग दिया।...

उनके लेखों से राष्ट्रीयता की प्रचण्ड लहर फैल गई जिससे साम्राज्यवाद का हृदय कांप उठा।''[1]

गुप्तजी की स्वतंत्र एवं निर्भीक चेतना के कारण ही 'भारतमित्र' उस समय का बहुत शक्तिशाली पत्र बन गया था। इस पत्र के कारण ही गुप्त जी ने राष्ट्रीय चेतना पैदा की और विदेशी भावना के उमड़ते प्रभाव को रोका। गुप्त जी ने अनेक व्यंग्य प्रधान निबंध लिखे। इन निबंधों में अंग्रेजी शासन के चाटुकारों पर भी व्यंग्य हैं जो राजभक्ति की आड़ में देश की पीठ में छुरा चला रहे थे। श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने लिखा है, ''बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में पूरे देश में जो राष्ट्रीयता उभर रही थी, उसका सबसे पहला राजनीतिक स्वरूप हिंदी पत्रों में हमें 'भारतमित्र' में बड़ी प्रखरता के साथ दिखाई देता है। श्री बालमुकंद गुप्त 'बंगवासी' छोड़कर 'भारतमित्र' के संपादक सन् 1899 में ही हो गए थे। उनके आते ही 'भारतमित्र' का स्वर बदल गया।''[2]

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में कर्जन अपने कुकृत्यों के लिए प्रसिद्ध रहा। गुप्त जी के व्यंग्य बाणों का शिकार भी कर्जन ही हुआ। कर्जन ने नाना प्रकार के राष्ट्रविरोधी कार्य किए जिनमें से एक था बंग-भंग। बंगालियों की राष्ट्रीयता को तोडने के लिए कर्जन ने बंगाल के विभाजन की योजना बनाई। परन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सका। बंग-भंग से सारे भारत में एक नई स्पिरिट (भावना) पैदा हो गई। बंग विच्छेद द्वारा भारत-विभाजन का बीज आरोपित करके ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि कर्जन इंग्लैंड जा चुका था। समस्त भारत ने बंगाल के बॅटवारे का विरोध और बंगाल के एकीकरण का समर्थन किया, किन्तु निरंकुश अंग्रेज शासन ने एक नहीं

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा : विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 22

2 जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिंदी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, 117-118

सुनी। फलतः समस्त बंगाल अंग्रेज विरोधी आंदोलनों का केन्द्र बन गया। स्वदेशी वस्तु प्रयोग और विदेशी वस्तु त्याग की उग्र भावना इस आंदोलन का मूल स्वर था। स्वदेशी आंदोलन के समर्थन में गुप्तजी ने 'ताऊ और हाऊ', स्वदेशी आंदोलन जैसी कविताएं और बंग विच्छेद जैसे निबंध लिखे। डॉ. नत्थन सिंह के शब्दों में - ''गुप्त जी ने बड़ी तन्मयतापूर्वक इस आन्दोलन को वाणी देकर हिन्दी पत्रकारिता को राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ बड़ी गहराई से जोड़ा था। स्वदेशी आन्दोलन शीर्षक में वह बंग विच्छेद पर मत व्यक्त करते हैं - ''आँगन में दीवार बनाई, अलग किये भाई से भाई।''[1]

बंग-भंग के विरोध में सम्पूर्ण बंगाल में असंतोष की लहर फैल रही थी। 'वन्दे मातरम्' चारों तरफ से गूंज रहा था। पुलिस की लाठियां चल रही थीं। स्वतंत्रता सेनानी जेल जा रहे थे। गुप्त जी के अनुसार इन सेनानियों ने जेल जाकर जेल का मान बढ़ाया। जेल को उन्होंने पवित्र तीर्थ माना था। गुप्त जी के अनुसार, ''जो जेल चोर डकैतों, दुष्ट हत्यारों के लिए है जब उसमें सज्जन साधु, शिक्षित, स्वदेश और स्वजाति के शुभचिन्तकों के चरण स्पर्श हो तो समझना चाहिये कि उस स्थान के दिन फिरे। ईश्वर की उस पर दया दृष्टि हुई। साधुओं पर संकट पड़ने से शुभदिन आते हैं। इससे सब भारतवासी शोक सन्ताप भूलकर प्रार्थना के लिये हाथ उठावें कि शीघ्र ही वह दिन आवे कि जब एक भी भारतवासी चोरी, डकैती दुष्टता, व्यभिचार, हत्या, लूट खसोट, जाल आदि दोषों के लिए जेल न जाये। जायें तो देश और जाति की प्रीति और शुभचिन्ता के लिए।''[2] गुप्तजी के अनुसार सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी ने बंगाल की जेल को पवित्र किया, बाल गंगाधर तिलक ने बम्बई की जेल को तीर्थ बनाया तो यशवन्त राय अथावलें ने लाहौर जेल की भूमि को पावन बनाया। इसी जेल में 'कृष्ण'

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुदं गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.246

2 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खण्ड-3), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुड़गांव, 2013, पृ.114

ने जन्म लिया था। जेल की भूमि की धूल मस्तक पर चढ़ाने योग्य है। देशप्रेम में जेल जाना गर्व और स्वाभिमान की बात है।

गुप्तजी ने प्रत्येक राष्ट्रविरोधी तत्व पर प्रहार किया चाहे वह अंग्रेज अधिकारी हो, चाहे धनी सामन्त हो या फिर देशी राजा-महाराजा अथवा मुनाफा खोर व्यापारी हो। 'गुप्तजी' के निबंध, काव्य उनकी रचनाएँ राष्ट्रीय विचारों के पोषक है। डॉ. रामसेवक पाण्डेय ने लिखा है, ''गुप्त जी राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रबुद्ध तथा जागरूक लेखक थे। उन्नीसवीं शती के अन्त तथा बीसवीं शती के प्रथम दशक में जब ब्रिटिश साम्राज्य का आतंक सर्वत्र व्याप्त था, उस समय भी गुप्तजी ने निर्भीकता पूर्वक अपनी संजीव लेखनी से तत्कालीन भारत की राजनीतिक दासता का यथार्थ की भूमिका पर बड़ी मार्मिकता से चित्रण किया।''[1]

देशप्रेम को व्यक्त करने का माध्यम केवल शासक की नीतियों और उनके कुशासन का भंडाफोड के अलावा उनका विरोध करना भी होता है। वर्तमान सामाजिक-आर्थिक दशा को चित्रित करना भी देशहित में उतना ही आवश्यक है। गुप्तजी की रचनाएँ यथा निबंध, लेख और कविताएँ वर्तमान समाज की मनोदशा कहती है। शिवशंभु के चिट्ठे हो या 'चिट्ठे और खत' धार्मिक कविता या फिर सामाजिक कविता किसान उनके केन्द्र में हमेशा रहे हैं। उस युग में किसान गरीबी का प्रतीक था।

'सर सैयद अहमद का बुढ़ापा' नामक लम्बी कविता इसलिए लोकप्रिय हुई क्योंकि इसमें किसानों की भूख-गरीबी, बेबसी का यर्थाथ चित्रण था। गुप्त जी कहते हैं

''हाय जो सब को गेहूं देते वह ज्वार बाजरा खाते हैं,
वह भी जब नहीं मिलता तब वृक्षों की छाल चबाते हैं।
उपजाते हैं अन्न सदा सहकर जाड़ा-गरमी बरसात,

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्याकंन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ..1

कठिन परिश्रम करते हैं बैलों के संग लगे दिन रात।''[1]

गुप्तजी ने कविता को केवल मनोरंजन का साधन ही नहीं माना, उन्होंने कविता को सामान्य भूमि पर प्रतिष्ठित करने की चेष्टा की। उनकी कविताओं में एक संदेश होता था, चाहे वह अंग्रेजी राज की आलोचना को लेकर, चाहे देशभक्ति की भावना या फिर सामाजिक यर्थाथ का वास्तविक चित्रण हो। उनकी कविता भारत की जातीय संस्कृति से जुड़ी हुई थी।

गुप्तजी में स्वाधीन होने की चेतना कितनी प्रबलतम रूप में थी इसका उदाहरण हमें उनकी उस भावना से मिलता है, जिसमें वे राजभक्तों की चाटुकारिता प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हैं। बहुत सी रचनाएँ उन्होंने राजभक्तों पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखी है। पंजाब के देशद्रोहों पर कितनी मार्मिकता से प्रहार किया है :-

''पेट बन गये है इन सबके लायलटी के गुब्बारे,
चला नहीं जाता है, थककर हाँप रहे हैं बेचारे।
बहुत फूल जाने से डर है फट न पड़े यह इनके
इसी पेट के लिए लगी है लायल्टी की इन्हें चपेटा''[2]

गुप्तजी में स्वाधीन होने की चेतना इतनी प्रबल थी कि उन्होंने प्रत्येक राष्ट्रविरोधी तत्व पर प्रहार किया। गुप्तजी के गद्य और पद्य दोनों में हमें राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना सम्पूर्ण अर्थ में भारतीय थी। इसी भावना के कारण वे अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालना चाहते थे। भारतीय जनता के प्रत्येक पक्ष के और अंग्रेजों के शोषण को अपनी रचनाओं में उभारा। ''बालमुकुन्द गुप्त अपने युग के पत्रकार पुड़ग्व थे। पत्रकारिता के माध्यम से उन्होंने साहित्य में राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व किया था। नवजागरण की पृष्ठभूमि में

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 192
2 (सं.) के.सी. यादव बालमुकुंद गुप्त रचनावली (खण्ड-2), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर 18, गुडगाँव, 2013, पृ. - 448

जिस राष्ट्रीय भावना का विकास भारतेन्दु से आरम्भ हुआ था, उसके गायक गुप्तजी थे।''[1]

4.2 अंग्रेजों का विरोध/अंग्रेजी राज की आलोचना

बालमुकुंद गुप्त ने अपनी रचनाओं में मुख्यत उस पक्ष को अधिक उभारा है, जिसमें उन्होंने प्रमुख रूप से अंग्रेजों का विरोध किया है। उनकी रचनाओं में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेज विरोध देखने को मिलता है। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के शिवशंभु ने राजनीतिक जगत में हलचल मचा दी थी। जिस समय साहित्यकार अपनी साख तथा अपना अख़बार बचाने के लिए अंग्रेजों का गुणगान कर रहे थे उस समय गुप्त जी अंग्रेजों के विरूद्ध 'शिवशंभु के चिट्ठे' लिख रहे थे। श्री मुनीश्वर झा का कथन है :- ''अंग्रेजी राज्य की कठोर यातनाओं के विरूद्ध निर्भीक भाव से प्रतिवाद करना गुप्त जी जैसे देशभक्त साहित्यकार का ही काम था। इस दिशा में उनका साहस देखते बनता है। दासता और दमन की भीषण परिस्थितियों में विदेशी शासकों की कटु आलोचना करना जीवन का काम था। यह उनके नैतिक बल और आत्मतेज का निर्देशन है। शिवशम्भु शर्मा के माध्यम में उनकी आत्मा बोलती है।''[2]

गुप्त जी की रचनाएँ एक विशिष्ट उद्देश्य लिए हुए है। यह उद्देश्य ही उन्हें अपने समकालीनों से विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करता है। भारतेन्दु कालीन अन्य लेखक जहाँ मनोरंजन के लिए लिख रहे थे, वहीं गुप्त जी की रचनाएँ अपने साथ गंभीर उद्देश्य लिए होती थे। जहाँ प्रतापनारायण मिश्र जैसे रचनाकार 'अंग्रेज प्रभु' की स्तुति करने के लिए 'ब्रैडलास्वागत' लिख रहे थे, वहीं गुप्त जी के ''चिट्ठे और खत'' दोहरी मार करते थे। एक तरफ तो भारतीय दीन-हीन प्रजा का बोध कराते हुए देश को जागृत करने का अपना दायित्व निभाते हैं, वहीं दूसरी तरफ अंग्रेज शासकों को

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 33

2 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह, 1965, पृ. - 25

यह बतलाते हैं कि भारतीय अंग्रेज शासकों की चालें समझता है। गुप्त जी ने अंग्रेजी सभ्यता और शासन के घातक परिणामों का उद्‌घाटन किया, उनके प्रति विरोध प्रकट किया और असंतोष का भाव जाहिर किया। अपने व्यंग्य प्रधान निबंधों के माध्यम से उन्होंने लार्ड कर्जन, लार्ड मिन्टो, भारत सचिव (लार्ड मार्ले), पूर्व बंगाल के छोटे लाट (फुलर) आदि पर निशाना साधा। ''इनके कुशासन में देश की जो दुर्गति हो रही थी, उसका जीता जागता खाका उन्होंने खींचा, इनके कुकृत्यों पर निर्मम प्रहार किया। इनकी विषमताओं का रहस्योद्‌घाटन कर जनता में नवजागरण लाना गुप्त जी का लक्ष्य था। सभी निबंधों में देश भक्ति की अन्तः सलिल प्रवाहित होती थी, क्योंकि अंग्रेजी शासन के प्रति विद्रोह का स्वर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र था।''[1]

गुप्त जी ने अंग्रेजों की उस नीति का विरोध अवश्य किया जिसमें भारतीयों का अहित था, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से या परोक्ष रूप से। 'भारतमित्र' और 'गुप्तजी' को जिस बात से सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली, वह थे 'शिवशम्भु के चिट्‌ठे'। इन चिट्‌ठों का ऐतिहासिक महत्व तो है, परन्तु उस समय में इन्होंने राजनीतिक जगत में हलचल मचा दी थी। इनकी भाषा सीधी, परन्तु चुभती हुई है। लॉर्ड कर्जन की काली करतूतों को सामने रखने के लिए गुप्तजी ने इन निबंधों और कविताओं की रचना की। विदेशी शासन की नीतियों को बेपर्दा करने के लिए व्यंग्य बाणों का सहारा लिया। ''शिवशम्भु के आठ चिट्‌ठों का महत्व स्वतंत्रता प्राप्ति आंदोलन में विशिष्ट है। उनमें गुप्तजी ने लॉर्ड कर्जन के भारत विरोधी कार्यों को एक-एक करके गिनाया और देशवासियों में देश भक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावना भरकर उन्हें आत्म बलिदान के लिए प्रस्तुत किया।''[2]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, 1965, पृ. - 27

2 (सं.) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त एक मूल्याकंन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. - 24

गुप्तजी का 'शिवशंभु' स्वयं को ही चिथड़ा पोश कंगालों का ही प्रतिनिधि बताता है। लेखक के लिए सुशासन का पर्याय रोटी, कपड़ा और मकान का बन्दोबस्त करना है। स्वदेश प्रेम और मातृभूमि का सम्मान ही उसके लिए सर्वोपरि है। इसी को गुप्तजी ने अपने निबंधों में प्रकट किया है। अंग्रेजों और अंग्रेजी राज का भंडाफोड़ करना, भारतीयों में अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति देशभक्ति पैदा करना ही उनका मुख्य उद्देश्य रहा है। तत्कालीन भारतीय जीवन में लॉर्ड कर्जन घृणा और आलोचना का पात्र बन गया था। राष्ट्रभक्त कवि उस पर प्रहार करने का कोई मौका चूकना नहीं चाहते थे। इसीलिए गुप्त जी ने लॉर्ड कर्जन को आड़े हाथ लिया। कर्जन का विरोध प्रकट करने के लिए गुप्त जी ने टेसू गीत और चिट्ठे लिखे और उसके बाद 'कर्जन नामा' नामक कविता लिखी। अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध कड़ा लिखने के कारण ही गुप्त जी को हिन्दोस्थान छोड़ना पड़ा था। देश के स्वतंत्र, राजनीतिक प्रश्नों पर उन्होंने बेधड़क लेखनी चलाई। जहाँ एक तरफ भारतीय जनता भूख, गरीबी और अकाल से मर रही थी, वहीं अंग्रेजी सरकार अंग्रेजों की मूर्तियां बनाकर पैसे बर्बाद कर रही थी। कर्जन ने अपने शानो-शौकत के लिए दिल्ली दरबार लगाया, जिसमें पैसा पानी की तरह बहाया। कलकत्ते में लॉर्ड लैन्सडाऊन की मूर्ति के उद्घाटन पर उन्होंने लिखा ''ये मूर्तियां किस प्रकार के स्मृति चिह्न हैं? इस दरिद्र देश के बहुत से धन की एक ढेरी है, जो किसी काम नहीं आ सकती। एक बार जाकर देखने से ही विदित होगा कि वह कुछ विशेष पक्षियों के कुछ देर विश्राम लेने के अड्डे से बढ़कर कुछ नहीं।''[1] (बनाम लॉर्ड कर्जन) यह काल राष्ट्रीय जागृति का था। स्वदेशी के प्रति आग्रह और विदेशी वस्तुओं के प्रति विरोध बढ़ रहा था। प्रगतिशील राष्ट्रीय नेताओं ने 'स्वराज्य' का नारा दिया था। जातीय एकता को मजबूत करने के प्रयत्न आरम्भ हो रहे थे। विदेशी शासन के प्रति असंतोष बढ़ रहा था। परन्तु इस असंतोष को शब्दों में व्यक्त करना आसान कार्य नहीं था। इसके लिए निर्भीक व्यक्तित्व आवश्यक था। बालमुकुंद गुप्त ऐसे ही व्यक्तित्व

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.96

के स्वामी थे। लॉर्ड कर्जन के आने पर गुप्त जी व्यंग्य करते हुए कहते हैं, ''इस समय भारतवासी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते हैं और आप यह जानते भी हैं कि आप क्यों आते हैं। यदि भारतवासियों का बस चलता तो आपको न आने देते और आपका वंश चलता तो और भी कई सप्ताह पहले आ विराजते। पर दोनों और की बाग किसी और ही के हाथ में हैं''[1]

कितना सीधा और सपाट व्यंग्य है जिसमे ंकोई लाग-लपेट नहीं हैं कोई चापलूसी अथवा राजभक्ति नहीं। अंग्रेजी सरकार के प्रति विद्रोह का भाव उनकी रचनाओं के साथ-साथ उनकी आत्मा में था। यह विरोध उनकी 'टेसू' कविताओं में भी झलकता है।

''बार दूसरी कर्जन आये, सनद साल दो को फिर लाये।
आय बम्बई में यो बोले, कौन बुद्धि मेरी को तोले।
मुझसा कोई हुआ न होगा, यह जाने कोई जानन जोगा।''[2]

भारत के ऐतिहासिक - सांस्कृतिक वैभव का प्रदर्शन करते हुए गुप्त जी ने कर्जन के उस वक्तव्य की ओर इशारा किया हैं, जिसमें उन्होंने भारतीयों को अज्ञानी अयोग्य, ग्वार और अशिक्षित बताया था। अंग्रेजों की इसी मंशा के भांपते हुए गुप्त जी ने अंग्रेजों के उस इरादों पर कस कर प्रहार किया, जिसमें वे भारतीयों को पीछे धकलेने की सोचते हैं। 'पीछे मत फेंकिए' में गुप्त जी कहते हैं, ''आप जैसे उच्च श्रेणी के विद्वान के जी में यह बात कैसे समाई कि भारतवासी बहुत से काम करने योग्य नहीं और उनको आपके सजातीय ही कर सकते हैं? आप परीक्षा करके देखिए कि भारतवासी सचमुच उन ऊँचे से ऊँचे कामों को कर सकते हैं या नहीं जिनको आपके सजातीय कर सकते हैं।.....

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त, ग्रन्थावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.96
2 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.203

हां दो बातों में वह अंग्रेजों की नकल या बराबरी नहीं कर सकते। एक तो अपने शरीर के काले रंग को अंग्रेजों की भांति गोरा नहीं बना सकते और दूसरे अपने भाग्य को उनके भाग्य में रगड़ कर बराबर नहीं कर सकते।''[1]

गुप्त जी ने अंग्रेजों की प्रत्येक उस नीति का विरोध किया जो भारत विरोधी थी। कर्जन मिंटों, मार्ले, फुलर सभी की धमकियों का जवाब उन्होंने उग्रता से दिया।

आशा का अंत, एक दुराश।, आर्शीवाद जैसे निबंधों में गुप्तजी ने अंग्रेजी शासन के दुष्परिणामों के बारे में भारतीयों को चेताया हैं। भारतीय जिस शासन को सभ्यता और उन्नति का पर्याय माने बैठे हैं, वह वास्तव में दुःख और निराशा का अंधकार है। अंग्रेजी सरकार ने यदि कोई अच्छे कार्य किए है तो वह अपने स्वार्थ के लिए। लॉर्ड कर्जन को ललकारते हुए वे कहते हैं, ''माई-लॉर्ड! आपने कछाड़ के चाय वाले साहबों की दावत खाकर कहा था कि यह लोग यहां नित्य है और हम लोग कुछ दिन के लिए। आपके वह कुछ दिन बीत गये। अवधि पूरी हो गई। अब यदि कुछ और मिलें तो वह किसी पुराने पुण्य के बल से समझिये।''[2]

गुप्त जी अंग्रेजों को बार-बार यह याद दिलाना नहीं भूलते कि वे इस देश में सिर्फ कुछ दिनों के लिए हैं। यह पद और स्थान हम भारतीयों की सौगात हैं स्वयं को शिवशंभु शर्मा के माध्यम से इस भूमि का प्रतिनिधि मानते हैं। इसलिए सभी गरीब भारतीयों की तरफ से अपनी बात कहते हैं, अंग्रेजों का विरोध करते हैं और देशभक्ति के लिए लोगों को प्रेरित करते हैं। कर्जन ने शिक्षा को महंगी बनाकर उसे सामान्य जनों से वंचित कर दिया था। यूनिवर्सिटी एक्ट बनाकर शिक्षा पर सीधा अंग्रेजों का हस्तक्षेप कर दिया था। ऐसे साहित्य के पढ़ने पर रोक लगा दी जो स्वाधीनता की प्रेरणा देता हो। गुप्तजी ने शिक्षा की असाध्यता के बारे में व्यंग्य किया है।''

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.105
2 (सं.) नत्थन सिंह, बाल मुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा, साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.95

'कर्जन जी जब देश पधारे, तब मिन्टो जी ने पगधारे।
लोग लगे अभिनन्दन देने, चुपके-चुपके उत्तर लेने।
मारवाड़ियों से खुश होकर, कहा बनो तुम रायबहादुर
पढ़ो लिखो मत मौज उड़ाओं, आये साल उपाधी पाओ।''[1]

शिक्षा पद्धति पर चोट करके भी कर्जन को शांति नहीं मिली तो उन्होंने जाते-जाते बंग-भंग कर दिया। बंगाल के विभाजन से भारत का हृदय कराह उठा। गुप्त जी ने बंग विच्छेद पर बहुत ही मार्मिक लेख लिखे। गुप्त जी कहते हैं - ''अब कुछ करना रह भी गया हो तो उसके पूरा करने की शक्ति माई लॉर्ड में नहीं है। आपके हाथों से इस देश को जो बुरा भला होना था, वह हो चुका, एक ही तीर आपके तर्कश में और बाकी था, उससे आप बंग भूमि का वक्षस्थल छेद चले। बस यहाँ आकर आपकी शक्ति समाप्त हो गई। इस देश की भलाई की और तो आपने उस समय भी दृष्टि न की, जब कुछ भला करने की शक्ति भी आपमें थी।''[2]

बंग-भंग के विरोध में चारों तरफ आन्दोलन हो रहे थे। लोगों ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं को अपनाना आरंभ कर दिया। जगह-जगह स्वदेशी आंदोलन होने लगे। गुप्त जी का सम्पूर्ण समर्थन इन आन्दोलनों के साथ था। स्वदेशी आन्दोलन को समर्थन देने के लिए गुप्त जी ने कई लेख और कविताएँ लिखी। डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने बालमुकुदं के बारें में कहा है, ''राष्ट्र की आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए बालमुकुन्द गुप्त स्वदेशी आंदोलन का समर्थन करते हैं। संभवत कुछ लोग विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार एवं स्वदेशी आंदोलन के प्रवर्तन का श्रेय केवल महात्मा गांधी को देना चाहे, किन्तु वास्तविकता यह है कि उनसे बहुत पूर्व हिन्दी के राष्ट्रीय कवि इस क्षेत्र में आगे बढ़ गये थे।''[3] बंगाल में जगह-जगह आंदोलन हो रहे थे।

---

1 (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.209
2 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ.188
3 डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, खण्ड-द्वितीय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.36

अंग्रेजी सरकार इन आंदोलनों को दबाने के लिए दमन पर उतारू हो गई। गवर्नर फुलर ने धमकी दी थी कि अगर आंदोलन बंद नहीं किया गया तो 'शाइस्ता खाँ' का जमाना वापिस ला दिया जाऐगा। गुप्त जी ने विरोध स्वरूप दो पत्र तो 'शाइस्ता खाँ का खत फुलर साहब के नाम' शीर्षक से लिखे। इस क्रम में 'छोड़ चले शाइस्ताखानी' नामक कविता भी लिखी। इन निबंधों में शाइस्ताखाँ के मुंह से अंग्रेजों को चोर, डाकू और दूसरों के देश को हड़पने वाला कहलवाकर अपने अंग्रेज विरोध को प्रकट किया है। 'शाइस्ता खाँ' चाहे जितना ही क्रूर और अत्याचारी था, परन्तु उसका शासन अंग्रेजी राज से अच्छा था। शाइस्ता खाँ के माध्यम से गुप्त जी कहते हैं :-

''तुम लोगों को मैं सदा कमीने, झगड़ालू लोग और बेईमान वक्काल कहा करता। मेरे बाद भी तुम्हारे कामों से इस मुल्क के लोगों को कभी मुहब्बत नहीं हुई।''[1]

अंग्रेजों को सीधे-सीधे ललकारने का साहस गुप्तजी जैसे निर्भीक पत्रकार के ही बस का था। ये उनकी निडरता का प्रमाण है। बाबू बालमुकुंद गुप्त ने पत्रकारिता के क्षेत्र में इतना नाम कमाया था कि अंग्रेजों ने भारतीय साम्राज्य की राजधानी कलकत्ता में स्थित हाईकोर्ट में स्पेशल ज्यूरी मनोनीत किया। लॉर्ड कर्जन के दिल्ली दरबार (1903) में उन्हें इस तरह निमंत्रित किया गया जैसे अंग्रेजी समाचार पत्रों के प्रतिनिधियों को। परन्तु उन्होंने इस सम्मान को ग्रहण करते हुए भी कभी राजभक्ति नहीं दिखाई। अंग्रेजों के प्रति उनके मन में कभी आदर, सम्मान अथवा सहानुभूति नहीं जागी। उन्होंने अंग्रेजों का सदा विरोध ही किया।

इंग्लैंड में उदार दल की सरकार बनने से लोगों को विश्वास था कि भारत में अब शासन सुधरेगा, परन्तु गुप्त जी इस भ्रम से दूर थे उन्होंने लोगों को भी चेताया कि उदार और अनुदार दोनों एक से ही है। गुप्त जी ने कहा है-

---

1 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005 पृ.203

''नहिं कोई लिबरल नहीं कोई टोरी, जो परनाला सोई मोरी।

दोनों का है पंथ अधोरी, होली है, भई होली है।''[1]

''निष्कर्ष यह है कि गुप्त जी उत्कृष्ट कोटि के देशभक्त लेखक थे। वह निर्भीकता पूर्वक अंग्रेज गवर्नर, वायसराय तथा भारत सचिव आदि के भारत विरोधी कार्यों की आलोचना करते हैं। उदार तथा अनुदार दलों को भारत का शोषक बताते हैं। राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करते हैं।''[2] गुप्त जी ने सदैव ऐसी समस्याओं की तरफ भारतीय जनता का ध्यान आकृष्ट करना चाहा जोकि अग्रेंजी साम्राज्य की देन थी। स्वाधीनता की चेतना की रोशनी उन्होंने पत्रकारिता के माध्यम से जताई। अग्रेंजी राज्य की कृटनीतियों को गुप्तजी बारीकी से समझते थे। अग्रेंजो का विरोध करने के लिए उन्होंने व्यंग्य का सहारा लिया। अग्रेंजो का प्रत्यक्ष विरोध वही कर सकता है जिसमें स्वाधीनता की चेतना विद्यमान हो। यह गुप्त जी के चरित्र का विशिष्ट पहलू है।

4.3 हिन्दी की जातीय चेतना के निर्माण में योगदान

भारतेन्दु और उसके साथियों ने जिस जातीय गद्य की शुरूआत की उसका स्वरूप सामंत विरोधी रहा है। अंग्रेजों को इसी प्रदेश को विजित करने में सबसे अधिक कठिनाई हुई थी। 1857 का स्वाधीनता संग्राम हिन्दी क्षेत्र का मुख्य संग्राम था। 1873 में भारतेंदु हिन्दी को नई चाल में ढलने की बात मानते हैं, परन्तु साथ-साथ विचारों की नई करवट को भी मानते हैं। भारतेन्दु और उनके साथियों ने जिस जातीय गद्य की शुरूआत की, वह हिन्दी के माध्यम से ही की थी। वह युग राजनीतिक, सामाजिक तभा भाषा संबंधी आंदोलनों का था। हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत करने के लिए जो साधन मिलता, उसी को लेकर साहित्यकार सक्रिय हो जाता। नाटक, सभा, व्याख्यान जो भी साधन मिलता उसे काम में लाने में हिचकिचाते नहीं थे।

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 200

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 259

मेले-ढ़ेले, जनता का जमाव, सभा - समिति जहाँ होती, वहीं हिन्दी का प्रचार आरंभ कर देते। हिन्दी हस्ताक्षर अभियान के लिए कुछ सभाएँ स्थानीय थी, कुछ नागरी प्रचारिणी सभा के संगठन की थी। इन सभाओं ने हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। देश के बिखरे नगरों में हिन्दी को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उस युग के हिन्दी लेखकों ने अनेक सभाओं - संस्थाओं के माध्यम से हिन्दी प्रचार प्रसार को बढ़ावा दिया। इन सभाओं ने देश के बिखरे नगरों में लोकप्रिय बनाने में योगदान दिया।

राधाचरण गोस्वामी ने कवि कुल कौमुदी सभा के माध्यम से, आर्य समाज ने अपने प्रचार के द्वारा, भारतेन्दु की कविता वृद्धिनी सभा, पेनी रीड़िग क्लब, तटीय समाज आदि संस्थाओं के माध्यम से, सुधाकर द्विवेदी जी ने विज्ञान प्रचारिणी सभा के माध्यम से, तोताराम ने भाषा (अलीगढ़) संवृद्धिनी सभा के माध्यम से, पटना में कवि समाज, रांची में मातृभाषा परिषद्, कार्तिक प्रसाद खत्री ने पूर्वोत्तर राज्य शिलांग में मित्र समाज के माध्यम से हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत किया।

उस युग में हिन्दी आंदोलनों की धूम मची हुई थी। उस समय के लेखकों ने हिन्दी सेवा का अखण्ड व्रत लिया हुआ था। बालमुकुंद गुप्त भी इन्हीं हिन्दी लेखकों में से एक थे। गुप्त जी भी हिन्दी की सेवा के लिए उर्दू का त्याग कर हिन्दी पत्रकारिता में कूदे थे। कलकत्ता उस समय हिन्दी पत्रकारिता का केन्द्र बना हुआ था। गुप्त जी ने अपने समय में उठाए गए हिन्दी संबंधी आंदोलनों और चर्चा-परिचर्चा में भाग लिया। हिन्दी-उर्दू के मध्य उठाई गई प्रतिद्वन्द्विता के पीछे धार्मिक तथा राजनैतिक अनुप्रेरणाएँ प्रतिक्रियावादी शक्तियों के रूप में कार्य कर रही थी। गुप्त जी ने सम्पूर्ण आस्था के साथ इस संघर्ष में भाग लिया। इनके भाषा संबंधी निबंधों में इसी भावना के दर्शन होते हैं। भाषा समस्या पर गुप्त जी ने गंभीरता पूर्वक विचार किया था। गुप्त जी भाषा की शक्ति से पूर्णतः परिचित थे, इसलिए उन्होंने पूरी आस्था के साथ हिन्दी भाषा की जातीय एकता को मजबूत करने के लिए कार्य किया।

भारतेन्दु को अपना आदर्श मानते हुए गुप्त जी ने अपना जीवन हिन्दी को समर्पित कर दिया। उनके सामने प्रश्न हिन्दी भाषा के साथ-साथ देवनागरी लिपि का भी था। अंग्रेजी के वर्चस्व को तोड़कर हिन्दी को राष्ट्रभाषा, जनता की एकता की भाषा बनाने का था। यह उनका विश्वास ही था कि हिन्दी समस्त राष्ट्र की भाषा बन सकती हैं। हिन्दी भाषा और लिपि से संबंधित उन्होंने बहुत से निबंध लिखे जिनमें से हिन्दी भाषा की भूमिका, हिन्दी भाषा, हिन्दी की उन्नति, भारत की भाषा, एक लिपि की जरूरत, देवनागरी अक्षर और हिन्दुस्तान में एक रस्मुलखत आदि प्रमुख है। इन निबंधों में भाषा की जातीय चेतना के दर्शन होते हैं।

''बालमुकुंद गुप्त ने अपने भाषा संबंधी निबंधों में जिन तथ्यों और विशिष्ट घटनाओं का उल्लेख किया है, उनसे हमें ज्ञात होता है कि हिन्दी भाषा आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना के साथ सम्बद्ध हैं। ये निबन्ध हमारे सम्मुख एक युग विशेष को मुखरित कर देते हैं। उस युग को जिसमें देश अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त होने की बलवती प्रेरणा से शक्ति संचय कर रहा था। उस युग का जिसमें एक वर्ग विशेष हिन्दी भाषा के माध्यम से ही राष्ट्र संगठन की परिकल्पना कर हिन्दी के विकास और प्रसार की चेष्टा में विविध दिशाओं से शक्ति संचय कर रहा था।''[1]

सिर्फ हिन्दी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है, इस मत को व्यक्त करने के लिए गुप्त जी ने 'भारत की भाषा' नाम से निबंध लिखा। गुप्त जी ने इस निबंध में हिन्दी भाषा और उसके स्वरूप का मूल्यांकन राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में किया हैं। राष्ट्रीय एकता के निर्माण में अन्य प्रादेशिक भाषाओं के महत्व को भी स्वीकारा। प्रवासी (प्रयाग से निकलने वाला बंगला भाषा का पत्र) ने चारों भाषाओं को एक ही लिपि में लिखने का सुझाव दिया इसी का अनुमोदन करते हुए गुप्त जी ने कहा है - ''विचार उत्तम है। हम इसका अनुमोदन करते हैं। निश्चय चार भाषाएं जब एक ही अक्षरों में एक

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ.149

पत्र में छपेंगी तो धीरे-धीरे वह बहुत मिल-जुल जाएँगीं। उक्त पत्र के पाठक भी चारों भाषाओं के जानने-सीखने की चेष्टा करेंगे। देवनागरी अक्षरों का जितना अधिक प्रचार होगा उतना ही भारतव्यापी होने के योग्य भाषा हिन्दी का अधिक प्रचार होगा। हिन्दी अब भी भारतव्यापी है।''[1]

गुप्त जी की चेतना दूर-दर्शिनी थी। देश के जन-जन की मानसिकता का अंदाजा उन्हें था। राष्ट्रीय चेतना का अभिर्भाव उनमें व्याप्त मानसिक एकता के माध्यम से हो सकता है और यह एकता भाषा के माध्यम से ही संभव हैं। गुप्त जी की धारणा थी कि देश की राष्ट्रीय भाषा एक हो और भिन्न-भिन्न भाषाएं एक ही लिपि 'देवनागरी' में लिखी जाएँ जिससे विभिन्नता में एकता बनी रहे।

बीसवीं सदी की पत्रकारिता में विविधता और एक रूपता तो मिलती है परन्तु अभी हिन्दी में रूचि रखने वाली जनता बहुत छोटी थी। परन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदली और हिन्दी पत्रों ने साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में नेतृत्व करना आरंभ कर दिया। इसके लिए हिन्दी पत्रकारों, साहित्यकारों और लेखकों ने जी-तोड़ मेहनत की। अपना सर्वस्व हिन्दी को अर्पित कर दिया। उत्तर भारत के प्रत्येक नगर में हिन्दी और नागरी प्रचार की असंख्य सभाएं और संस्थाएँ बनाई गईं। कलकत्ते के पत्र और पत्रकार भी हिन्दी और नागरी के विराट और व्यापक आंदोलन के अंग बन गए। कलकत्ता हिन्दी प्रचार का प्रमुख केन्द्र बना। मेरठ के पं. गौरीदत्त शर्मा नागरी का झंडा उठाए जगह-जगह घूमते थे। उनके उदम्य साहस से प्रभावित होकर अनेक व्यक्ति हिन्दी आंदोलन से जुड़े। बालमुकुंद गुप्त उन सभी आंदोलन से जुड़े। बालमुकुंद गुप्त उन सभी आंदोलनों का हिस्सा बना। हिन्दी के संबंध में दर्जनों लेख लिखे। हिन्दी की उन्नति में वे कहते हैं - ''केवल गाल बजाने से हिन्दी की उन्नति नहीं होती है। भाषा की उन्नति के लिए लेखक चाहिए। लेखक बनने के लिए पाठक चाहिए और

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्तः संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 208

पाठक होने के लिए मातृभाषा पर अनन्त अनुराग, अनन्त प्रेम, अनन्त भक्ति चाहिए।''[1]

हिंदी की भाषायी चेतना ने राष्ट्रीय स्वरूप धारण कर लिया था। हिन्दी पत्रकारिता ने इसी जातीय चेतना को दृढ़ करने के लिए कार्य किया। हिन्दी भाषा और उसकी जातीय एकता को मजबूत करने के लिए गुप्त जी ने 'हिन्दोस्थान' और 'भारतमित्र' जैसे पत्रों के माध्यम से कार्य किया। हिन्दी से संबंधित जितने भी आंदोलन हुए वे सभी राष्ट्रीय आंदोलन की एक धारा की तरह हैं। सारसुधानिधि, उचित वक्ता और भारतमित्र आदि पत्र बीसवीं सदी के राष्ट्रीय चेतना के पत्र थे, जिन्होंने सामाजिक आर्थिक मुद्दों पर जमकर लेखनी चलाई। गुप्त जी ने भारतमित्र के माध्यम से हिन्दी की जातीय एकता को मजबूत करने में योगदान दिया। भाषा, लिपि, व्याकरण, स्वरूप, जातीय एकता, हिन्दी-उर्दू का मेल, हिन्दी-उर्दू में भिन्नता आदि प्रश्नों पर उन्होंने शालीनता से विचार किया। डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र का कहना है, ''भाषा संबंधी ऐसे अनेक ऐतिहासिक महत्व के कार्यो को भारतमित्र ने सम्पन्न किया। देवनागरी लिपि में कई लेख बाबू बालमुकुंद गुप्त ने लिखे थे। देवनागरी लिपि की उन्नायिका संस्था 'एक लिपि विस्तार परिषद्' के आन्दोलन को भारतमित्र ने शीर्ष महत्व दिया। भाषा निर्माण और उन्नयन की ही यह एक स्वस्थ चेष्टा थी।''[2]

भारतेन्दु युग की जिन्दादिली उनकी विरासत है। उस युग के रचनाकारों में विविधता देखने को मिलती है। जिस रचनाकार ने जो बात कहनी चाही वह स्पष्टता से कही। कहीं भी छुपाव नहीं दिखाई देता। भारतेंदु का साहित्य जिंदादिली की मिसाल है, तो प्रतापनारायण मिश्र का साहित्य मस्ती और फक्कड़पन लिए है, राधाचरण गोस्वामी की रचनाओं में सामाजिक प्रगतिशीलता दिखाई पड़ती हैं, वहीं गुप्तजी के

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्तः (संकलित निबंध), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 206

2 डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, भारतीय, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985, पृ. 462

साहित्य में राजनीतिक प्रखरता के दर्शन होते हैं। यद्यपि अन्य पहलुओं पर भी इन्होंने लिखा है। परन्तु एक विशेष क्षेत्र में लिखने पर इन्हें प्रसिद्धि मिली। विविधताओं के होते हुए भी इनमें एक समानता मिलती है, वह है हिन्दी के जातीय उन्नयन के लिए साझा प्रयास। गुप्त जी की महत्वपूर्ण विशेषता यह रही कि इन्होंने उर्दू और मुसलमानों का विरोध नहीं करते हुए भी हिन्दी का समर्थन किया। अपनी संस्कृति से हिन्दी का संबंध जोड़ा। कर्मेन्दु शिशिर का कहना है। ''भारतेंदु युग और द्विवेदी युग के संधिकाल में बालमुकुंद गुप्त जातीय गद्य परम्परा के अत्यंत प्रखर और शीर्ष गद्यकार है। उन्हें जिंदादिली भारतेन्दु से विरासत में मिली थी और उनके व्यंग्य में इतना पैनापन भरा था, जिसकी मार तिलमिला देने वाली थी। उनके गद्य में जनभाषा का परिष्कृत साहित्यिक रूप था। वाक्य असाधरण रूप से गठित ठोस और सघन तो थे ही उनमें मारकशक्ति बड़ी गजब की थी।''[1]

हिन्दी के जातीय उन्नयन के लिए बालमुकुंद गुप्त कितने चिंतित थे इसका उल्लेख वे हिन्दी की उन्नति लेख में करते हैं, ''यदि हिन्दी पर सचमुच अनुराग हुआ तो हिन्दी की उन्नति के धन संग्रह कीजिए, सुयोग्य सुपंडितों से हिन्दी की प्रयोजनीय पुस्तकें लिखवाकर संगृहीत धन से खरीद लीजिए। वह पुस्तकें देश में बांट कर देशवासियों में हिन्दी पढ़ने का शौक फैलाइए। तभी मातृभाषा की उन्नति होगी तभी हिन्दी अपने उचित स्थान को प्राप्त कर देशवासियों को अपने फल-फूल-पत्र-पल्लवों से सुशोभित होकर बहार दिखा सकेगी।''[2] गुप्त जी का मानना था कि नागरी अक्षरों को छोड़कर अन्य किसी भी लिपि में वह विशेषता नहीं है जिससे कि वह अन्य बोलियों को सही-सही लिख सके। देवनागरी अक्षर निबंध में गुप्त जी कहते हैं ''देवनागरी अक्षर भारतवर्ष में सबसे उत्तम अक्षर है। भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत इन्हीं अक्षरों

---

1 कर्मेन्दु शिशिर, हिन्दी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, 2008, पृ. 28-29

2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त (संकलित निबंध), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 206

में लिखी जाती है। सीखने में भी यही सबसे जल्द आते हैं। जिस पर भी लोगों का इन पर वैसा प्रेम नहीं, जैसा होना चाहिए।''[1] गुप्त जी ने सिर्फ इसलिए हिन्दी भाषा का पक्ष नहीं लिया कि वह उनके क्षेत्र की भाषा थी। उन्होंने इस भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से समर्थन किया। हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि की हिमायत करने के लिए उन्होंने उर्दू के निराधार आरोपों का उत्तर दिया। हिन्दी उर्दू विवाद को शांत करने के लिए गुप्तजी ने नागरी अक्षर, मुसलमानी नाराजी, उलटे अक्षर, गरारेदार पंडित, नागरी की अर्जी आदि लेख लिखे। हिन्दी-उर्दू के संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है, ''आज के हिन्दी लेखक भारतेन्दु, बालमुकुदं गुप्त और प्रेमचन्द से कुछ बढ़िया हिन्दी नहीं लिखते। अगर उन जैसे महान् लेखक भी उर्दू से कुछ सीख सकते थे तो हम क्यों नहीं सीख सकते?''[2] गुप्तजी का मानना था कि भाषा का संबंध धर्म या जाति के साथ नहीं बल्कि मानव समुदाय से होता है। भाषा का वही रूप उपयोगी है, जो बहुसंख्यक जनसमुदाय के साथ होता है। विभिन्न भाषाओं तथा संस्कृतियों की समीपता लाने के लिए वे देश की सभी भाषाओं को एक ही लिपि में लिखने का सुझाव देते हैं। हिन्दी भाषा का इतिहास लिखने की चेष्टा गुप्तजी ने की थी परन्तु उनकी असामयिक मृत्यु के कारण वह पुस्तक पूरी न हो सकी। परन्तु जितना उन्होंने लिखा उसमें मुगलों के समय से लेकर अपने समय तक के हिन्दी के बदलते स्वरूप की चर्चा की है। डॉ. के.सी. यादव ने गुप्त जी की इस पुस्तक के बारे में कहा है, ''वास्तव में हिन्दी भाषा के द्वारा हमें राष्ट्र निर्माण का नीला नक्शा देना चाहते थे। इस अपूर्ण कृति में भी उसकी झलक साफ दिखती हैं यहां हिन्दी और उर्दू माँ-बेटी है, उत्तर की क्षेत्रीय भाषाएं हिन्दी के अंतर्गत खड़ी हैं अन्य स्थानों की अन्य भाषाओं में भी कहीं न कहीं

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त (संकलित निबंध), राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 215

2 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 142

अपनेपन का रिश्ता है और हिन्दी के निर्माण में हिन्दू-मुसलमान, सिख-ईसाई सब का योग है।''[1]

4.4 हिन्दी गद्य का विकास

भारतेन्दु युग से पूर्व ही गद्य के विकास का प्रयास आरम्भ हो गया, परन्तु अभी उसका प्रचार-प्रसार होना बाकी था। इसी संदर्भ में डॉ. शभुंनाथ का कहना है, ''हिन्दी में आधुनिक काल का आरंभ नवजागरण के साहित्य से होता है, जिसमें भारतेन्दु-पूर्व आधुनिक साहित्य, भारतेन्दु युगीन साहित्य तथा द्विवेदी युगीन साहित्य आयेगा। इसी साहित्य से आधुनिकता, प्रगतिशीलता और जनवाद की परंपरा आरंभ हो जाती है।''[2] भारतेन्दु ने नाटक विद्या का प्रसार-प्रचार किया था, परन्तु अन्य विद्याएं अभी उपेक्षा की ही पात्र थी। उपन्यास की तरफ लोगों की रूचि जागृत हो रही थी। बंगला से अनूदित उपन्यास लोगों में हिन्दी प्रेम का एक कारण बने। भारतेन्दु मंडल के लेखकों ने अनुवाद का कार्य बहुत बड़े स्तर पर किया। लगभग इस काल के सभी लेखक एक से अधिक भाषाएं जानते थे। हिन्दी सेवा की आकांक्षा इनमें थी ही, इसलिए अन्य भाषाओं की प्रसिद्ध कृतियों जैसे- उपन्यास, नाटक, कहानी का अनुवाद होने लगा। हिन्दी रचनाकारों ने लोगों को आकर्षित करने के लिए हिन्दी में अनुवाद कार्य आरंभ किया। हिन्दी रचनाकारों ने अपनी-अपनी क्षेत्रीय प्रान्तीय भाषाओं को छोड़कर हिन्दी को अपनाया। बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी और अम्बिका दत्त व्यास जैसे लेखक संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। परन्तु फिर भी मातृभाषा के प्रति दायित्व की खातिर हिन्दी में रचनाकार्य आरम्भ किया। सुधाकर द्विवेदी जैसे संस्कृत के प्रखण्ड पंडित ने नागरी भाषा का उपकार करते हुए विज्ञान प्रचारिणी सभा की स्थापना की। विज्ञान और गणित की पुस्तकों का अनुवाद उन्होंने हिन्दी में किया। बालमुकुंद

---

1 (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं सस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुड़गांव, 2013, पृ. 18

2 शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञान भारती प्रकाशन, रूपनगर, दिल्ली, 1993, पृ.9 (भूमिका से)

गुप्त भी उर्दू के अच्छे लेखक और पत्रकार रहे। परन्तु देश सेवा करने का माध्यम उन्होंने हिन्दी को ही चुना।

हिन्दी गद्य के विकास में गुप्त जी का महत्वपूर्ण योगदान यह रहा कि उन्होंने ऐसी भाषा का आविष्कार किया जो उर्दू की ख्याति लिए हो, अन्य भाषाओं के शब्द भी अपनाएं हो, सरलता और सरसता से परिपूर्ण हो और कृत्रिमता से मुक्त हो। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है, ''गुप्त जी की भाषा बहुत चलती, सजीव और विनोदपूर्ण होती थी। किसी प्रकार का विषय हो, गुप्त जी की लेखनी उस पर विनोद का रंग चढा देती थी। वे पहले उर्दू के अच्छे लेखक थे, इससे उनकी भाषा बहुत चलती और फड़कती हुई होती थी। वे अपने विचारों को विनोदपूर्ण वर्णनों के भीतर ऐसा लपेटकर रखते थे कि उनका आभास बीच-बीच में ही मिलता था।''[1]

गुप्त जी उर्दू के लेखक-पत्रकार थे उनकी भाषा पर उर्दू का प्रभाव होना स्वाभाविक था। उनकी भाषा बोलचाल की भाषा है प्रसंगानुसार वे अपनी भाषा का रूप बदलते थे।

बालमुकुंद गुप्त भिन्न-भिन्न शैलियों में लिख सकते थे। हिन्दी भाषा में ये लिखते हैं, ''जान पड़ता है कि मुसलमानों के इस देश में पांव रखने के समय यहाँ चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। विद्या का सूर्य अस्त हो चुका था।''[2] वहीं अन्य उदाहरण में वह कहते हैं, ''मैं वहीं हूँ जिसने असबाबे बगावत लिखकर विलायत तक में खलबली डाल दी थी। इन सूबों में मैं ही पहला शख्स हूँ, जिसने अंग्रेजों को आम रियाया की राय का खयाल दिलाया।''[3] गुप्त जी ने भारतेन्दु युग में भाषागत प्रयोगों को आगे बढ़ाने का कार्य किया। भारतेंदु युगीन प्रत्येक रचनाकार की भाषा में उनका क्षेत्रीय प्रभाव झलकता था। गुप्तजी ने अपनी भाषा को पूर्णयता नहीं तो, बहुत हद

---

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015 पृ. 415

2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलितः निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ. 176

3 वहीं पृ. 57

तक क्षेत्रीयता के प्रभाव से मुक्त रखा था। आगे चलकर इस भाषा का स्वरूप हम प्रेमचन्द की शैली में पाते हैं।

हिन्दी में आने से पूर्व वह उर्दू के श्रेष्ठ लेखकों में स्थान पा चुके थे। वह भाषा के सहज, स्वाभाविक तथा बोलचाल वाले रूप के पक्षधर थे। उर्दू भाषा में भी उन्होंने यही स्वरूप अपनाया था। हिन्दी भाषा में उर्दू-फारसी के तत्सम रूपों की अपेक्षा बोलचाल के शब्दरूपों को ग्रहण करने के पक्ष में थे। हिन्दी गद्यलेखन में भी उन्होंने यहीं नीति उन्होंने अपनाई।

डॉ. नत्थन सिंह का कहना है, ''हिन्दी गद्य लेखन में भी उनकी नीति रही, उनकी सहज एवं सरल शैली की विशेषता है - छोटे-छोटे भावपूर्ण वाक्य, जिनकी रचना हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के व्यवहार प्राप्त शब्दों से होती है। प्रचलित और सहज मुहावरों का प्रयोग इस शैली का दूसरा गुण है ये ही दोनों तत्व उनकी शैली को स्पष्ट स्वच्छ तथा प्रभावपूर्ण बनाते हैं।''[1]

गुप्त जी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के प्रचलित शब्द सहज भाव से प्रयुक्त करके गद्य की भाषा को ऐसा प्रभावशाली स्वरूप प्रदान किया है कि एक-एक शब्द में जान आ गई है। चलते शब्दों, चुटीली भाषा, मुहावरों का प्रयोग करके भाषा को प्रभावशाली एवं जिन्दादिली से युक्त बनाया। यही जिन्दादिली भारतेन्दु युग की विशेषता रही हैं। भारतेदु कालीन लेखकों के गद्य में जीवंतता पाई जाती है परन्तु कुछ कमियां भी रही है। उन्हीं की तरफ इशारा करते हुए वीरभारत तलवार ने लिखा है, ''भारतेदु युग के लेखकों के हसॅमुख गद्य की तारीफ की जाती है जो वाजिब है। उस गद्य की जिदांदिली, उमंग और स्वच्छंदता को उचित ही सराहा जाता है। लेकिन यह उस गद्य का सिर्फ एक पक्ष था। उसके दूसरे पक्ष की हमेशा अनदेखी की गई। उन लेखकों ने न सिर्फ कई प्रचलित अरबी-फॉरसी शब्दों को हटाकर उनकी जगह संस्कृत शब्दावली का इस्तेमाल किया, बल्कि कई आसान हिंदी शब्दों को भी हटाकर, कठिन और अप्रचलित

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली हरियाणा, साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ. 285

संस्कृत के शब्द ठूंसे।''[1] उस युग के साहित्य पर जन-जीवन का रंग है। व्याकरण की दृष्टि से उनके गद्य में खामियां मिल सकती हैं। परन्तु यह सत्य है कि उन्होंने साहित्य को जन-जन तक पहुँचाया है। गुप्त जी जैसे बहुत से लेखकों ने व्याकरिणक अशुद्धियां दूर करने का प्रयास किया है। गुप्त जी करी भाषा इसका अपवाद रही है।

उनके गद्य की ताजगी, उसका जन-जीवन से जुड़ाव, मुहावरेदार भाषा, चुटीला व्यंग्य कुछ ऐसी विशेषता है जो भाषा को आज भी प्रभावशाली बनाती है। इनकी भाषा में फारसी के प्रचलित शब्दों का बहिष्कार नहीं है, न ही संस्कृत के शब्दों की भरमार हैं और न अंग्रेजी शब्दों का विरोध है। यद्यपि इन्होंने हिन्दी भाषा के संस्कृत निष्ठ होने अथवा उर्दू के अरबी-फारसी स्वरूप का विरोध किया है परन्तु भारतेन्दु, बालमुकुंद गुप्त तथा प्रेमचन्द जैसे लेखकों ने उर्दू से बहुत कुछ सीखा है। डॉ. राम विलास शर्मा का कहना है ''भारतेंदु युग आधुनिक हिन्दी गद्य के निर्माण युग था। उसका महत्त्व भाषा को व्यवस्थित करने में उतना नहीं है जितना उसे बोलचाल के नजदीक रखते हुए साहित्यिक रूप देने में। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के पूरबीपन पर हजारों शुद्ध हिन्दी लिखने वालों का टकसालीपन निछावर है। भारतेन्दु युग के महान् लेखकों का गद्य अवध और ब्रज की धरती के बहुत ही नजदीक है। धूल भरे हीरे की तरह वह गद्य स्थानीयता के भीतर दमकता है।''[2]

इस युग में जो भी साहित्य लिखा गया उसकी मुख्य विशेषता यह थी कि हिन्दी साहित्य को सामन्ती प्रथा से मुक्त करके राष्ट्रीय स्वाधीनता, जातीय एकता और जनता की सेवा के रास्ते पर ले जाने की कोशिश की गई। गुप्तजी के शिवशंभु के चिट्ठे इस दिशा में किया गया एक प्रयास है। इनके द्वारा लिखे गए हिन्दी भाषा और लिपि के संबंध में लिखे गए निबंध, हिन्दी-उर्दू का झगड़ा मिटाने के लेकर लिखे गए लेख भारत

---

1 वीरभारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृ.109

2 डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.146

सचिव, वायसराय, अंग्रेज अधिकारियों पर किए गए व्यंग्य इसी दिशा में जाने का रास्ता है। दूसरी तरफ उन्होंने हिन्दी गद्य को एक नई दिशा दी। एक नई भाषा शैली को अपनाया जो क्षेत्रीय और संस्कृत निष्ठ हिन्दी दोनों के प्रभाव से मुक्त थी। भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए उसमें चुटीली कहावतों, मुहावरों, छोटे-छोटे वाक्यों का गठन किया। भाषा को व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध करने के लिए महावीर प्रसाद द्विवेदी से विवाद किया। 'शेष' शब्द पर गंभीर बहस चली। हिन्दी समाचार पत्रों की भाषा पर भी वह टोका-टोकी करते रहते थे, ताकि हिन्दी को शुद्ध रूप में लिखा जा सके। जहाँ गलत लगा वहां तुरन्त इशारा किया चाहे सामने वाला कितना ही बड़ा विद्वान क्यों न हो। हिन्दी भाषा को व्यवस्थित सरल और लोकप्रिय रूप देना ही उनके उद्देश्यों में से एक था। व्यंग्य विद्या उस युग की प्रमुख विद्याओं में से एक थी। व्यंग्य के साथ हास्य का मिश्रण उस युग के रचनाकारों की रचनाओं में पाया जाता है।

तत्कालीन निबंधकारों ने उस समय के कटु सत्य को कहने के लिए हास्य एवं व्यंग्य का सहारा लिया। सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को देखकर ही व्यंग्य का सहारा लिया गया। हास-परिहास शैली में व्यंग्य कहने का प्रवर्तन भारतेन्दु ने किया। डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है, ''बालमुकुन्द गुप्त ने भारतेन्दु के लिए लिखा था कि वे तेज, तीखे और बेधड़क लिखते थे। ये गुण गुप्तजी के हिस्से में खास तौर से थे, इसलिए भारतेन्दु का तेज और तीखा गद्य उनको विशेष प्रिय था।''[1] आगे चलकर इन निबंधकारों ने इसी शैली को अपनाया। पं. बालकृष्ण भट्ट का व्यंग्य अत्यंत शिष्ट एवं संयत था। पं. बालकृष्ण भट्ट की रचनाओं में चुलबुला पन पाया जाता है। गुप्त जी का व्यंग्य एक विशिष्ट शैली लिए होता था। इनकी रचनाओं में व्यंग्य की प्रधानता है। हास्य एवं व्यंग्य का मिश्रण उनके निबंधों के अतिरिक्त उनकी कविताओं, आलोचनाओं में भी पाया जाता हैं। डॉ. राजेन्द्र सिंह का कहना है, व्यंग्य के क्षेत्र में बालमुकुंद गुप्त

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्द्र हरिशचन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.161

अपना सानी नहीं रखते। उनके व्यंग्य अत्यंत सशक्त और बेधने वाले हैं। उन्होंने अंग्रेज अधिकारियों द्वारा सम्पादित भारत विरोधीकार्यों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण और उन पर करारे व्यंग्य किये।... किसी भी विषय पर उन्होंने लिखा उनका ध्यान सदैव समाज और राष्ट्र की समस्याओं की ओर रहा।''[1]

गुप्त जी के समय में साहित्यिक चर्चा-परिचर्चा ने आन्दोलन का रूप धारण कर लिया था। गुप्त जी के निबंधों में ये समस्त स्थितियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। भारतेन्दु युग के निबंधों में भाषा के स्वरूप निर्माण के प्रति आग्रह नहीं मिलता। यह चेष्टा, द्विवेदी युग में दृष्टिगोचर होती है। गुप्त जी का समय दोनों का संधिकाल माना जाता है, इसीलिए उनके साहित्य में दोनों की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं।

डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है, ''बालमुकुन्द गुप्त का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह हास्य रस से क्षण में ही दूर हटकर शैली को गम्भीर बना सकते है। उनकी गम्भीर शैली में एक प्रकार की कविता है, जिससे गद्य भी कविता की भांति सरस हो उठता हैः विचार आया कि काल अनन्त है, जो बात इस समय है वह सदा न रहेगी।.....

यमुना उत्ताल तंरगों में बह रही थी। ऐसे समय में एक दृढ़ पुरुष एक सद्यजात शिशु को गोद, में लिए मथुरा के कारागार से बाहर निकल रहा था। यह बिलकुल आधुनिक गद्य है। बालमुकुन्द गुप्त स्वर्गीय महावीर प्रसाद द्विवेदी के समसामयिक तो थे ही परन्तु उनकी निबन्ध रचना की शैली भारतेन्दु-युग की है। भाषा में परिष्कार हो चुका है। वाक्य विन्यास एकदम सधा हुआ है, गति और यति का वैसे ही ध्यान रखा गया है जैसे मुक्त छन्द में। सन् 1920 के आन्दोलन से कारागार कृष्ण मन्दिर अवश्य बन गया, परन्तु बालमुकुदं गुप्त ने बहुत पहले लिखा था, वह कारागार भारत सन्तान

---

1 डॉ. राजेन्द्र सिंह बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का निबंध साहित्य, कवि सभा दिल्ली, शाहदरा, दिल्ली, 1996, पृ. 222

के लिए तीर्थ हुआ। वहॉ की धूल मस्तक पर चढ़ाने योग्य हुई।''[1] भारतेन्दु युग के लेखकों में भाषा की सजीवता और प्रवाहता को लेकर ध्यान दिया जाता रहा परन्तु भाषा शुद्धता के प्रति आग्रहशील द्विवेदी युग के रचनाकार हुए। परतु गुप्तजी की भाषा में दोनों युग की प्रवृतियां पाई जाती है।

''द्विवेदी युग में भाषा के स्वरूप विन्यास हेतु किये गये प्रयत्नों में बालमुकुंद गुप्त का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है।...लेखन में व्याकरण के सिद्वान्तों की अवहेलना इस युग के निबंधकार कर जाते थे, परन्तु बालमुकुंद गुप्त भाषा के शुद्ध और परिमार्जित स्वरूप के प्रति सदैव आग्रहशील रहे। खड़ी बोली के स्वरूप निर्माण का श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी को ही दिया जाता है, परन्तु इस संदर्भ में बालमुकुंद गुप्त के योगदान को हम नगण्य नहीं कह सकते। बालमुकुंद गुप्त ने भाषा में शब्द चयन के प्रति विशेषरूप से आग्रह व्यक्त किया।''[2]

हिन्दी बंगवासी का कार्यभार संभालते ही उन्होंने हिन्दी गद्य शैली के स्वरूप की तरफ ध्यान देना आरंभ कर दिया था। गुप्त जी के परम मित्र और हिन्दी बंगवासी के प्रधान संपादक 'अमृतलाल चक्रवर्ती' ने गुप्तजी की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' की भूमिका में हिन्दी गद्य में गुप्त जी के योगदान की चर्चा की है। गुप्तजी अपनी असामयिक मृत्यु के कारण हिन्दी भाषा पुस्तक पूरी न कर सके। उनकी मृत्यु के पश्चात यह पुस्तक छपी तो उसकी भूमिका में श्री अमृतलाल चक्रवर्ती ने लिखा -

''हिन्दी बंगवासी में पूर्व भाषा की काया पलट हो गई थी। उस समय के व्यक्तियों को भाषा के प्रतिनिधि इसलिए मानना पड़ता है कि तब तक हिन्दी के आधुनिक साहित्य का सांचा प्रायः उन दिनों के लेखकों के मस्तिष्क में ही था।

---

1 डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975, पृ.86

2 सं. कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्याकंन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता 1965, पृ. 133-134

हिन्दी बंगवासी में भाषा निर्णय के लिए हमारी लड़ाई ऐसी गहरी होती थी कि किसी किसी दिन सारी रात बीत जाती थी। किस प्रान्त के किस शब्द को कहाँ जोड़ने से भाषा का समुचित लालित्य होगा, इस पर बड़ी जोरदार बहस होती थी। पं. बदरीनारायण चौधरी 'हिन्दी बंगवासी' को भाषा गढ़ने की टकसाल बतलाते थे। उस टकसाल का कोई सिक्का बाबू बालमुकुंद की छाप के बिना नहीं निकलता था।''[1]

बाबू बालमुकुंद गुप्त अमृतलाल चक्रवर्ती और प्रभुदयाल पाण्डेय ने मिलकर हिन्दी बंगवासी में कार्य किया था। अमृतलाल चक्रवर्ती ने आगे इसी संस्करण में लिखा है ''तीनों के नव यौवन का प्रायः सारा आवेग हिन्दी भाषा को सुघड़ बनाने में ही खर्च होता था। किसी किसी दिन एक ही शब्द के पीछे दो-तीन बजे रात तक तीनों में कठिन लड़ाई होती थी।''[2] गुप्त जी ने हिन्दी के स्वरूप को सरल, सहज और सुघड़ बनाने के लिए दिन-रात प्रयास किया। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने की उनकी तमन्ना थी। वे भाषा का संबंध किसी धर्म से नहीं मानते थे। डॉ.के.सी. यादव का गुप्त जी के बारे में कहना है- ''हिन्दी, संस्कृत के शुद्ध, कठिन आदि शब्दों की बजाय आम आदमियों द्वारा बनाए उनके स्थानीय रूपों को वरीयता दी। साथ ही उसमें अन्य भाषाओं तथा बोलियों के उचित शब्दों को भी अपनाया और अपनाने की सलाह दी। ऐसा करने से उनका मानना था, हिन्दी गैर हिन्दी लोगों के लिए भी सहज होगी दूसरे, उन्होंने यह बात भी स्पष्ट कर दी कि हिन्दी के उद्‌गम तथा विकास में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई हर धर्म के लोगों का योगदान रहा है। और इसलिए यह राष्ट्रभाषा बनने की अधिकारी होगी।''[3]

---

1 (सं.) के.सी. यादव, हिन्दी भाषा, गुप्त ग्रंथमाला-1, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा, काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ. 10 (प्रस्तावना से)

2 (सं.) के.सी. यादव, हिन्दी भाषा, गुप्त ग्रंथमाला-1, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा, काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ. 42

3 के.सी. यादव, हिन्दी भाषा, गुप्त ग्रंथमाला-1, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा, काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ. 13 (प्रस्तावना से)

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गुप्त जी ने हिन्दी गद्य का रूप तैयार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुप्त जी की रचनाएँ दो युगों का प्रतिनिधित्व करती है। डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव का कहना है, ''साहित्य सर्जना के सन्दर्भ में शिल्प विधि के विधान के अनेक प्रयत्न इस युग में हो रहे थे। गद्य (और पद्य) में खड़ी बोली हिन्दी स्वीकृत हो चुकी थी, परन्तु उसमें सबल तथा प्रौढ़ अभि व्यंजना शक्ति की अवतारण न हो सकी थी। उसमें प्रवाह गत और साधारणीकरण की क्षमता न आ सकी थी। इन दृष्टियों से जिन निबन्धकारों ने हिन्दी गद्य को एक सुनिश्चित रूप योजना दी, उनमें बालमुकुंद गुप्त का स्थान सर्वोपरि है।''[1]

गुप्त जी की रचनाओं का प्राणतत्व भारतेन्दु युगीन है तो शरीर द्विवेदी युगीन इन्होंने सभी प्रकार के निबंध लिखे जिसमें इन्होंने अपने युग की झांकी प्रस्तुत की है। नवजागरण की उत्कर्ष में बालमुकुदं ने भी अपना योगदान दिया और इसे एक नयी गति प्रदान किया। इस समय गद्य और पद्य में भी नई जागृति आ रही थी। ब्रज भाषा अपने पुराने रूप को छोड़कर हिन्दी के नए रूप में ढल रही थी। गुप्त जी ने भाषा में अभिनव प्रयोगों के माध्यम से हिंदी गद्य एवं पद्य का मार्ग प्रशस्त किया।

4.5 हिन्दी का आलोचनात्मक विवेक

''आलोचना की रीति अभी हिन्दी में भली-भाँति जारी नहीं हुई है और न लोग उसकी आवश्यकता ही को ठीक-ठाक समझे हैं। इससे बहुत से लोग आलोचना देखकर घबरा जाते हैं और बहुतों को वह बहुत ही अप्रिय लगती है। यहाँ तक कि जो लोग स्वयं इस मैदान में कदम बढ़ाते हैं, अपनी आलोचना होते देखकर वहीं तुर्शरू हो जाते हैं। इससे हिन्दी आलोचना करना भिड़ के छत्ते को छेड़ लेना है। छेड़ने वाले को चाहिये कि बहुत सी भिड़ों के डंक सहने के लिए प्रस्तुत रहे।''[2]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शत वार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965 पृ. 138

2 (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005, पृ. 70

ये पंक्तियां बाबू बालमुकुंद गुप्त ने 'व्याकरण विचार' नामक लेख में 'भारतमित्र' (1906) के अंक में लिखी थी। हिन्दी आलोचना की उस समय की परिस्थितियाँ इस लेख से स्पष्ट हो जाती हैं। इसी प्रवृत्ति के कारण व्यक्तिगत गुण-दोष निकालने की प्रवृत्ति भी बढ़ी। भारतेन्दु युग में आलोचना मुख्यतः पं. बालकृष्ण भट्ट तथा पं. बदरीनाथ चौधरी तक ही सीमित मानी जाती थी। भाषा संबंधी न्यूनताएँ अशुद्धियाँ एवं अनुवाद संबंधी त्रुटियाँ आदि ही आलोचकों द्वारा मुख्यतः विवेच्य मानी जाती थीं। गुप्तजी मूलतः पत्रकार और निबंधकार थे, किन्तु आलोचना के क्षेत्र में भी वे अपने युग के मुख्य आलोचकों में से एक थे। उनकी पहली आलोचना 'श्रीधर पाठक' की 'उजड़ग्राम' की है, जो उर्दू साप्ताहिक 'कोहेनूर' में 1888 में प्रकाशित हुई थी। इस आलोचना में जहाँ उन्होंने श्रीधर पाठक की प्रतिभा की प्रशंसा की, वहीं उर्दू भाषा के सामने हिन्दी भाषा की शक्ति का परिचय दिया। जिस युग में आलोचना की शक्ति स्वस्थ और वैज्ञानिक न्यायपूर्ण नहीं थी, वहाँ गुप्तजी श्रीधर पाठक जैसे नवीन लेखकों को प्रोत्साहित कर रहे थे, दूसरी तरफ प्रतिक्रियावादी शक्तियों को मुहँ तोड़ जवाब दे रहे थे। पटना निवासी सुशील जी ने उजड़ गाँव, साधु तथा यात्री नामक रचनाएँ सन् 1899 में गुप्त जी के पास आलोचना के भेजी थी। गुप्त जी ने देखा कि ये कृतियाँ श्रीधर पाठक की कृतियों की नकल मात्र थी। तो उन्होंने कविता पर कविता' शीर्षक निबंध लिखा। इसमें उन्होंने लिखा- ''हमने देखा कि सुशील जी की दोनों पुस्तकें पाठक जी की पुस्तकों की सही नकल के सिवाय और कुछ नहीं है। नकल क्या एक बात की है? रंग में, ढंग में, छन्द में सब में नकल ही नकल मौजूद हैं। यदि न्याय से देखा जाए तो सुशील जी ने अच्छे कवियों के करने योग्य काम नहीं किया।...हम चाहते हैं कि हमारे देश के सुलेखक और कवि दूसरे देश के सुलेखक और कवि के जूठे पर गिरने की आदत छोड़े।''[1]

---

1 (सं.) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. 155

गुप्त जी ने आलोचना में सदैव सदभावना और उच्च विचारों को ही साहित्य का मापदण्ड माना है। जिन कृतिकारों की रचनाओं में इन तत्वों की अवहेलना या उपेक्षा पाई उन्हें वे अपना समर्थन नहीं दे पाए। रचना से अधिक रचनाकार के मानसिक संकल्प को अधिक महत्वपूर्ण समझते थे। साहित्यिक कृतियों में परम्परा संस्कार और आदर्श को संरक्षण देते थे। इसी के कारण उन्होंने किशोरीलाल गोस्वामी के 'तारा' और बंगला के अनूदित उपन्यास 'अश्रुमती' की आलोचना की। 'अश्रुमती' की आलोचना में गुप्त जी आवेश वश कहीं-कहीं अधिक भावुक हो गए है। इस कृति में महाराणा प्रताप की कल्पित पुत्री अश्रुमती और अकबर के पुत्र सलीम की प्रणयकथा की कल्पना की गई है। गुप्त जी ने इस पुस्तक को पाप भरी पुस्तक कहा है। परन्तु सिर्फ भावुकता वश ही नहीं, उन्होंने तर्क, इतिहास और संस्कृति के सन्दर्भ में कृति की सार्थकता का परीक्षण किया। गुप्त जी कहते हैं- ''हम बंगदेश के पढ़े-लिखे लोगों से पूछते हैं कि इस पुस्तक को पढ़कर बंगदेश की लड़कियों को क्या शिक्षा मिलेगी? और आप सब बंगाली लोग न्याय से कहें कि आप ही को उससे क्या उपदेश मिला?''[1]

गुप्त जी की आलोचना से प्रभावित होकर अनुवादक मुंशी उदित नारायण जी ने अनुवाद की समस्त प्रतियों गंगाजी में फेंक दी थी। 1901 में गुप्तजी ने भारतमित्र में मूल बंगला नाटक (अश्रुमती) की उग्र आलोचना की। गुप्त जी की आलोचना से प्रभावित होकर मूल नाटक बंगला के लेखक श्री ज्योतिरिन्द्र ठाकुर (रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बडे भाई) अपनी भूल स्वीकारी। ''गुप्तजी ने 5 अक्टूबर 1901 के भारतमित्र में अश्रुमती कर्त्ता का प्रतिवाद तथा आनन्द समाचार नाम से उक्त दोनों पत्र छाप दिये और ठाकुर महाशय को अपनी भूल स्वीकार करने के लिए धन्यवाद भी दिया।''[2]

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ.143

2 (सं.) कल्याण मल लोढ़ा, विष्णुकान्त शास्त्री, बालमुकुंद गुप्त, एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ. 95

श्री किशोरी लाल गोस्वामी के 'तारा' उपन्यास का विरोध भी उन्होंने उसकी मर्यादा हीनता के कारण किया था। इस उपन्यास में अर्जुन की कामना अपनी भांजी का विवाह एक मुसलमान के साथ करने की है, और दारा-जहाँ नारा के भाई-बहन होने के बावजूद भी कामुकता पूर्वक वार्तालाप दिखाया गया है। इसी अमर्यादापूर्वक आचरण के कारण गुप्तजी ने इसकी भर्त्सना की है। ''हम नागरी प्रचारिणी सभा को सावधान करते हैं कि यदि सचमुच वह हिन्दी की उन्नति चाहती है, तो सबसे पहले तारा पढ़े और गोस्वामी जी महाराज को उनकी पुस्तक के गुण-दोष समझावे कि कैसा गन्दा और भयानक काम कर रहे हैं।''[1]

गुप्त जी ने सदैव हिन्दी के शुद्ध और सरल रूप अपनाने पर जोर दिया। उन्होंने न तो भाषा के संस्कृत निष्ठ रूप पर जोर दिया और न ही देहाती रूप पर। इसी के चलते उन्होंने हरिऔध कृत 'अधखिला फूल' की गद्य शैली की आलोचना की। परन्तु उन्होंने इसकी कहानी की प्रशंसा भी की और कुछ शब्दों के अतिरिक्त भाषा की प्रशंसा की। भाषा की सरलता के लिए उसे कृत्रिम रूप से न लादा जाए। इसीलिए उन्होंने 'अधखिला' फूल की भाषा की आलोचना की। ''हम ठेठ हिन्दी के तरफदार नहीं ठेठ हिन्दी का हमारी समझ में कुछ अर्थ भी नहीं।...

हमारे लिए इस समय वहीं हिन्दी अधिक उपकारी है, जिसे हिन्दी बोलने वाले तो समझ ही सकें उनके सिवाय उन प्रान्तों के लोग भी उसे कुछ न कुछ समझ सकें जिनमें वह नहीं बोली जाती।''[2]

अधखिला फूल की आलोचना में गुप्त जी कहीं-कहीं ज्यादा आक्रामक हो बैठे हैं, जैसे उपाध्याय जी ने आकास (आकाश), पच्छिम (पश्चिम), मिट्टी आदि देहाती शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु गुप्त जी के अनुसार अकास, अंधियारा, मिट्टी या

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ. 157-158
2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ. 159-162

माटी आदि शब्द ठेठ भाषा के हैं क्योंकि ये ब्रज भाषा में हैं। परन्तु जिन शब्दों का उपाध्याय जी ने प्रयोग किया है वे शायद उनके क्षेत्र के हों।

गुप्त जी ने 'पंखा हांकना' और 'घर की छतों पर ठण्डा होना' गलत माना है, जबकि क्षेत्रीय बोली में यह गलत नहीं है। गुप्त जी ने 'हांकना' का अर्थ 'जानवरों का हाँकना' लिया है, जो हरियाणा में प्रयुक्त होता है। गुप्त जी के अनुसार 'ठण्डा हो जाना' 'आदमी का मरना' है, परन्तु उपाध्याय जी ने ठण्डा हो जाने का अर्थ 'शीतल हो जाना' लिया है।

परन्तु गुप्त जी की आलोचनाओं की इन कमियों की वजह से उनकी आलोचनाओं की विश्वसनीयता में कमी नहीं आती। वे एक सच्चे और खरे आलोचक थे। दूसरों की आलोचना करते थे, तो स्वयं की भी आलोचना सुनने का साहस भी उनमें था। एक बार महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उनकी 'खिलौना' पुस्तक की आलोचना की, बिना यह जाने कि यह पुस्तक गुप्त जी की लिखी हुई है परन्तु जानने पर उन्होंने क्षमा मांगी। गुप्त जी ने इसका जवाब देते हुए कहा :-

''पोथी मित्र की हो या शत्रु की अपने की हो या बेगाने की, आलोचना उसकी न्याय से होनी चाहिए। यह तो कोई बात नहीं कि मित्र की हो तो उसकी प्रशंसा की जाए और शत्रु की हो तो निन्दा इतनी अनुदारता लेकर साहित्य के मैदान में कभी आगे न बढ़ना चाहिए।''[1]

यह गुप्त जी का आलोचना संबंधी सिद्धान्त था, जिसका उन्होंने सभी आलोचनाओं में पालन किया। गुप्त जी बड़े ही स्पष्ट वक्ता थे। प्रशंसा के स्थान पर प्रशंसा और असहमति के स्थान पर असहमति व्यक्त करते थे। गुप्त जी की दृष्टि में आलोचना की सफलता के लिए उसका विकसित स्वरूप होना आवश्यक है। एक आलोचक का तटस्थ होना अति आवश्यक है। तुलसी सुधाकर की आलोचना में उन्होंने

---

1 (सं.) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-8, खिलौना, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, हरियाणा, 2012, पृ.11 (सम्पादकीय से)

सुधाकर द्विवेदी की प्रशंसा और कमियाँ दोनों ही बताई हैं। तुलसी सुधाकर की जो बात उन्हें सबसे ज्यादा खटकी थी, वह थी उसकी क्लिष्टता। सुधाकर जी ने 'तुलसी सतसई' का अनुवाद किया था। परन्तु वे उसे सरल नहीं बना पाए। इसी पर गुप्त जी ने कहा है :- ''तुलसी ने जहाँ कोई बड़ा कूट दोहा लिखा है, सुधाकर जी महाराज ने वहां महाकूट कुण्डलिया बनाई हैं कहीं-कहीं तुलसी का दोहा सरल है, वहां भी सुधाकर जी टेढे चले हैं।''[1] परन्तु सिर्फ दोष दिखाना ही आलोचक का काम नहीं होता दोष के साथ गुण दिखाने में आलोचक को कंजूसी नहीं बरतनी चाहिए। इसीलिए गुप्त जी ने द्विवेदी जी प्रशंसा करते हुए कहा है :- ''इसमें कुछ सन्देह नहीं कि द्विवेदी जी महाराज को इस रचना में बड़ा भारी परिश्रम और बड़ा भारी कष्ट हुआ होगा। उन्हें महीनों नहीं तुलसी के दोहों का अर्थ लगाते वर्ष बीत गए होंगे। उस पर अपनी रचना करने में कुछ कम दिन नहीं लगे होंगे।''[2]

गुप्त जी की आलोचना का मुख्य बिंदु यह भी है कि उन्होंने साहित्य की चोरी करने वालों को फटकारा था। पटना के सुशील कवि ने जब श्रीधर पाठक की अनुवादित कृति की नकल की तो गुप्तजी ने उन्हें कड़ी फटकार लगाई। परन्तु जब 'प्रवासी' नामक बंग भाषा के पत्र ने नकल करने पर हिन्दी पत्रों का मजाक उड़ाया तो गुप्त जी के स्वामिभमान पर चोट पहुँची, तो उन्होंने 'प्रवासी की आलोचना' और 'बंगला साहित्य' नामक लेख लिखकर बंगाली लेखकों की असलियत सामने लाई। उन्होंने प्रमाण देकर सिद्ध किया कि बंगला के बंकिम बाबू, दिनेन्द्र कुमार राय, उपेन्द्रनाथ मुखर्जी, प्रियनाथ मुखर्जी जैसे लेखक अंग्रेजी पुस्तकों की नकल करते हैं गुप्त जी लिखते हैं :- ''प्रवासी ने शायद ध्यान न दिया हो, पर हमने बंगाल में रहने से कुछ-कुछ दिया है? बंगालियों के लिखे बहुत से नाटक उपन्यास, मासिक पत्रों के लेख और कविताएं अंग्रेजी और फ्रेंच भाषाओं के तरजुमें खाके और चोरी हैं।

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ.149
2 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2014, पृ.150

सहयोगी 'प्रवासी' जरा सा इधर ध्यान देगा तो 'बूढ़े मुँह मुँहासे' की सी दरजनों पोथियां ढंग भाषा में पावेगा। अवश्य बंगभाषा ने उन्नति की हैं। पर पराई रकाबी के उच्छिष्ट बिस्कुट ही उसके पेट में अधिक है और भरते जाते हैं। अभी बंगालियों की अपने मगज से निकली हुई बातों का कम संग्रह है। जो बंगभाषा के धुरन्धर लेखक हैं उन्हीं की पूँजी में अधिक पराया माल है।''[1]

गुप्त जी ने सिर्फ आलोचना ही नहीं कि अपितु नवीन लेखकों को प्रोत्साहित भी किया। स्वयं नवीन प्रयोग किए और दूसरे को करने के लिए प्रेरित किया। सन् 1901 में भारतमित्र के 'तेईसवां वर्ष' शीर्षक अपने लेख में गत वर्षों के हिन्दी पद्य की चर्चा की और हिन्दी कवियों को अपना ध्यान श्रृंगार रस से हटा कर अन्य किसी दिशा में आकर्षित करने को प्रेरित किया। इसी क्रम में उन्होंने 'श्रीधर पाठक' और 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' की प्रशंसा की है। गुप्त जी ने कहा है- ''हिन्दी पद्य की कुछ चर्चा भारतमित्र में गत वर्ष (सन् 1900 ई0) में हुई। उससे कम से कम इतना हुआ कि हिन्दी के कवि अपने लिए एक पथ निकाल सकते हैं। परन्तु अपने जी में इतना समझ रखें कि प्यारी कि विरह-व्यथा-वर्णन और नायिका भेद बताने का समय अब नहीं है। पिछले कवि उक्त विषय में जो कुछ कर गये हैं, वह कम नहीं है। इस समय के कवि उनकी नकल करके नाम नहीं पा सकते। अब दूसरा मार्ग तलाश करना चाहिए। हम पं. श्रीधर पाठक तथा पं. महावीर प्रसाद जी द्विवेदी का हृदय से धन्यवाद करते हैं। हिन्दी पद्य को पथ पर ले जाना आप जैसे लोगों ही का काम है।''[2]

गुप्त जी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविताएँ हिन्दोस्थान, हिन्दी बंगवासी और भारतमित्र में निरन्तर प्रकाशित करते रहे, परन्तु उनकी भाषा की क्लिष्टता का उन्होंने सदैव विरोध किया।

श्री विष्णुकान्त शास्त्री ने 'बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन' पुस्तक में गुप्त जी की आलोचनाओं को तीन भागों में बाटा है। 1. परिचयात्मक आलोचना, 2. विषयवस्तु

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्त, संकलित निबंध राष्ट्रीय, पुस्तक न्यास, 2014, पृ.152

2 उद्धृत (सं.) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रन्थ, गुप्त स्मारक ग्रन्थ प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1950, पृ. 120

संबंधी आलोचना, 3. भाषा संबंधी आलोचना। प्रथम तरह की आलोचनाओं में पुस्तक का संक्षिप्त परिचय, अपना मत और ग्रन्थकार के लिए सुझाव हुआ करता था।

भारतमित्र में सामयिक स्तंभ के नाम से स्तंभ प्रकाशित होता था, जिसमें पुस्तकों रचनाओं आदि की आलोचनाएँ प्रकाशित होती थीं। उजड़ ग्राम, तुलसी सुधाकर अधखिला फूल, गुलशने हिन्द आदि की आलोचनाएँ इसी वर्ग के अन्दर आती हैं दूसरे वर्ग की आलोचनाओं में अश्रुमती, तारा, तेईसवें वर्ष आदि आती है। तीसरे वर्ग की आलोचनाओं में महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ हुआ भाषा विवाद 'भाषा की अनस्थिरता (1-10), व्याकरण विचार, हिन्दी में आलोचना, आत्मासमीय टिप्पणी, शेष शब्द का विवाद आदि आते हैं।

गुप्त जी ने साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण सिद्धान्त नहीं प्रस्तुत किया, परन्तु भाषा संबंधी वाद-विवादों में उनका स्थाई महत्त्व आज भी उतना है जितना कि उस समय था। हिन्दी भाषा की आलोचना में जितना उन्होंने कार्य किया वह तत्कालीन परिस्थितियों और आलोचना के मार्ग को प्रशस्त करने में बहुत ही उल्लेखनीय है। हिन्दी आलोचना का विकास ऐसे ही विवेक ग्राही विद्वानों की लेखनी का प्रतिफलन है जो आगे चलकर आचार्य शुक्ल के यहाँ विकास समान होता हुआ दिखायी पड़ता है। हिन्दी समीक्षा और आलोचना का मार्ग इन्हीं साहित्यकारों के साहस से संभव हुआ।

पंचम अध्यायः
बालमुकुंद गुप्त की कविताई एवं अन्य लेखन

5.1 बालमुकुंद गुप्त का काव्य

5.2 चरित चर्चा एवं इतिहास दृष्टि

5.3 संपादित/अनूदित रचनाएँ

पंचम अध्याय :
बालमुकुंद गुप्त की कविताई एवं अन्य लेखन

5.1 बालमुकुंद गुप्त का काव्यः

रुप विधानः-

गुप्त जी ने कुछ कविताएँ ब्रजभाषा में, कुछ खड़ी बोली हिंदी में और कुछ मिश्रित भाषा के पद्यों में लिखी हैं। सन् 1884 ई. से लेकर सन् 1889 ई. तक गुप्त जी की जो भी कविताएँ हैं, वह उर्दू और फारसी में है। उस समय तक गुप्त जी हिंदी नहीं जानते थे। इन कविताओं की संख्या हिंदी कविताओं से अधिक है। हिंदी कविताओं का आरंभ सन् 1889 ई0 के अन्त से हुआ है। पहली कविता 'भैंस का स्वर्ग', दूसरी 'वसन्तोत्सव', तीसरी 'सर सैयद का बुढ़ापा' हिंदी में है और चौथी कविता 'पिता' ब्रजभाषा में है। आरंभ में ही अपनी कविताओं के बारे में स्पष्ट करते हुए 'स्फुट कविता' नाम की पुस्तक में गुप्त जी ने कहा है- ''यह मेरी हिन्दी भाषा की तुकबन्दियों का संग्रह है। हिन्दी में मैंने आरम्भ से आज तक जो फुटकर तुकबन्दियाँ की हैं वह सब इसमें है।..... कविता के लिए अपने देश की बातें, अपने देश के भाव और अपने मन की मौज दरकार है। हम पराधीनों में यह बातें कहाँ? फिर हमारी कविता क्या और उसका गुरूत्व क्या? इससे इस तुकबन्दी में कुछ तो अपने दुःख का रोना होता है और कुछ अपनी गिरी दशा पर पराई हँसी होती है, वहीं दोनों बातें इस तुकबन्दी में है।''[1]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने अपनी कविताओं को तुकबन्दी माना है और देश-दशा दर्शाने का माध्यम। परन्तु उनकी कविताएँ मात्र तुकबन्दियाँ नहीं हैं, उनमें अन्य सौंदर्य भी दिखाई देता है। यह सत्य है कि गुप्त जी ने कविताएँ भी श्रमसाध्य यत्न से नहीं लिखी थीं। परन्तु इससे उनकी कविता नीरस अथवा कला

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.245, (भूमिका से)

सौन्दर्य से हीन नहीं मानी जाएगी। श्री मुनीश्वर झा ने 'बालमुकुंद गुप्त एक मूल्यांकन' में लिखा है, ''गुप्त जी अपनी कविता को भले ही तुकबन्दी कह लें, पर उनकी कविता, कविता का श्रृंगार है। यहाँ मधुसिंचन नहीं है, पच्चीकारी भी नहीं है, किसी प्रकार का कृत्रिम परिष्कार नहीं है, किन्तु यहाँ कविता के प्राण अपने आप बसे हैं। जन जीवन का साहचर्य है, लोक जीवन की भावना है।''[1]

गुप्त जी की रचनाओं में संस्कृत निष्ठ हिंदी, व्यवहारिक हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और फारसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग सहज रूप से हुआ है। गुप्त जी मूलतः उर्दू से हिंदी में आए थे। उनकी कविताओं में भाषा की शुद्धता की तरफ ध्यान न देकर प्रवाह और सहजता को अधिक महत्त्व दिया गया है। प्रकृति अनुसार वे अपनी भाषा का रंग बड़ी सरलता से बदल लेते थे। यही प्रयोग उन्होंने अपनी कविताओं में भी किया है। विषयानुसार छंद परिवर्तन किया है। 'लक्ष्मीस्त्रोत' कविता में छंद परिवर्तन हुआ है। अन्य कविताओं में जैसे जय रामचन्द्र, जय लक्ष्मी, लक्ष्मी पूजा, दुर्गा स्तुति, आदि में भी छंद परिवर्तन हुआ है। 'जयलक्ष्मी' में 'गुप्त जी' ने छंद परिवर्तन किया है

''मात आपने कंगालन की दशा निहारो,
जिनके आंसुन भीज रह्यो तब आंचल सारो।
कोटिन पै रही उड़त पताका मा जिनके घर,
सो कौड़ी-कौड़ी को हाथ पसारत दर-दर।
हा! तो सी जननी पर्यो,
कंगाल नाम हमरो पर्यो।
धिक्-धिक् जीवन मा लच्छमी।
अब हम चाहत हैं, मर्यो।''[2]

---

1 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता 1965, पृ.30

2 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.290

आरंभ की चार पंक्तियों में दोहा छंद है और नीचे की चार पंक्तियों में चौपाई छंद है। हिंदी की कविताओं में अधिकांश चौपाई छंद का प्रयोग किया है। अधिकांश काव्य में शान्त रस की योजना है। प्रकृतिपरक और भक्तिपरक कविताओं में तो शान्त रस की सुन्दर योजना है। भक्ति की स्तुतियों में माँ और बच्चे के बीच में वात्सल्य रस की योजना दिखाई देती है। जिसमें दुर्गा माँ भवानी, लक्ष्मी, शारदा देवियों को प्रार्थना की गई है। साथ-साथ अपने देशवासियों की दुर्दशा के लिए जिम्मेवार भी माना है। रोष प्रकट करते हुए 'आवहु माय' में गुप्त जी ने कहा है-

''दुर्गा नाम रखाय मात तौहि लाज न आई।
दुर्गति नासिन सक्ति मात, अब कहां गंवाई।।
तो सी माता पाय आज हमरी यह दुर्गति।
भूखे-प्यासे बिडरावहि पावहिं क्लेस अति।।
बेसक हम कपटी कपूत कामी अरु कादर।
दर-दर मारे फिरै हमहि कोउ देहि न आदर।।''[1]

कहीं-कहीं भक्ति के पदों में करुण रस का चित्रण हुआ है। सामाजिक विषमता का चित्रण भक्ति की कविताओं में हुआ है। उस विषमता को दर्शाने के लिए करुण रस की योजना हुई है। 'हे राम' में गुप्त जी ने लिखा है:-

''केते बालक डोलते माता-पिता विहीन,
एक कौर के फेर महं घर-घर आगे दीन।
मरी मात की देह को गीध रहे बहु खाय,
ताहीसों यक दूध को सिसू रह्यो लपटाय।
जहं तहं नर कंकाल के लागे दीखत ढेर,
नरन पसुन के हाड़सों भूमि छई चहुं फेर।''[1]

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.609

इन पंक्तियों में करुण रस के साथ-साथ वीभत्स रस का भी चित्रण हुआ, ब्रज भाषा का प्रयोग है। ब्रज भाषा के अतिरिक्त गुप्त जी की कविताएँ अधिकांश हिंदी में मिलती हैं। 'प्लेग की भूतनी' नामक कविता हरियाणवी में है। प्रकृति परक रचनाओं में 'बसन्त के विरह' नामक कविता है, जिसमें ब्रज भाषा में संवाद शैली प्रस्तुत की गई है। संवाद शैली पहले अमीर खुसरो की रचनाओं में पाई जाती है। गुप्त जी ने वर्णन किया है- ''कामिनी - थामो थामो सखी।

यामिनी - क्यों सखी ऐसे तुम क्यों करती हो?

कामिनी - बीता शिशिर बसन्त आ गया,

यामिनी - तभी पसीनों मरती हो।''[2]

हरियाणा की लोक प्रचलित शैली टेसू में 'गुप्तजी' ने कविताएँ लिखीं। हास्य और व्यंग्य से मिश्रित इस शैली में गुप्तजी ने लॉर्ड कर्जन और अन्य अंग्रेज शासकों को आड़े हाथों लिया है। होली के अवसर पर टेसू की कविताओं में गुप्त जी के हृदय की खुली उमंगे प्रकट होती थीं।

इसी तरह जोगीड़ा भी हरियाणा की एक प्रचलित शैली है। जिसमें गुप्तजी ने संत-महात्माओं के झूठे पाखंड को उजागर करने तथा सभी धर्मों में व्याप्त अनियमितताओं को दर्शाने के लिए प्रयोग किया है। इन कविताओं में अन्य भाषाओं के शब्द भी प्रयोग किये गए हैं। जोगीड़ा में गुप्तजी ने लिखा है-

''अंडा खाया बंडा खाया माछमछरियाँ बीफ।

आज रांध के मुर्गी खाई सब भोजन में चीफ।।

हुए तब पक्के हिंदू कचाई रही न बिंदू।

खूब सिर को घुटवाया जतीका वेश बनाया।।''[1]

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.587

2 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.438

इन पंक्तियों को पढ़कर नाथ-सिद्धों की उक्तियों की याद आती है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों को मिलाकर विचित्र उक्ति बनाना जो अन्य की तरफ इशारा करती हो, इस दृष्टि से यदि हम देखें तो अन्योक्ति अलंकार भी यहाँ सफल हो रहा है। उक्ति में विचित्रता के कारण और अन्य किसी तीसरे की तरफ इशारा करने के कारण 'वक्रोक्ति अलंकार' भी यहाँ कहा जा सकता है। कुछ पद हमें नाथ-सिद्धों की उलटवासियों की याद दिलाते हैं। जैसे-

''बाबाजी वचनम्
अक्कड़ तोडूं कक्कड़ तोडूं तोडूं कच्चा सूत।
बालू पेलूं तेल निकालूं तो जो जोगी का पूत।
रेत में नाव चलाऊँ, नदी में आग लगाऊं।
हवा में भवन बनाऊँ, तवे पे पेड़ लगाऊँ।''[2]

गुप्तजी ने आवश्यकता अनुसार उर्दू-फारसी की उक्तियों का प्रयोग किया है। उर्दू-फारसी के शब्दों और पंक्तियों का प्रयोग हिंदी की ध्वनियोजना की भांति हुआ है। जैसे-

''कुंडी के नकारे पे खुलके का लगा डंका।
नितभंग पी के प्यारे दिन रात बजा डंका।''[3]

गुप्त जी ने अधिकांश स्थलों पर पौराणिक आख्यायिका अथवा इतिवृतसिद्ध वस्तुओं का सहारा लिया है। काल्पनिक आख्यानों द्वारा इन्होंने कई स्थानों पर रसात्मक सृष्टि का प्रयास किया है जैसे- सभ्य बीवी की चिट्ठी, जोरूदास, ताऊ और हाऊ आदि।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.377

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.683

3 डॉ. राजेन्द्र सिंह, बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का निबंध साहित्य, कवि सभा दिल्ली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली, 1996, पृ.205

श्री प्रबोध नारायण सिंह ने 'बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन' में कहा है- ''काव्य शिल्प की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि गुप्त जी के काव्य में निःसंदेह रुप से उन सौन्दर्य-मूलक तत्वों की विद्यमानता नहीं है जिनके आधार पर उन्हें कालिदास, भवभूमि, विद्यापति, सूर, तुलसी अथवा बिहारी की समकक्षता प्रदान की जाए। उन्होंने आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्य के विभिन्न मूलाधायक तत्वों को आधार मानकर रचना नहीं की। उनकी कविता में कहीं भी श्रम साध्य आयास नहीं दीखता है। क्लेश पूर्वक रीति ध्वनि वक्रोक्ति अथवा अलंकारों के समावेश का कहीं भी प्रयास नहीं किया गया है। इनके काव्य में मुख्यतः रसात्मक संदर्भ की सृष्टि की है।''[1]

विषयवस्तुः-

गुप्त जी की कविताओं की विषयवस्तु को डॉ. नत्थन सिंह ने चार भागों में विभाजित किया है। प्रथम देशभक्तिपरक काव्य, द्वितीय भक्ति रस प्रधान काव्य, तृतीय सामाजिक एवं धार्मिक विजय प्रधान काव्य और हास्य एवं व्यंग्य प्रधान रचनाएँ। विषयवस्तु की दृष्टि से गुप्त जी कविताओं में एक ही भाव के दर्शन नहीं हो सकते। इनके काव्य में विविधता के दर्शन होते हैं। यदि एक ही भाव की प्रधानता की बात कहें तो वह है- राष्ट्रीयता। जो भाव उनके गद्य में विद्यमान है वही उनके पद्य में भी सर्वत्र पाया जाता है। जिस राजनीतिक प्रखरता के कारण गुप्त जी को जाना जाता है उसका मुख्य कारण उनकी राष्ट्रीयता है।

गुप्त जी की देशभक्ति पूर्ण कविताओं में निम्नलिखित कविताओं के नाम लिए जा सकते हैं जैसे- सभ्य होली, पॉलिटिकल होली, कर्जननामा, टेसू बड़े लाट कर्जन, सच्चाई, मिन्टो, छोड़ चले शाइस्ताखानी, मल्लयुद्ध, विषाद में हर्ष, आशीर्वाद, सर सैयद अहमद का बुढ़ापा, पंजाब में लायल्टी, ताऊ और हाऊ आदि हैं। गुप्त जी की इन देशभक्ति पूर्ण रचनाओं में अंग्रेज गवर्नर, वायसराय तभा भारत सचिव के कार्यों का

---

1 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ.170

कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत होता है। अंग्रेज अधिकारी कैसे कथनी और करनी में अंतर करते हैं? लोगों को सुसभ्य, शिक्षित और आधुनिक बनाने के उनके कार्यों की आलोचना 'गुप्त जी' ने अपनी कविताओं के माध्यम से की है। जिस समय भारतीय प्रजा गरीबी, अकाल और बीमारी से दम तोड़ रही थी, तो 'कर्जन' जैसे शासक अपने झूठे अहम और शानो-शौकत के प्रदर्शन के लिए धन का दुरूपयोग कर रहे थे। इन शासकों का विरोध करने के लिए 'टेसू' के माध्यम से गुप्त जी ने लिखा है-

''शोर पड़ा दुनिया में भारी, दिल्ली में है बड़ी तैयारी।
देश-देश के राजा आवें, खेमे-डेरे साथ उठावैं।
घर-दर बेचो करो उधार, बढ़िया हो पोशाक तैयार।
बढ़िया रेशम बढ़िया जरी, अच्छी से अच्छी और खरी।''[1]

उस समय बंग-भंग के विरोध में जो स्वदेशी आंदोलन की लहर उठ रही थी, उसको भी गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में विषयवस्तु लेकर प्रयोग किया। गद्य और पद्य दोनों में बंग-भंग का तीव्र विरोध किया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का आग्रह उन्होंने 'विषाद में हर्ष' स्वदेशी आन्दोलन 'ताऊ और हाऊ' और 'आशीर्वाद' जैसी कविताओं के माध्यम से किया।

गुप्त जी को आरंभ से ही अंग्रेजी शासकों की नीतियों की परख थी। इसलिए तो इंग्लैंड में उदार दल की सरकार बनती है तो लोगों को भ्रम होता है कि अब भारत के हालात सुधर जायेंगे। परन्तु गुप्त जी ने लिखा-

''नहिं कोई लिबरल नाहिं कोई टोरी, जो परनाला सोई मोरी।
दोनों का है पंथ अघोरी, होली है, भई होली है।।
अब भी समझो भारत भाई तुम्हें तुम्हारी दशा जनाई।
आप सहो जो सिर पै आई, होली है भई होली है।।''[2]

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.205
2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.200

राष्ट्रीयता के भाव को प्रकट करने के लिए 'गुप्त जी' ने एक और विषयवस्तु का चयन किया है वह है राजभक्तों पर व्यंग्य। 'पंजाब में लायल्टी और 'हम में नमक हलाल' के द्वारा गुप्त जी ने राजभक्तों पर करारी चोट की है-

''आप सभी हैं जानते हम हैं नमक हलाल,
ओरों से मिलता नहीं तभी हमारा ख्याल।
'घूंसखोर' ही है कहा, मारी तो नहिं लात,
फिर क्यों कुरसी त्याग दे ऐसी है क्या बात।''[1]

गुप्त जी ने जिस दूसरे विषय को लेकर कविताएँ लिखी हैं वह हैं 'भक्ति'। 'गुप्तजी' सनातन धर्मी वैष्णव स्वभाव के व्यक्ति थे। नित्य रोज पूजा-पाठ करना, अपने धार्मिक आचरण के अनुसार ही खान-पान का व्यवहार और रामचरित मानस का पाठ करना उनकी दिनचर्या थी। हिंदू धर्म की मान्यताओं का पालन करना उनके सिद्धान्तों में था। वे बहुदेवउपासक थे। इसलिए उनकी रचनाओं में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति पाई जाती है। 'जयरामचन्द्र' 'रामभरोसा' और 'हे राम' में श्रीराम का, 'जयलक्ष्मी और 'लक्ष्मीस्त्रोत' में धन तथा सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी का, 'प्रार्थना' में माँ भवानी का, 'आगवानी' और 'आवहुमाय' में शक्ति स्वरूप माता की वंदना की है। भक्ति रस की ये कविताएँ धार्मिक प्रवृत्ति की ओर इशारा भर ही करती हैं परन्तु इनका उद्देश्य देश-दशा का चित्रण करना भी है।

भक्ति रस की कविताएँ एक अन्य दृष्टि में भी विशिष्टता लिए हुए हैं वह है देवी पूजा। जिस युग में स्त्रियों को कोई मान-सम्मान प्राप्त नहीं था, जो समय शोषण और घोर अंधकार का युग था, उस युग में गुप्त जी ने देवी लक्ष्मी, दुर्गा, शारदा और माँ भवानी की स्तुति कर उनका सम्मान बढ़ाया है। नारी शक्ति का स्त्रोत है, इसी भावना के साथ उन्होंने यह आराधना की। भारतवासियों के दीन-दुखियों की प्रार्थना को

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.427

सुनाने के लिए उन्होंने भक्ति का सहारा लिया। श्री प्रबोध नारायण सिंह का कहना है- ''इन कविताओं में विशुद्ध देव-देवी विषयक भावों का समावेश नहीं है। भक्ति-भावना के साथ समाज-भर्त्सना भी सन्निहित है। यंत्र-तंत्र-असहयोग की भावना को तथा प्रकारान्तर से क्रांति की भावना को भी उभारा गया है। सीता, लक्ष्मी, काली, दुर्गा, राम, कृष्ण, शिव और अन्य मान्य देवियों के प्रति उद्‌गार व्यक्त किये गये हैं।''[1]

इन रचनाओं के माध्यम से भारत की दुर्दशा का चित्रण और ईश्वर से देश दशा को सुधारने की प्रार्थना की गई है। भक्ति के माध्यम से राष्ट्रीयता की संकल्पना की गई है। भक्ति और राष्ट्रीयता का अनूठा समन्वय इन रचनाओं में दिखाई पड़ता है।

कुछ कविताओं की विषयवस्तु गुप्त जी ने सामाजिक पृष्ठभूमि से ली है। धार्मिक विषयों के साथ ही सामाजिकता का समन्वय कर दिया है। पाश्चात्य संस्कृति का विरोध, अपनी संस्कृति को छोड़कर दूसरी संस्कृति को अपनाने की होड़, साधुओं के वेश में पाखंड करने का और आलसीपन का विरोध आदि बातों को उन्होंने अपनी रचनाओं में उभारा है। इनमें व्यंग्य के माध्यम से यह बात कही गई है। आलसीपनों पर आलस छोड़कर कर्म करने की प्रेरणा दी गई है। आजकल का सुख, साधो पेट बड़ा हम जाना, दिन नहीं कटता आदि के माध्यम से आलसीजनों को आलस छोड़कर कार्य करने को प्रेरित किया है। साधु-संतों और गुरू-शिष्यों की झूठी परम्पराओं को हास्य के माध्यम से कविताओं में उभारा है। जोगीड़ा के माध्यम से आधुनिक गुरू और शिष्य के विचारों को प्रकाश में लाया गया है। जोगीड़ा में गुप्त जी ने कहा है-

''हाँ सदाशिव गोरख जागे-सदाशिव गोरख जागे-
लण्डन जागे पेरिस जागे, अमेरिका भी जागे।
ऐसा नाद करू भारत में सोता उठकर भागे।''[2]

---

1 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ.275

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.680

इसी प्रकार 'चेला जी वचनम्' के द्वारा शिष्य के विचारों को प्रकाश में लाया गया है। अंध भक्त मनुष्यों और स्त्रियों को पाखंडी गुरुओं के पीछे पागल होने पर कटाक्ष किया है। हास्य और व्यंग्य का प्रभाव तो 'गुप्त जी' की रचनाओं में सर्वत्र पाया जाता है। गद्य और पद्य दोनों में ही हास्य और व्यंग्य का अनूठा मिश्रण पाया जाता है। विषयवस्तु चाहे धार्मिक रही हो या सामाजिक अथवा फिर राजनीतिक, सभी में व्यंग्यात्मक कटाक्ष दिखाई पड़ता है। टेसू और जोगीड़ा में भी हास्यात्मक व्यंग्य है। सामाजिक मुद्दों पर लिखी गई कविताओं में जैसे- प्लेग की भूतनी, दशहरा अश्लील, तकरीर मुंह जबानी, कलियुग के हनुमान, देशोद्धार की तान, चूहों का मातम, सुधार, सुसभ्य राजा, भैंस का मरिसया, भैंस का स्वर्ग, नया कुछ काम करना है, गुरुजी का हाल, व्याकरणाचार्य आदि में व्यंग्य और हास्य का समावेश है। 'प्लेग की भूतनी' में गुप्त जी ने लिखा है-

''घर, आंगन, दरवाजे खाऊँ चींटी मच्छर डांस।
सांप छिपकली मूस छछून्दर सबका चक्खू मांस।।
कच्चे-कच्चे लड़के खाऊँ युवती और जवान।
बूढ़े के नहिं हाथ लगाऊँ बूढ़ा बेईमान।''[1]

कुछ नए विषयों पर गुप्त जी ने लिखा जैसे- पिता, स्वर्गीय कवि, मैक्समूलर, आनन्द, ध्यान, चिन्ता, विषाद, कायापलट, कविता की उन्नति, होली, सभ्य होली इत्यादि। इन कविताओं में हास्य तत्व नहीं है, गंभीरता है, जीवन की संजीदगी है। बच्चों के लिए इन्होंने 'खिलौना' और 'खेल-तमाशा' नाम की पुस्तकें तो लिखी ही साथ-साथ कुछ अन्य कविताएँ भी भारतमित्र में प्रकाशित की जैसे- रेलगाड़ी, प्रभात, नया कुछ करना है, चुन्ना-मुन्ना, मुर्गी-मेजर आदि।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.355

प्रकृति चित्रण को भी गुप्त जी ने अपनी कविताओं का विषय माना है। भक्ति की रचनाओं में प्रकृति वर्णन किया है। वसन्तोत्सव, कोकिल अब मौन क्यों गहीं?, वसन्तबन्धु, प्रभात, बसन्त में विरह आदि में प्रकृति वर्णन दिखाई पड़ता है। परन्तु इनका प्रकृति वर्णन बहुत ही मर्यादित रूप में है। शान्त रस में प्रकृति चित्रण किया गया है।

नवीनताः-

'गुप्त जी' ने कविता लिखने के लिए जिस तथ्य का प्रयोग किया वह था 'सत्य'। 'सत्य' कहने के लिए इन्होंने बहुत से नवीन प्रयोग किए। इनके पद्यों में राष्ट्रीयता तो सर्वत्र दिखाई पड़ती है, परन्तु इस भावना को जागृत करने के लिए 'गुप्त जी' ने देश-दशा का भी सचित्र वर्णन किया है। धार्मिक पद्यों के साथ समाज की दशा का चित्रण भी मिलता है। किसानों की भूख, गरीबी, बीमारी और शोषण से बचने के लिए प्रार्थना की जाती है। देवी-देवता की स्तुति सिर्फ आराधना के लिए नहीं की गई है, अपितु उसमें मानवीय पक्ष भी है। इन पदों में धार्मिक भावना कम, मानवतावादी पक्ष अधिक उभर कर आया। कवि ने भगवान को एक माध्यम बनाया है जिसके सामने वह अपने दुःखों का वर्णन कर सके और प्रार्थना कर सके कि उसके दुःखों का हरण करे। केवल वही एक माध्यम है, जिससे वह अपने मन की बात कह सकता है। यह एक नवीन प्रयोग था उस समय के अनुसार। भक्ति में शक्ति का प्रयोग तो पहले भी देखने को मिलता है परन्तु भक्ति में मानवीय पहलू इससे पहले देखने में नहीं आया। 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' गुप्त जी के समय से बहुत बाद में आई। दुर्गा, भवानी, शारदा और लक्ष्मी की स्तुति से नारी शक्ति का परिचय दिया गया। स्त्री को शक्ति का केन्द्र मानकर उसकी आराधना की गई ताकि इस देश की गरीब जनता का उद्धार हो सके।

एक महत्त्वपूर्ण और रोचक तथ्य का 'गुप्त जी' ने अपने विषयवस्तु में समावेश किया वह है बच्चों के मनोरंजन के लिए कविताएँ लिखना। सिर्फ मनोरंजन के लिए ही नहीं बल्कि हिंदी वर्णमाला सिखाने के लिए भी 'गुप्त जी' ने 'खेल-तमाशा' और

'खिलौना' जैसी पुस्तकें लिखीं। जब नंदन और चंपक जैसी कार्टून पुस्तकों की सोच भी नहीं थी और ना ही दूरदर्शन के जैसा कोई माध्यम था तो ऐसे समय में 'गुप्त जी' सचित्र लयात्मक बाल पुस्तकें लिखकर नवीन प्रयोग कर रहे थे। मनोरंजन अथवा खेल-खेल के द्वारा मात्राओं की जानकारी वह भी सचित्र रुप में गुप्त जी ने दी। यह उनकी दूरदर्शिता का ही उदाहरण है। हिंदू धर्म के अनन्य उपासक होते हुए भी उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति की लाभप्रद बातों को ग्रहण किया। पाश्चात्य विद्वानों को सत्कार देने के लिए उन्होंने उन पर लेख और कविताएँ भी लिखीं। अंग्रेजी में बच्चों के लिए सचित्र पुस्तकें देखकर 'गुप्त जी' प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इसलिए उन्होंने पहले बंगला में, फिर हिंदी में बच्चों के लिए सचित्र लयात्मक पुस्तकों की रचना की। भारतमित्र में कुछ कविताएँ बच्चों के मनोरंजन के लिए और ज्ञानवर्धन के लिए लिखीं जैसे- रेलगाड़ी, प्रभात, नया कुछ करना है, चुन्ना-मुन्ना, मुर्गी मेजर आदि। 'प्रभात' में गुप्त जी ने लिखा है-

''चटक रही बागों में कलियां, पंछी करते हैं रंगरलियां।
ग्वाल चले सब गायें लेकर, बालक पढ़ते हैं मन देकर,
महक रही है खूब चमेली, भौंरे आये जान अकेली।.....
उठो बालकों हुए सवेरा, दूर करो आलस का डेरा।
मुंह धोओ थोड़ा कुछ खाओ, फिर पढ़ने में ध्यान लगाओ।''[1]

'गुप्त जी' की प्रकृतिपरक रचनाओं में हमें कलात्मक सौन्दर्य तो दिखाई नहीं देता, परन्तु उसमें संयमित एवं मर्यादित श्रृंगार के दर्शन अवश्य होते हैं। एक ही भाव किसी भी कविता में आरंभ से अंत तक प्रयोग नहीं हुआ। जीवन संघर्ष की झलक हमें सभी कविताओं में मिल जाएगी। जिस जीवन संघर्ष को 'मैथिलीशरण गुप्त' ने अपनी रचनाओं में अपनाया है जिस संघर्ष को आगे चलकर 'नागार्जुन' और 'निराला' जैसे कवियों ने चित्रित किया है, उसे 'गुप्त जी' बहुत पहले ही अपनी रचनाओं/कविताओं

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.665

में प्रयोग कर चुके थे। इसी नवीनता के कारण ही उनकी रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उस समय थी। रीतिकाल में और भारतेंदु युग में भी बहुत से रचनाकारों ने ब्रज भाषा में श्रृंगारिक पद लिखे। परन्तु 'गुप्त जी' ने ना सिर्फ स्वयं ही इस तरह की रचनाओं को नकारा अपित अन्यों को भी इस तरह की रचनाएँ लिखने पर फटकार लगाई। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'प्रियवंदा' पर भी उन्होंने आलोचना की। श्रीधर पाठक को देश में अकाल पड़ने पर 'बादल' पर कविता लिखने को प्रेरित किया, जिससे निराश किसानों में धैर्य बंधे। राजनीतिक और सांस्कृतिक जागृति के काल में श्रृंगारिक रचनाओं को उन्होंने आत्महनन माना था। इसलिए उनकी रचनाओं में इस तरह के पद बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ते। यह तत्कालीन परिस्थितियों में नवीन प्रयोग था जिसे आगे चलकर अनेक रचनाकारों ने अपनाया।

'गुप्त जी' का प्रकृति वर्णन एक विशेष प्रयोजन को लेकर आता है। बसंत के आगमन के साथ-साथ भारत के हर्षोल्लास की कामना की जाती है। गुप्त जी के काव्य में प्रकृति न तो प्रेयसी के रूप में आई है और न ही रहस्यमयी सत्ता के रुप में प्रकट हुई है। उसके सभी रुप गुप्त जी के काव्य में विद्यमान नहीं है। वह भली, बुरी, कठोर तथा सुन्दर रुप में गुप्त जी के काव्य में दिखाई देती है। परन्तु विशेष बात यह है कि प्रकृति के रुपों का वर्णन करते हुए मानव समाज का चित्रण हुआ है। 'वसन्तोत्सव' में कवि ने प्रकृति चित्रण के साथ समाज का चित्रण इस प्रकार किया है:-

''कहाँ गये वह गांव मनोहर परम सुहाने,
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने।.....
एक साथ बालिका और बालक जहं मिलकर,
खेला करते और घर जाते सांझ परे पर।
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई,
जिनके सपने में भी पास कभी नहिं आई।''[1]

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुन्द गुप्तः संकलित निबन्ध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ.233

'गुप्त जी' के समकालीन अन्य रचनाकारों ने भी तीज त्योहारों पर लिखा परन्तु 'गुप्त जी' ने टेसू और जोगीड़ा के माध्यम से समकालीन शासकों पर जो व्यंग्य के तीर चलाए वह एक नवीन ही प्रयोग था। स्वदेशी आंदोलन, मल्लयुद्ध, आशीर्वाद, ताऊ और हाऊ, स्वागत, टेसू, जोगीड़ा, दिल्ली दरबार का वैभव आदि इन सब पर लोकगीतों की प्रचलित शैली में व्यंग्य है। राष्ट्रीय समस्याओं को क्षेत्रीय गीतों में पिरोकर जनता के सामने प्रस्तुत किया।

गुप्त जी ने मोरनी की मनोव्यथा का वर्णन पाँच सर्गों में सचित्र रूप से किया है। आनन्द, ध्यान, चिन्ता, विषाद और कायापलट में मोरनी के आनन्द से लेकर उसके शरीर त्यागने तक की कहानी कही है। यह प्रवृत्ति आगे चलकर हमें जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और रामचन्द्र शुक्ल के निबंध संग्रह 'चिन्तामणि' में दिखाई देती है। गुप्त जी ने एक लघु रुप इस घटनाक्रम का प्रस्तुत किया है। यह नवीनता बिरले लोगों में ही दिखाई पड़ती है।

व्यंग्य और हास्य में 'गुप्त जी' का कोई सानी नहीं है। भारतेंदु युग से ही व्यंग्य की परम्परा आरंभ हो गई थी। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, प्रेमघन और स्वयं भारतेंदु ने अनेक व्यंग्यात्मक (हास्य से परिपूर्ण) लेख लिखे। परन्तु जो व्यंग्य और हास्य का अद्‌भुत समन्वय 'गुप्त जी' की रचनाओं में दिखाई देता है, वह अन्य कहीं नहीं। भंगेडी शिवशंभु शर्मा का नशा आज भी लोगों के दिलो दिमाग पर से नहीं उतरा है। लॉर्ड कर्जन के टेसू गीत, जोगीड़ा गीत और अन्य रचनाएँ में हास्य की अनोखी छटा दिखाई पड़ती है। सर सैयद का बुढ़ापा, तकरीर मुँहजबानी, उर्दू को उत्तर, पंजाब में लायल्टी, गुरूजी का हाल, भैंस का मरसिया, खल और साधु, भैंस का स्वर्ग आदि रचनाओं में हास्य का भरपूर मिश्रण दिखाई देता है। लॉर्ड कर्जन ने भारतीयों को झूठा कहा था तो गुप्त जी 'सच्चाई' नामक कविता में लिखा–

''हम जो कहैं वही कानून, तुम तो हो कोरे पतलून।
हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।''[1]

जिस समय ब्रज भाषा और खड़ी बोली का विवाद चल रहा था जिसमें दो धड़े बने हुए थे- एक ब्रज भाषा समर्थक जिसमें प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी जैसे रचनाकार थे और दूसरी तरफ खड़ी बोली समर्थकों में श्रीधर पाठक और अयोध्याप्रसाद खत्री जैसे रचनाकार थे। विवाद था गद्य और पद्य में एक ही भाषा का प्रयोग हो और वह खड़ी बोली हो। परंतु ब्रज भाषा समर्थक इसे मानने को तैयार नहीं थे। उनका तर्क था कि खड़ी बोली जिसका नाम इतना रुष्ट है, इसमें कविता नहीं हो सकती। परंतु इस विवाद से बहुत पहले सन् 1889-1890 में गुप्त जी खड़ी बोली में कविता कर चुके थे। भैंस का स्वर्ग, वसन्तोत्सव और सर सैयद का बुढ़ापा उनकी आरंभिक कविताएँ हैं जो कि खड़ी बोली में है। चौथी कविता 'पिता' ब्रजभाषा में है। ये सारी कविताएँ 'हिन्दोस्थान' में छपी थीं। इस दृष्टि से यदि देखें तो 'गुप्त जी' को खड़ी बोली का आरंभिक कवि भी कहा जा सकता है। यह उनका नवीन प्रयोग ही था जो उन्होनें पहले स्वयं किया और बाद में दूसरों को करने के लिए प्रेरित किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' में जाने से पहले अपनी कविताएँ गुप्त जी को भेजा करते थे। उनके पद्य में खड़ी बोली का प्रयोग बाद में है, गुप्त जी का उनसे 13 वर्ष पहले का प्रयास है। परंतु विडंबना यह है कि 'द्विवेदी जी' की गणना खड़ी बोली के निर्माणकर्त्ता के रुप में की जाती है परन्तु 'गुप्त जी' का नाम भी बहुत से साहित्यप्रेमी नहीं जानते। बालमुकुन्द के काव्य पर डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है, ''भारतेन्दु मंडल के अन्य कवियों की भांति बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने समाज एवं राष्ट्र का नेतृत्व करने का सफल प्रयास किया है। इन कवियों का काव्य कोरा शब्द विलास नहीं था, अपितु इनके हृदय की सच्ची भावनाएँ, वास्तविक उमंग एवं उदात्त लक्ष्य निहित है। विचार, भावना एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से भी इनका काव्य उत्तरोतर अधिक व्यापकता एवं उच्चता प्राप्त

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.206

करता गयाय भारतेन्दु से बालमुकुन्द गुप्त तक की प्रगति इसे प्रमाणित करती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विचार और भाव की दृष्टि से बालमुकुन्द गुप्त जहाँ भारतेन्दु मण्डल के प्रतिनिधि हैं वहाँ खड़ी बोली के प्रयोग एवं रचना शैली की दृष्टि से द्विवेदी मण्डल के अत्यन्त निकट है। अतः इन्हें हम धारा की प्रगति के दो बिन्दुओं- भारतेन्दु और द्विवेदी के बीच की संयोजक रेखा मान सकते हैं।''[1]

युग बोधः-

वह काल राजनीतिक, सांस्कृतिक जागरण का था। सिर्फ वही रचनाएँ समसामयिक हो पाती हैं जिनका स्वरूप उस समय के अनुसार हो, जो तत्कालीन परिस्थितियों को दर्शाती हो। भारतेंदु से ही समकालीन दुर्व्यवस्थाओं को साहित्य में स्थान मिलना आरंभ हो गया थी। भारतेंदु की रचनाएँ 'अँधेर नगरी' तथा 'नीलदेवी', प्रतापनारायण मिश्र का नाटक 'भारत दुर्दशारुपक' तथा बालकृष्ण भट्ट का भारतीय अकाल पर प्रकाशित 'आल्हा', समकालीन पत्र-पत्रिकाएँ उस समय के युग बोध की याद दिलाती है। गुप्त जी की रचनाओं में उस युग की झाँकी दिखाई देती है। आज जिस प्रगतिशीलता की हम बात करते हैं वह प्रगतिशीलता गुप्त जी की रचनाओं में बहुत पहले दिखाई देती हैं। 'प्लेग की भूतनी' नामक कविता में गुप्त जी ने सीधे-सीधे अंग्रेजों को दोषी ठहराया है-

''आंवो आंवो रे अंगरेज।
ठहरो ठहरो भागे कहां? खाऊंगी पाऊंगी जहां,
फोड़ खोपड़ी भेजा खाऊं करके रेजारेज।।.....
कच्चे-कच्चे लड़के खाऊं युवती और जवान।
बूढ़े के नहिं हाथ लगाऊँ बूढ़ा बेईमान।।''[2]

---

1 डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय- खण्ड, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.38

2 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.355

इन पंक्तियों के बारे में श्री रामधारी सिंह दिनकर का कहना है- ''जवानी का अर्थ है साहस, त्याग और प्रयोग करने की आकांक्षा है। बुढ़ापे की निशानी अगति, रक्षण और अनुदारता है। गुप्त जी का वोट जवानी के पक्ष में था।''[1]

अपने समय के विचारों, भावनाओं और विसंगतियों को गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में उकेरा है। गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना बड़ी बलवती थी। देश के बाहर अथवा अन्दर जो भी कुछ घटित होता था वह उनकी पैनी नजर से नहीं बच सकता था। उन्होंने अपनी रचनाओं में वर्तमान स्थितियों का यथासंभव वर्णन किया है। विषयवस्तु चाहे धार्मिक, राजनीतिक, अथवा सामाजिक हो उसमें जीवन संघर्ष का चित्रण अवश्य हुआ है। यह उस समय का युग बोध है जो तात्कालिक रचनाओं में दिखाई पड़ता है। देश अथवा समाज के विचारों तथा भावनाओं के प्रतिबिंब के रुप में समाज की भाषा का विशेष महत्त्व होता है। इसी भाषा में देश के विचारों को मान्यता मिलती है। इस भाषा को इसका स्थान दिलवाने में उस युग के साहित्यकारों/समाजसेवियों ने जी-तोड़ मेहनत की। हिंदी नागरी से संबंधित आंदोलनों में गुप्त जी ने बढ़-चढ़कर भाग लिया और अन्यों का समर्थन किया। हिंदी और नागरी के दर्जनों लेख उनकी रचनाओं में मिल जाएंगे। विशेष बात यह रही थी कि गुप्त जी उर्दू से हिंदी में आए थे। उर्दू के नामी लेखक और संपादक रह चुके थे। परंतु फिर भी समय की मांग के अनुसार इन्होंने हिंदी और नागरी को समर्थन दिया। परन्तु फिर भी 'गुप्त जी' ने उर्दू और मुसलमानों का विरोध नहीं किया। सन् 1900 ई0 में माननीय मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में हिंदी को कचहरियों में प्रवेश मिला तो मुसलमानों ने इसका विरोध किया। अवधपंच में 'उर्दू की अपील' नामक कविता छपी जो उर्दू के पक्ष में थी जिसका प्रसिद्ध पद इस प्रकार था- 'मैं शाहों के दरबारों की पाली हुई। हाय! इस कदर मेरी पाय माली हुई।'

(हिन्दुस्तान, सोमवार, 18 सितम्बर, सन् 1950, दिल्ली)

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशक समिति, हरिसन रोड़ कलकत्ता, 1950, पृ.395

गुप्त जी ने इसके उत्तर में भारतमित्र में 'उर्दू को उत्तर' नामक लम्बी कविता लिखी। जिसमें उर्दू के निराधार तर्कों का खंडन है। गुप्त जी ने कहा है-

''न बीवी बहुत जी में घबराए, सम्हलिये जरा होश में आइये।
कहो क्या पड़ी तुमपे उफताद है, सुनाओ मुझे कैसी फरियाद है।
किसी ने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या? सुनूं हाल मैं भी उसका जरा।''[1]

गुप्त जी समय की नजाकत को देखते हुए सभी भाषाओं की एक ही लिपि अपनाने के पक्ष में थे, और वह लिपि नागरी ही थी, क्योंकि नागरी में ही सभी भाषाओं को लिखने की क्षमता थी। यदि सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जाएगी तो जातीय एकता मजबूत होगी। जातीय एकता से राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा का एक समान रुप से प्रचार-प्रसार होगा। राजनीतिक और सांस्कृतिक जागरण के इस काल में 'गुप्त जी' अपनी कविताओं के माध्यम से नवजागरण का बीज बो रहे थे।

'गुप्त जी' की धार्मिक एवं राजनीतिक कविताओं में तो युग बोध दिखाई ही देता है, परन्तु उनकी सामाजिक कविताओं में जीवन विषमता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में जकड़ी जनता को भारतीय संस्कृति की तरफ आकर्षित करने का प्रयास किया गया है। ये सभी कविताएँ व्यंग्यात्मक रूप में है। देशोद्धार की तान, कलकत्ते की ग्वालिन, जनाने पुरुष, पतिव्रत, बंगदेशीय कोल्हू, सुसभ्य राजा, सभ्य बीवी, जोरूदास, आजकल का सुख आदि इन कविताओं में पाश्चात्य संस्कृतियों के रंग में रंगे भारतीयों पर व्यंग्य किया है। यह दशा वर्तमान युग में भी ज्यों की त्यों है। गुप्त जी की की इसी भावना को व्यक्त करते हुए डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में लिखा है, ''वस्तुतः ऐसा सुधारवाद जिसमें अपना सब कुछ छोड़ दिया जाये या बहा दिया जाये इस युग की रूचि के

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.700

अनुकूल नहीं थाय वे सुधार चाहते हैं पर अपनेपन को खोकर नहीं। दूसरे शब्दों में वे अपनी ही राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक परंपराओं का नवरूपान्तर करना चाहते थे, उनसे सर्वथा विच्छिन्न होकर उनके स्थान पर विदेशी परंपराओं की प्रतिष्ठा नहीं करना चाहते थे, जबकि नवशिक्षितों में विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति अंध श्रृद्धा की प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी जिसका चरम रूप आज देखा जा सकता है। आज हम राजनीतिक दृष्टि से तो स्वतंत्र हो गये किन्तु मानसिक दृष्टि से विदेशी संस्कृति, विदेशी साहित्य और विदेशी भाषा के गुलाम हैं।''[1] गुप्त जी ने जो 100 वर्षों से भी ज्यादा पहले लिखा वह आज भी प्रासंगिक है। हिंदी आज भी अपने वर्चस्व की लड़ाई लड़ रही है। युवा वर्ग पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में अपनी संस्कृति को भुलाए बैठा है। गुप्त जी ने इस दिशा में कट्टरता का परिचय न देकर विदेशी संस्कृति के अच्छे प्रभाव ग्रहण करने को कहा। हिंदू धर्म का आदर करते हुए उन्होंने अन्य धर्मों का अनादर कभी नहीं किया। जो बात हिंदू धर्म में बुरी लगी या अन्य धर्मों में उसका भी मजाक उड़ाया है, उसे इस प्रकार से लिखा है-

''अल्ला गाड अरु निराकार में भेद न जानो भाई रे।
इन तीनों को जी में अपने जानो भाई-भाई रे।।
गाड कभी मूरत नहिं पूजी अल्ला ने तुडवाई रे।
निराकार ने गाली देकर सारी कसर मिटाई रे।।
अल्ला करे न चौका चूल्हा गाड मेज बिछवाई रे।
निराकार ने देखादेखी अपनी जाति मिटाई रे।।''[2]

गुप्त जी बंगला, उर्दू, फारसी, संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी समेत छह भाषाओं के जानकार थे। परन्तु उन्होंने समय की मांग के अनुसार हिंदी में अपना रचना कार्य

---

1 डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय- खण्ड, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.37

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.199

किया। गुप्त जी की शिक्षा 'उर्दू' में हुई थीं अपने लेखन कार्य की शुरूआत उन्होंने उर्दू में ही की। परन्तु हिंदी न जानते हुए भी हिंदी पत्रकारिता में कूद पड़े। पं. दीन दयाल शर्मा के निमन्त्रण पर 'हिन्दोस्तान' से अपनी हिंदी सेवा आरंभ की। उस युग की मांग के अनुरुप हिंदी में अपना लेखन कार्य आरंभ किया। हिंदी का ऐसा रूप व्यवस्थित किया जिसमें सभी भाषाओं के शब्द हों। गुप्त जी का विचार था कि अन्य भाषाओं को हिंदी में सम्मिलित करने पर हमें परहेज नहीं करना चाहिए। हिंदी का ऐसा रूप व्यवस्थित हो जिससे सभी उसे आसानी से समझ सके। उर्दू का चुलबुलापन उनकी भाषा में दिखाई देता है। गुप्त जी की भाषा का यह रूप आगे चलकर गणेशशंकर, विद्यार्थी, प्रेमचंद आदि की भाषा में दिखाई देता है। हिंदी के संबंध में जो गुप्त जी ने बहुत पहले लिखा वह आज भी लागू होता है, ''100 वर्ष तक हिंदी हितैषी लोग उर्दू के बिना हिंदी में उचित उन्नति नहीं कर सकते। इसलिए हिन्दुओं में उर्दू के अच्छे-अच्छे ज्ञाता होने आवश्यक हैं। बडी कठिनाई यह है कि दोनों (हिंदी-उर्दू के दो रूप) एक-दूसरे को न पहचानते हैं न पहचानने की चेष्ट करते हैं। हिंदी के हितैषी आज भी इसकी चेष्टा नहीं कर सके हैं।'' (नवजीवन, लखनऊ, रविवार, 1 अक्टूबर, 1950)

5.2 चरित चर्चा एवं इतिहास दृष्टिः

हिंदी/उर्दू के साहित्यकारः-

भारतेन्दु की प्रेरणा से बाबू बालमुकुंद गुप्त चरित लेखन की ओर अग्रसर हुए थे। भारतेन्दु से पूर्व हिंदी साहित्य में चरित लेखन न के बराबर था। गुप्त जी ने हिंदी सेवा और देश सेवा के लिए चरित लेखन का बीड़ा उठाया था। उनके लिखे हुए बाईस चरित लेखन देखने में आए हैं। जिनमें से कुछ शोक संवाद के साथ मृत्यु के तत्काल पश्चात् दी गई श्रृद्धांजलियाँ हैं और कुछ जीवित व्यक्तियों/इनके समकालीन व्यक्तियों के चरित लेखन हैं। जीवित व्यक्तियों में पं. गौरीदत्त, मुंशी देवी प्रसाद, मौलवी मुहम्मद हुसैन आजाद आदि हैं। शोक संवाद के साथ मृत्यु के तत्काल पश्चात्

लिखे गए में पं. अम्बिका दत्त व्यास, पं. देवी सहाय, पाण्डे प्रभुदयाल, पं. माधवप्रसाद मिश्र आदि हैं। हिंदी के साहित्यकारों के जीवन चरित्र लिखने के पीछे ही एक ही उद्देश्य था कि हिंदी सेवा के महत्त्व को, हिंदी भाषियों को परिचित कराना। जिन हिंदी साहित्यकारों को गुप्त जी ने परिचित करवाया था वे हैं- पं. अम्बिका दत्त व्यास, पं. गौरीदत्त, पं. देवीसहाय, पं. प्रभुदयाल पाण्डे, बाबू रामदीन, पं. देवकीनन्दन तिवारी, बाबू योगेन्द्र चन्द्र बसु, पं. प्रतापनारायण मिश्र, मुन्शी देवीप्रसाद, पं. माधवप्रसाद मिश्र, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती, मुंशी पीताम्बर प्रसाद इत्यादि। इनमें से बहुत से चरित लेखन शोक श्रृद्धाजंलियाँ हैं। इनमें जीवन से संबंधित जानकारियाँ देने के साथ भावुकता का समावेश भी है। पं. अम्बिका दत्त व्यास के बारे में लिखते हैं- ''क्या लिखें उनकी किस-किस चीज की आलोचना करें? चित व्याकुल है। आँखों से आँसू बहे चले आते हैं।''[1] इसी प्रकार पं. माधवप्रसाद मिश्र के निधन पर उन्होंने अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए। श्रृद्धांजलि देने के साथ-साथ उन्होंने चरित नायकों का सम्पूर्ण जीवन वृत्त भी संक्षिप्त रुप से खींचा है।

पं. माधव प्रसाद मिश्र के बारे में लिखा है- ''बस, अब यही बाकी है, कि तू मर जाय तो एक बार तुझे खूब रो लें और हम मर गये तो हम जानते हैं कि पीछे तू रोवेगा।''[2]

गुप्त जी ने इन शोक संवादों के आरंभ में तो चरित नायकों की मृत्यु की दु:खद सूचना दी है बीच में उनके जीवन का वर्णन किया है और अन्त में आँसुओं से भीगी हुई शोकपूर्वक श्रृद्धाजंलियाँ दी हैं।

पं. देवीसहाय के शोक सन्देश में गुप्त जी ने लिखा है, ''इस देश का जो कुछ चला जाता है वह फिर नहीं लौटता। पंडित देवीसहाय जी का स्थान पूरा करने के

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.23

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.36-37

लिए, वैसा योग्य पुरुष दिखाई नहीं देता। उनमें अनेक गुण थे, जो कुछ करते थे, आडम्बर रहित होकर करते थे।''[1] इसी प्रकार पाण्डे प्रभुदयाल की शोक श्रृद्धाजंलि है जिसमें संक्षिप्त रूप से उनका जीवन वृत्त खींचा है।

कुछ जीवन चरित उन व्यक्तियों के हैं जो गुप्त जी ने अपने समकालीनों के मृत्यु के काफी समय पश्चात् लिखे हैं जो शोक श्रृद्धांजलियों की श्रेणी में नहीं आती। ऐसे जीवन चरित में पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. देवकीनन्दन तिवारी, बाबू रामदीन, योगेन्द्रचंद्र बसु आदि के हैं। इन जीवन चरितों में गुप्त जी ने विस्तृत जीवन वर्णन किया है। आरंभ में कुल, गोत्र, वंश, जन्मस्थान आदि की विस्तृत जानकारी दी है। फिर बाल्यावस्था, किशोरावस्था, विवाह, शिक्षा आदि की पूरी जानकारी देने का प्रयास किया है। बीच-बीच में में नायक के गुण, स्वभाव, उदारता, धार्मिकता, कृतित्व, उपलब्धियाँ, रचनाएँ, बीमारियाँ तथा आर्थिक कठिनाईयों का वर्णन किया है। अंत में मृत्यु का मार्मिक वर्णन है। चरित चर्चा को व्यवहारिक बनाने के लिए किसी घटना का नाटकीय प्रस्तुतीकरण किया है। योगेन्द्र चंद्र बसु के बारे में जानकारी देते हुए गुप्त कहते हैं- ''योगेन्द्र बाबू का शरीर बहुत भारी था, मामूली कुर्सी पर बैठ नहीं सकते थे, रंग अत्यंत काला था। भारी होने के कारण चल-फिर बहुत ही कम सकते थे, आवाज साफ नही थी। बहुत रूक-रूक कर बातें करते थे। उनकी शक्ल देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह बड़े रसिक और नामी सुलेखक हैं। उनकी रसिकता इस दर्जे तक थी कि बात करते समय स्वयं अपने रंग रुप की दिल्लगी किया करते थे। बड़े ही मिष्ट भाषी और सीधे-सादे थे।''[2]

पं. देवकीनन्दन तिवारी के रंग-रुप, गुण-स्वभाव का परिचय गुप्त जी ने संक्षिप्तता परन्तु सुन्दरता से दिया है। गुप्त जी कहते है- ''लम्बे पतले आदमी थे, रंग

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.25

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.46

सांवला और उमर ढलती हुई। साथ कई एक शिष्य थे, जो उनकी बनाई पाठशाला में पढ़ते थे। अपनी बनाई पोथियों की गठरी बगल में रखते थे, उनको बेचते और बांटते भी जाते थे। एक मोटी कमरी पहने हुए थे, सिर पर एक गोल बडी भद्दी टोपी थी। जो उस प्रान्त के पुरानी चाल के ब्राह्मण बहुधा पहना करते हैं, पर बड़े तेजस्वी थे। बड़े-बड़े पण्ड़ितों और उपदेशकों ने महामण्डल से आने जाने का भाड़ा लिया था, पर उन्होंने नहीं लिया। कहा, इसी तरह काम चला जाता है। ऐसे कामों में भाड़ा लेना मैं पसन्द नहीं करता।''[1] गुप्त जी ने उनकी साहित्यिक कृतियों में से एक का ही वर्णन किया और अन्य के बारे में अगले लेख की बात कही। पूरी जानकारी न देना यह चरित चर्चा का कमजोर पहलू रहा है। बाबू रामदीन के बारे में भी उन्होंने साहित्यिक कृतियों की अधूरी जानकारी दी और कहा, ''हरिश्चन्द्र कला के सिवा उन्होंने कई एक पुस्तक बड़े काम की छापी, उनमें से एक तुलसीकृत रामायण में क्षेपक मिला-मिला कर छापने वालों ने उसे एक रही पुस्तक बना दिया है। खड़गविलास प्रेस ने उसे शुद्ध करके मानों रत्नों को कंकड़ों से अलग कर लिया। इसकी बात फिर कभी कहेंगे।''[2]

पं. प्रतापनारायण मिश्र का जीवन-चरित अन्य हिंदी लेखकों से बड़ा है। इसमें आरंभ में गुप्त जी ने प्रतापनारायण मिश्र की जीवनी लिखने के लिए होने वाली कठिनाईयों का वर्णन किया है। अगले पहरे में प्रताप चरित्र लिखा है परन्तु इसमें प्रताप के चरित्र का वर्णन न करके पूर्व पुरुषों का अति सूक्ष्मता से वर्णन किया है। आगे वंश परिचय, शिक्षा पर आकर लेख समाप्त किया है। लेख लम्बा है परन्तु आवश्यक बातें छूट गई हैं। शिक्षा में ही उन्होंने प्रताप नारायण मिश्र के हिंदी और उर्दू प्रेम का जिक्र किया है। ''हिंदी का प्रतापनारायण मिश्र को बड़ा शौक था। हिंदी किताबें और हिंदी अखबार का दिन-रात पढ़ा करते थे। जो पोथियाँ या अखबार रद्दी समझ

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.151

2 वहीं, पृ.149

के फेंक दिये जाते थे, उन्हें भी वह पढ़ डालते थे। उनके अक्षर एक विशेष सूरत-शक्ल के थे। पंक्तियाँ सीधी नहीं लिख सकते थे। टेढ़ी भी यहाँ तक लिखते थे कि दो-दो अढ़ाई अंगुल का फासिला पड़ता था और फिर उसके नीचे टेढ़ी-टेढ़ी पंक्तियाँ लिखे चले जाते थे। उर्दू-हिंदी में ऐसा अधिक करते थे, अंग्रेजी में कम।..... हिंदी वह कैसी जानते थे यह बात यहाँ नहीं बताई जा सकती, वह आगे चलकर मालूम होगी। उनकी हिंदी ही को लेकर उनकी जीवनी लिखी जाती है।''[1]

इन पंक्तियों को देखकर लगता है कि गुप्त जी ने शायक अधूरा ही जीवन चरित लिखा है आगे के लेखों में वे उसे पूर्ण करना चाहते हों जो वो नहीं कर पाए।

जीवित व्यक्तियों के जीवन चरितों में गुप्त जी के समकालीनों के जीवन चरित हैं। पं. गौरीदत्त, मुंशी देवीप्रसाद, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती, मुंशी पीताम्बर प्रसाद आदि हैं। इनका गुप्त जी ने बहुत ही संक्षिप्त वर्णन किया है और इनकी मुख्य विशेषताओं को ही उभारा है। पं. गौरीदत्त की विशेषताओं के बारे में गुप्त जी ने लिखा है- ''मेरठ शहर में नागरी का प्रचार करना काले पत्थर पर पेड़ उगाने से कम नहीं है। वह उर्दू-फारसी का दास मेरठ शहर, मुसलमानी सभ्यता का चेला मेरठ नगर जहाँ के हिन्दू नहीं ब्राह्मण तक दाढ़ी रखना पसन्द करें, वल्लह, सुबहान अल्लह, मासाअल्लह और इन्शा अल्लह की भरमार, जहाँ दिन-रात गजल, शेर मसनबी यहाँ तक कि मरसिये अच्छे-अच्छे पंडितों के मुख पर जारी, ऐसे मेरठ शहर में नागरी फैलाने वाले पंडितों, गौरीदत्त जी की पूजा करने को किसका जी न चाहेगा?''[2]

पं. अमृतलाल चक्रवर्ती का भी गुप्त जी ने बहुत ही संक्षिप्त रुप से परन्तु सारगर्भित लेख लिखा है। हिंदी अखबारों के प्रचार-प्रसार में उनका जो योगदान है उसी को गुप्त जी ने अंकित किया है। गुप्त जी ने लिखा है- ''आप ही की चेष्टा से

---

1 (संपादक) ओंकार शरद, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ चिट्ठे और खत, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981, पृ.76

2 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.140

हिंदी अखबारों को आज हजारों ग्राहक मिलने लगे हैं। आपकी लेखनी के जोर से उर्दू पढ़ने वालों को हिंदी की ओर खींचा। हजारों उर्दू-दास हिंदी के चेले हुए।..... इसमें कुछ संदेह नहीं है कि पण्डित अमृतलाल जी पथ न दिखाते तो हिंदी की उन्नति अभी और अंधेरे में पड़ी रहती। हिंदी पर, हिन्दुस्थानियों पर उनका बड़ा अहसान है।''[1]

उर्दू के जिन साहित्यकारों का गुप्त जी ने जीवन चरित लिखा है उनमें से मौ0 मुहम्मद हुसैन आजाद, मुंशी सज्जाद हुसैन, मुंशी देवीप्रसाद, मुंशी पीताम्बर प्रसाद आदि हैं। इनके जीवन एवं साहित्य के कार्य से प्रभावित होकर गुप्त जी ने इन पर जीवन चरित लिखा। आजाद की पुस्तकों का गुप्त जी ने विस्तृत विवरण दिया है। आजाद की विशेष खूबी को उभारते हुए गुप्त जी ने कहा है, ''वह उड़े तो आसमान के तारे तोड़ ला सकता है और नीचे की तरफ जाय तो समुद्र की काई निकाल ला सकता है। उसका वही कलम 'आबेहयात' और 'नैरंगे ख्याल' लिखकर उर्दू के फजला को हैरत मे डाल सकता है और वही कलम उर्दू की पहिली और मीठी लोरी लिखकर छोटे-छोटे बच्चों को हँसा और चुप करा सकता है।..... वह जिस खूबी से आला दर्जे के ख्याल को कलमबद्ध कर सकता है उसी खूबी से बहुत अदना और मामूली दर्जे की बातें भी कर सकता है।''[2]

आजाद के पिता 'मुहम्मद बाकर' पर हुए अंग्रेजों के अत्याचार को भी गुप्त जी ने बखूबी इस जीवन चरित में उभारा है। आजाद की पुस्तकों के बारे में विस्तृत रूप से बताया है कि किस कदर वे बच्चों को आसान उर्दू सीखने में मददगार है। शिक्षा विभाग में उनके योगदान को अंकित किया है। हिंदू-मुसलमानों के मेल-जोल को भी इस चरित चर्चा में दिखाया है।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.176

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.98-99

साम्प्रदायिक सौहार्द के बढ़ाने के लिए 'अवध पंच' के संपादक 'मुंशी सज्जाद हुसैन' के बारे में लिखा और वर्तमान उर्दू की दशा पर निराशा जताई। गुप्त जी ने लिखा है- ''वह हिंदू-मुसलमानों को एक दृष्टि से देखते हैं। सदा अपने अखबार द्वारा उन्होंने दोनों में मेल रखने की चेष्टा की। उन अखबारों का कभी साथ न दिया जो एक समूह की तरफदारी और दूसरे से विरोध करने को बहादुरी समझते हैं।''[1] उर्दू-हिंदी के साहित्य विद् और इतिहास विद् मुंशी देवी प्रसाद के बारे में गुप्त जी ने विस्तृत रूप से लिखा। उनकी पुस्तकों की विस्तृत जानकारी इनके चरित लेख में प्राप्त होती है। साहित्य सेवा और इतिहास से संबंधित जानकारियों के लिए मुंशी देवी प्रसाद के योगदान को गुप्त जी ने अंकित किया है। हिंदी सेवा की ओर विशेष ध्यान दिलाने के लिए गुप्त जी कहते हैं, ''हिंदी की ओर आपका ध्यान थोड़े ही दिन से हुआ है। कई एक विद्वानों ने आपसे आग्रह किया कि- हिंदी के भण्डार में इतिहास की बहुत कमी है। आप इस कमी को दूर करते तो बड़ा उपकार होता।''[2]

मुंशी देवी प्रसाद के पुत्र मुंशी पीताम्बर प्रसाद पर भी गुप्त जी ने छोटा सा चरित लेख लिखा है और वही आग्रह किया जो इनके पिता को किया था कि हिंदी की तरफ ध्यान आकर्षित किया जाए। उर्दू ज्ञान की तारीफ भी गुप्त जी ने की है परन्तु हिंदी में अभ्यास बढ़ाने की सलाह भी दी है।

विदेशी चिंतकों का महत्त्वः-

हिंदी-उर्दू के साहित्यकारों के साथ-साथ गुप्त जी ने विदेशी चिंतकों के महत्त्व को भी उजागर किया है। शेखसादी, मैक्समूलर और हरबर्ट स्पेन्सर के महत्त्व को चरित चर्चा के माध्यम से सबके सामने लाया है। फारसी कवि 'शेखसादी' का नाम बड़े ही आदर से लिया है। भारतवर्ष के साथ-साथ अन्य देशों में भी उसकी शोहरत

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.209

2 वहीं, पृ.172

की चर्चा, 'गुप्त जी' ने की है। यद्यपि 'शेखसादी' ने हिंदू, यहूदी तथा ईसाई धर्म की आलोचना की है, परन्तु फिर भी गुप्त जी ने उसकी विद्वता तथा नीति वर्णन की प्रशंसा की है। 'शेखसादी' ने सिर्फ मुसलमानों तथा मुस्लिम धर्म की तरफदारी की थी परन्तु गुप्त जी ने सांप्रदायिक सौहार्द का परिचय देते हुए उनकी प्रशंसा में लेख के आरंभ में ही लिखा- ''कुछ ऐसे लोग हैं कि जो जीते हैं, पर लोग नहीं जानते कि वह जीते हैं या मर गये। कुछ ऐसे हैं कि जो मरकर मर गये और कुछ जीकर जीते हैं। पर कुछ ऐसे भी हैं कि सैंकड़ों साल हुए मर गये, भूमि उनकी हड्डियों को कब्र समेत चाट गई, तथापि वह जीते हैं। फारिस के मुसलमान कवियों में 'शेखसादी' भी वैसे ही लोगों में से हैं।''[1] जीवन चरितों में साहित्य के साथ-साथ गुप्त जी इतिहास की जानकारी भी देते हैं।

शेखसादी की तीन पुस्तकों- गुलिस्तान, बोस्तान और करीमा का इतिहास एवं महत्त्व भी गुप्त जी ने उजागर किया है।

चरित लेखन के संदर्भ में गुप्त जी ने नायक के आत्मचरित को अधिक महत्त्व दिया है। आत्मचरित जीवन चरित का महत्त्वपूर्ण अंग होता है। 'मेक्समूलर' के जीवन और अवदान का भारतवासियों के लिए विशेष महत्त्व है। इसी बात को दर्शाने के लिए उन्होंने कहा है- ''जो कुछ तो, मेक्समूलर का जितना हम आदर करें, कम है। वह भारतवासी नहीं थे, आर्य-सन्तान नहीं और आर्य धर्मावलम्बी नहीं थे, यहाँ तक कि आर्य-देश में पैदा भी नहीं हुए थे, ऐसे मनुष्य का जीवन, संस्कृत की महिमा-प्रचार करने में बीत जाय, यह एक बड़ी ही विलक्षण बात है।''[2]

जर्मनी देश के निवासी होते हुए भी मेक्समूलर ने संस्कृत के साथ-साथ वेद, बौद्ध धर्म आदि पर आलोचनाएँ लिखीं। उन्हीं का छपा हुआ ऋग्वेद इस समय (गुप्त

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.227

2 (संपादक) ओंकार शरद, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ चिट्ठे और खत, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981, पृ.26

जी के समय) में भारत के पंडितों के पास पाया जाता है। परन्तु साथ-साथ उन लोगों को भी नसीहत दी है जो कि अंग्रेजी सभ्यता के आवरण में अपनी संस्कृति को भूल बैठे हैं। मेक्समूलर को आदर और ऐसे लोगों को नसीहत देते हुए उन्होंने कहा है- ''उन्होंने कृस्तान होकर संस्कृत का आदर किया, उनकी सारी उमर संस्कृत की आलोचना में बीती, तिस पर भी वह पक्के कृस्तान थे, अपने कृस्तान धर्म को सबसे ऊँचा कर दिखाने में उन्होंने कमी नहीं की। हमारे देश में अंगरेजी आदि पढ़कर लोग पागल हो जाते हैं। ऐसे लोगों को देखना चाहिए कि क्योंकर मेक्समूलर संस्कृत चर्चा करते हुए संसार भर के धर्मों की चर्चा करते हुए भी अपने कृस्तान धर्म में दृढ़ थे।''[1]

'हरबर्ट स्वेन्सर' के बारे में गुप्त जी ने व्यवहारिक होकर लिखा। स्पेन्सर इंग्लैंड का एक दार्शनिक था जिसने अपनी आत्मकथा लिखी थी। दर्शनशास्त्र की आलोचना ही स्पेन्सर का मुख्य काम था। जीवन चरित में सम्पूर्ण जीवन का उल्लेख होता है। परन्तु गुप्त जी द्वारा लिखे गए चरितों में पारिवारिक जीवन के प्रति अवहेलना पाई जाती है। केवल 'हरबर्ट स्पेन्सर' के अविवाहित रहने की चर्चा एक पूरे प्रसंग में की है। जीवन का व्यक्तिगत पक्ष भी सम्पूर्ण जीवन का एक पहलू है। चरित्रिक विशेषताओं की तरफ गुप्त जी का ध्यान अधिक रहा है। जिससे जीवन चरित का एक पक्ष अधूरा ही रह जाता है। यह उनके चरित लेखन का एक कमजोर पहलू ही है। विशेषताओं के साथ-साथ चरित नायक की कमियों को भी गुप्त जी ने उभारा है, ''उसने कभी कोई उपाधि न ली, कभी राजा का दर्शन करने न गया, कभी धनी की सेवा न की और न किसी का सभापति हुआ। कभी खुली वक्तृता न की, कभी अपनी किसी को आलोचना नहीं करने दी, कभी किसी समाज या मंडली से कोई सम्मान या मर्यादा का पद न

---

1 (संपादक) ओंकार शरद, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ चिट्ठे और खत, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981, पृ.28

लिया। कभी किसी से कुछ न मांगा और कभी मित्र से रुपये आदि की सहायता न ली। सामाजिकता या लौकिकता उसमें न थी।''[1]

इस लेख में गुप्त जी ने 'हरबर्ट स्पेन्सर' के 'आत्मचरित' को ही केन्द्र में रखा है। उक्त लेख में पात्रों का जीवन एवं चरित्र को प्रमाणिक रूप से उपस्थित करने की चेष्टा दिखाई पडती है।

इतिहास से सम्बन्धित व्यक्तियों जैसे अकबर, टोडरमल शाइस्ता खाँ जैसे शासकों पर भी गुप्त जी ने अपनी लेखनी चलाई है। 'बाबू बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन' में श्री प्रेमसैन सिंह का कहना हैः- ''इतिहास प्रसिद्ध, पात्रों, जैसेः 'अकबर बादशाह' 'टोडरमल', 'शाइस्ता खाँ' प्रभृति व्यक्तियों पर भी गुप्त जी ने लिखा है। उपर्युक्त निबन्धों का रूप गठन काफी पुष्ट है। उनमें तथ्यों की सुसम्बद्ध योजना पर ही लेखक की दृष्टि अधिक रही है। भाषागत सरलता उनकी अपनी विशेषता है।''[2] बालमुकुंद गुप्त एक जागरूक देशभक्त थे। अपनी इसी भावना के कारण ही उन्होंने अकबर जैसे महान शासक का जीवन चरित खींचा। जिस समय गुप्त जी ने अकबर का जीवन चरित लिखा उस समय अकबर की त्रिशतवार्षिकी मनाने की योजना चल रही थी परन्तु बंग-भंग के कारण वह पूरी न हो सकी। इस जीवन चरित में उन ऐतिहासिक परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन गुप्त जी ने दिया है, जिसके कारण अंग्रेज इस देश में आए। अंग्रेजों की दशा उस समय क्याथी? अकबर के समय भारतीय प्रजा कितनी समृद्ध और खुशहाल थी। हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के लिए तो अकबर की मिशाले आज भी दी जाती है। यह गुप्त जी की धर्म निरपेक्षता का प्रमाण है। अकबर के नौ रत्नों का जिक्र गुप्त जी ने किया है। ये नौ रत्न अपने-अपने क्षेत्र में माहिर थे और हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही उन नवरत्नों में शामिल था।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.240

2 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शत वार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965 पृ.49

गुप्त जी ने लिखा है- ''अकबर दुनिया के नेकनाम बादशाहों में से था। उसने नेकी और नेकनामी के बड़े-बड़े काम किये, जिनके कारण आज तक लोग उसका नाम बड़े प्रेम से लेते हैं। उसे लोगों ने 'सुलहकुल' की उपाधि दी। जिसका अर्थ है सबसे मिलकर चलने वाला। अकबर में सबसे बड़ा गुण यह था कि उसे किसी जाति, किसी सम्प्रदाय और किसी धर्म से द्वेष नहीं था। हिन्दुओं को उसने ऐसा प्रसन्न किया कि वह उस पर जी-जान से मोहित थे। हिन्दुओं ने उसे 'जगदगुरू' तक की उपाधि दे डाली थी। हिन्दी और संस्कृत पुस्तकों में अकबर की बहुत कुछ प्रंशसा लिखी गई है।''[1] अकबर कालीन वस्तुओं के भाव भी गुप्त जी ने दिए है और उसकी तुलना आज (वर्तमान अंग्रेज शासकों) के समय से की है। अकबर के समय में देश कितना समृद्ध था और अंग्रेजों की स्थिति कितनी हीन थी और गुप्त जी के समय तक देश की स्थिति कितनी हीन हो गई थी, इस अन्तर्विरोध को उभारने के लिए 'जार्ज न्यूबरी' का वृतान्त ने गुप्त जी ने लिखा है। दोनों समय की तुलना करते हुए लेखक ने लिखा है:- ओह! तीन सौ साल के उस समय और आज के समय में कितना अन्तर है। उस समय के भारतवर्ष और आज के भारतवर्ष में कितना अन्तर है। अंग्रेजों के उस समय के प्रताप और आज के प्रताप में कितना अन्तर है। उस समय विलायत की रानी ने भारत के बादशाह से अपनी कई आदमियों को सुखपूर्वक दरबार में रखने की प्रार्थना की थी।''[2]

चरित साहित्य में टोडरमल एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु वह सम्पूर्ण व्यापारी वर्ग के लिए आदर्श भी है। अकबर के नौ रत्नों में से एक रत्न राजा टोडरमल भी थे। अकबर के चरित चित्रण में गुप्त जी ने इनकी प्रंशसा की है। इनके चरित लेखन में व्यापारी वर्ग से सम्बन्धित हुण्डी का स्वरूप, सराफ, चौधरी,

---

1 (संपादक) निर्मला जैन, रेखा सेठी, निबंधों की दुनियाः बालमुकुंद गुप्त, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2009, पृ.164-165

2 (संपादक) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 2005, पृ.57

साहूकार के लक्षण, बहीखाता लिखने की विधि, व्यापार नीति आदि की चर्चा की है। इनकी मुख्य विशेषता यह है कि टोडरमल ने इस व्यापार ज्ञान को छन्दों में बाटा है। इसके अतिरिक्त गुप्त जी ने टोडरमल की अन्य विशेषता उनकी बहादुरी और उनकी कविता की भी चर्चा की है। टोडरमल के चरित लेखन में गुप्त जी कुछ संशय में थे इसलिए वे अन्त में कहते हैः- '' कहते है कि बहीखाता फुरती से लिखा जावे इसके लिए टोडरमल ने मात्रा-विहीन मुडिया अक्षर चलाकर उनका नाम सराफी रखा था। क्या वैश्य, क्या खत्री और क्या दूसरे सराफे वाले वही अक्षर लिखते है, इससे सब विद्या भूल गये। नागरी को इन्हीं अक्षरों ने चौपट किया। यदि यह बात सत्य हो तो टोडरमल के सिर कंलक समझिये। बिरादरी की शक्ति को टोडरमल ने इतना बढ़ाया था कि विवाह आदि में उनके गीत गाये जाते है। ऐसे पुरूष ने क्या मुडिया अक्षर चलाये होंगे?''[1]

इस लेख से यही ज्ञात होता है कि इसमें कुछ अपूर्णता रह गई है। शायद आगे गुप्त जी लिखना चाहते थे परन्तु वह पूर्ण नहीं हो सका।

शाहस्ता खाँ के जीवन चरित में गुप्त जी ने जीवन के उस हिस्से को शामिल किया है जिसमें शाइस्ता खाँ का अंग्रेजों से विरोध दिखाया गया है। अंग्रेजों की चालाकी और कूटनीति को भाँप कर शाइस्ता खाँ ने अंग्रेजों का व्यापार करना मुश्किल कर दिया था। परन्तु प्रजा के साथ उसने बहुत उदारता दिखाई थी। रोजमर्रा की चीजों को बहुत सस्ता कर दिया था। यद्यपि औरंगजेब के कहने पर उसने हिन्दुओं और यूरोपियन जातियों पर जाजिया कर लगाया था, परन्तु वह न्यायप्रिय और दयावान प्रकृति का शासक था। उसके राज्य में प्रजा सुखी थी। इस बात का उल्लेख गुप्त जी ने 'शाइस्ता खाँ का खत फुलर साहब के नाम' के निबन्ध में किया है। अंग्रेजों से उसकी तुलना की है। गुप्त जी 'शाइस्ता खाँ' की इसी विशेषता को दर्शाया है। इसके

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.68-69

जीवन के अन्य पहलू अछूते ही रह गए। अन्त में गुप्त जी ने लिखा है- इस तरह वर्षो से चलता हुआ अंग्रेजी व्यापार शाइस्ता खाँ के शासनकाल के अन्त तक एकदम जड़ से उखाड़ दिया गया।..... बंग इतिहास के लेखक मार्शमैन लिखते है कि यद्यपि अंग्रेजों और अन्य यूरोपियन जातियों से शाइस्ता खाँ का बहुत कड़ा बर्ताव रहा पर देशी प्रजा उसे बहुत चाहती थी। वही साहब कहते है कि उसके समय में 1 पाई का 8 मन अनाज बिकता था। इस बात की यादगार में उसने ठाके के नगर द्वार बनवाए और उन पर लिख दिया कि जब तक कोई हाकिम ऐसा सस्ता अनाज न कर दे, इस द्वार से कभी प्रवेश न करें।''[1]

दो ऐतिहासिक संतों के जीवन चरित भी गुप्त जी ने लिखे। 'साधु हरिदास' और 'साधु रामस्वरूप सीहा' ये जीवन चरित गुप्त जी की धार्मिक भावना को दर्शाते हैं। साधु हरिदास पर तो गुप्त जी ने पुस्तक भी लिखी हैं। ये साधु महाराजा रणजीत सिंह के समय के थे। जिनके समय में इनके चमत्कार हुए थे वे लोग जीवित नहीं हैं। इस बात का गुप्त जी को अफसोस रहा। उस लेख में गुप्त जी ने उनकी साधना का महत्त्वपूर्ण अंश प्रस्तुत किया है और साधना कैसी करनी चाहिए ये भी बताया है। साथ-साथ ऐसे साधुओं की उपेक्षा पर चिंता जाहिर करते हुए कहा है- ''हिन्दुओं के दर्शन शास्त्र पर कृस्तानों को श्रद्धा नहीं। उधर हम हिंदू लोग घोर अंधकार में पड़े हुए, आप ही अपने को भूल गये हैं। हमें अपने ऊपर आप ही विश्वास नहीं है, हमारा विश्वास करेगा कौन? वह कृस्तान लोग होते और स्वयं गवाही देते तो क्या अच्छा होगा? कैसा विलक्षण आदर सब लोग करते?''[2]

दूसरा लेख साधु रामस्वरूप सीहा का है। इसमें लेखक ने इनके साधु बनने की प्रक्रिया से लेकर दादूपन्थी होने की कहानी कही है। उनके सीहा (रेवाड़ी) में बसने

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.78-79

2 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.179

और फिर उनके चमत्कारों की कहानी कही है। ''बाबाजी विरक्त साधु थे, परन्तु सीहा वालों के लिए हकीम थे, सब फैसले उनके द्वारा होते थे। सीहे के वही वैद्य थे, उन्हीं के द्वारा सब अच्छे होते थे।..... वह गये और अपने कलिकाल के सिर पर नृत्य करते हुए, सतयुग को अपने साथ ले गये।''[1]बाबा की महत्ता और उनके जाने के बाद की दशा दोनों स्थितियाँ गुप्त जी ने स्पष्ट की है।

गुप्त जी द्वारा लिखे गये जीवन चरितों में बहुत सी कमियाँ रह गई हैं। कहीं उन्होंने नायक के साहित्यिक कार्य को मुख्य केन्द्र बिन्दु बनाया है, तो कहीं उसके आत्मचरित को। इतिहास प्रसिद्ध पात्रों की मुख्य विशेषताओं को लेख का मुख्य केंद्र माना है। नायक के बाह्य व्यक्तित्व का चित्रण एक या दो चरित लेखों में शब्द चित्रों के माध्यम से दिया है जैसे- गौरीदत्त, देवकीनन्दन तिवारी आदि। अन्य चरित लेखों में इनका अभाव है। प्रतापनारायण मिश्र के चरित लेखन में उनके जीवन, वंश, क्रम आदि का परिचय तो विस्तृत रुप से दिया परन्तु साहित्यिक कृतियों का विवेचन तक नहीं किया। इसी तरह अन्य नायकों के चरित लेखों में भी साहित्यिक कृतियों के विवेचन में कमी पाई जाती है। जीवन चरित में जीवन के सम्पूर्ण पक्ष का उद्‌घाटन होना चाहिए था, जोकि नहीं हो पाया।

परन्तु इन कमियों के होते हुए भी ये चरित लेख अपना महत्त्व रखते हैं। चरित नायक के जन्म, वंश, शिक्षा, स्वभाव, गुण, उदारता, रचनाएँ, मृत्यु आदि का बड़ा ही मार्मिक और रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। बीच-बीच में रोचक प्रसंग भी है। वैवाहिक जीवन का विवरण केवल 'स्पेन्सर' के प्रसंग में है। परन्तु गुप्त जी चरित लेखकों की पहली पीढ़ी में से एक थे। उस युग की न्यूनताएँ, उपलब्धियाँ और सीमाएँ उनके साथ थी। सामग्री का अभाव भी इन सीमाओं का मुख्य कारण था। परन्तु जागरूक देशभक्त सचेतन पत्रकार और हिंदी के परम सेवक होने के साथ-साथ उन्होंने इस दिशा में जो पहल की वह आज भी सराहनीय है।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.185

5.3 संपादित/अनूदित रचनाएँः-

डॉ. के.सी. यादव के अनुसार बाबू बालमुकुंद गुप्त ने छोटी-छोटी, मौलिक, संपादित और अनूदित सत्रह पुस्तकों की रचना की थी। मौलिक रचनाओं में- हिंदी भाषा, शिवशंभु के चिट्ठे, चिट्ठे और खत, स्फुट कविताएँ, चरित चर्चा, उर्दू-हिंदी संवाद पत्रों का इतिहास, खिलौना और खेल-तमाशा आदि हैं। हिंदी भाषा नाम की पुस्तक 'गुप्त जी' की मृत्यु के कारण अपूर्ण रह गई। उनकी मृत्यु के बाद उनके मित्र और सहयोगी पं. अमृतलाल चक्रवर्ती के द्वारा यह पुस्तक छापी गई। 'शिवशंभु के चिट्ठे' 'गुप्तजी' की सबसे प्रसिद्ध रचना है। पहले ये चिट्ठे 'गुप्त जी' के मित्र बाबू दयानारायण निगम के प्रसिद्ध उर्दू मासिक 'जमाना' (कानपुर) में छपे थे। फिर छः चिट्ठों का प्रकाशन अंग्रेजी में हुआ। इन चिट्ठों को 'गुप्त जी' ने 1906 में पाठकों की माँग पर पुस्तक रूप में छपवा दिया। इन चिट्ठों का राजनैतिक समीक्षा साहित्य में बहुत महत्त्व है। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध इन निबंधों ने आग के गोले उगले थे। इनकी ताजगी इतने वर्षों के पश्चात भी उतनी ही है।

'चिट्ठे और खत' नाम की रचना भी 'गुप्त जी' पाठकों के अनुरोध पर पुस्तककार रूप में छपवाई। ये 'चिट्ठे' और दो खत जिनमें 'शाइस्ता खाँ' और अलीगढ़ के नवाब 'सर सैयद अहमद खाँ' के खत भी थे, इनका संग्रह करवाकर पुस्तककार रुप में छपवाने को दिया, परन्तु बीच में ही गुप्त जी की मृत्यु हो गई, तो इन्हें बाबू श्रीयुत बाबू यशोदा अखोई की तरफ से प्रकाशित करवाया गया। ये निबंध राजनीति के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व भी रखते हैं।

'स्फुट कविताएँ' में गुप्त जी की कविताएँ हैं। 1905 तक की कविताएँ 'गुप्त जी' ने छपवाई और 1905 से 1907 तक की कविताएँ 'झाबरमल शर्मा' के प्रयत्नों से उसमें सम्मिलित हो सकी। गुप्त निबंधावली में भी इनका संग्रह देखा जा सकता है। 'शिवशंभु के चिट्ठों' की तरह इन कविताओं में देश की वर्तमान दशा और अंग्रेज शासकों की क्रूर नीतियों का पर्दाफाश किया है। इनमें धार्मिक, सामाजिक तथा

राजनैतिक विषयों की कविताएँ हैं। 'चरित चर्चा' और 'उर्दू-हिंदी संवाद पत्रों के इतिहास' को के.सी. यादव ने अप्रकाशित माना है। 'चरित चर्चा' का संग्रह 'झाबरमल्ल शर्मा' और 'बनारसी दास चतुर्वेदी' द्वारा संपादित गुप्त निबंधावली (1950) में मिलता है। इनका पुस्तकार रूप में संस्करण अभी तक सामने नहीं आया है। इस चर्चा में 'गुप्त जी' ने हिंदी, उर्दू और इतिहास के प्रमुख व्यक्तियों की जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित कर हिंदी समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया था।

'उर्दू-हिंदी संवाद पत्रों का इतिहास' भी गुप्त-निबंधावली में प्रकाशित हैं। 'राधाकृष्ण दास' के बाद 'गुप्त जी' दूसरे इतिहासकार हैं जिन्होंने इस तरह का प्रयत्न किया। 'गुप्त जी' ने इस इतिहास में तात्कालिक उर्दू-हिंदी पत्रों के गुण-अवगुण, जन्म-मृत्यु, संपादक मालिक का परिचय, अखबार की पॉलिसी आदि बातें, विस्तार से कही है। सन् 2010 में 'बृज किशोर वशिष्ट' ने 'स्वराज प्रकाशन' नई दिल्ली से इन्हें पुस्तकार रुप में छपवाया। हिंदी और उर्दू भाषाओं के विकास में यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा है- ''गुप्त जी की रचनाओं में सबसे अधिक महत्त्व तथा स्थायित्व किस रचना में है। यह प्रश्न विवादग्रस्त हो सकता है पर इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि पत्रों के इतिहास के विषय पर वे हम लोगों के एकमात्र पथ-प्रदर्शक रहे हैं। उनके पूर्व सिर्फ एक छोटी सी पुस्तिका स्वर्गीय बाबू राधाकृष्ण दास ने लिखी थी पर वह बिल्कुल अधूरी थी।''[1]

अब तक जिन छह रचनाओं की चर्चा हुई है, वे सभी भारतमित्र में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे। परंतु 'गुप्त जी' की दो मौलिक रचनाएँ 'खेल-तमाशा' और 'खिलौना' इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से छपकर आई थी। 'गुप्त जी' ने ये दोनों पुस्तकें बच्चों के लिए छद्म नाम (रसिकलाल दत्त) से छपवाई थी। इस छद्म नाम के पीछे भी एक रहस्य था। 19वीं शताब्दी के अंत तक हिंदी में बच्चों के लिए पुस्तकें नहीं लिखी

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1950 पृ.238

जाती थीं। कुछ अन्य भाषाओं, अंग्रेजी, बंगला आदि में बच्चों के लिए पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं। गुप्त जी ने पुस्तक (खिलौना और खेल-तमाशा) पहले बंगला में लिखी थी, उसके बाद गुप्त जी ने यह हिंदी में लिखी। परन्तु दोनों ही भाषाओं में लेखक का नाम 'रसिकलाल दत्त' है। डॉ. के.सी. यादव ने इस रहस्य को सुलझाते हुए कहा है- ''गुप्त जी साहित्य की बारीकियों की तरह ही, समाज की पेचीदगियों की भी गहरी समझ रखते थे। तत्कालीन वातावरण में उनकी बंगला पुस्तक के प्रकाशन में आने वाली अड़चनों को उन्होंने आने से पहले ही भांप लिया था। जब हिंदी में बच्चों की पुस्तकें लिखने, छपने का चलन ही नहीं है तो एक हिंदी लेखक बंगला भाषा में बच्चों की पुस्तकें कैसे लिख सकता है? अतः वह विशुद्ध बंगला भाषी बन गए- रसिककाल दत्त, और पुस्तक छप गई। चूंकि हिंदी संस्करण के लिए विषयवस्तु ताना-बाना, चित्र आदि सब चीजें बंगला 'खिलौना' से ली गई थीं, सो यहाँ भी रसिकलाल दत्त बना रहना पड़ा।''[1] इन पुस्तकों में गुप्त जी ने चित्रों के माध्यम से, छोटे-छोटे गीतों के माध्यम से, छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से बच्चों को मात्राओं की जानकारी दी है। सचित्र रूप से लयात्मक गीत बनाकर, प्रतीकों के द्वारा बच्चों को हिंदी की वर्णमाला की जानकारी दी है। इ और ई का योग समझाते हुए गुप्त जी ने लिखा है-

''अरी चमेली <u>अँखियां</u> खोल।
छोड़ रूठना मुँह से बोल।
आया है ससुराल का <u>नाई</u>।
लाया तेरे लिये <u>मिठाई।</u>
रथ में बैठा बनरा आवे।
तुझको साथ <u>बिठा</u> ले जावे।''[2] (खेल तमाशा)

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-8, खिलौना (लेखक- रसिकलाल दत्त, बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.9-10 (सम्पादकीय)

2 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-9, खेल-तमाशा (लेखक- रसिकलाल दत्त, बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.15

जो शब्द अंडरलाइन हैं वो गुप्त जी ने उभार कर लिखे हुए हैं। इन बड़े अक्षरों से अभिप्राय यह था कि इन्हें बच्चे पहचान कर, याद कर लें तब बाद में मिलाकर पढ़ने में आसानी होगी। 'खेल-तमाशा' में गुप्त जी ने मात्राओं की जानकारी चित्रों और कविताओं के माध्यम से दी है। इ, ई, ा, उ, ऊ, ऋ आदि मात्राओं की जानकारी दी गई है। 'खिलौना' में गीतों और कहानियों के माध्यम से बच्चों को खेल-खेल में शिक्षा देने का प्रयास किया है। उस समय यह हिंदी में पहला ही प्रयास था। 'खिलौना' पहले आई थी, 'खेल-तमाशा' बाद में। दोनों पर ही लेखक का नाम 'रसिकलाल दत्त' लिखा हुआ था।

खिलौना पुस्तक के बारे में एक और विवाद प्रसिद्ध है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'खिलौना' में छपी एक कविता 'गिलहरी का विवाह' की आलोचना की। 'भारतमित्र' में एक सज्जन ने द्विवेदी जी को कहा कि- आपकी आलोचना ठीक नहीं है। फिर कुछ, कहा-सुनी दोनों ही तरफ से हुई। 'द्विवेदी जी' के मित्र पं. श्रीधर पाठक ने कहा है कि आप जिसकी कविता की आलोचना कर रहे हैं वह भारतमित्र सम्पादक 'बालमुकुंद गुप्त' ही है। तो 'द्विवेदी जी' ने 'गुप्त जी' को माफीनामा लिख कर भेजा कि उन्हें नहीं पता था कि वह पुस्तक आपकी लिखी हुई है। 'गुप्त जी' ने द्विवेदी जी को लिखकर भेजा कि- ''पोथी चाहे मित्र की हो या शत्रु की, अपने की हो या बेगाने की, आलोचना उसकी न्याय से होनी चाहिए। यह तो कोई बात नहीं कि मित्र की हो तो उसकी प्रशंसा की जाये और शत्रु की हो तो निन्दा। ऐसी अनुदारता लेकर साहित्य के मैदान में कभी आगे न बढ़ना चाहिये''[1]

ऐसी निष्पक्ष सोच के व्यक्ति थे बालमुकुंद गुप्त सदैव उन्होंने इन्हीं सिद्धान्तों का पालन किया। आलोचना करने में उन्होंने छोटे-बड़े, मित्र-शत्रु किसी को नहीं छोड़ा।

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.428

गुप्त जी की संपादित/अनूदित रचनाओं में रत्नावली (नाटिका), हरिदास रासपंचाध्यायी, भंवरगीत, सर्पाघात चिकित्सा आदि हैं। डॉ. के.सी. यादव ने इनकी चार रचनाओं को इसी श्रेणी में सम्मिलित किया है। जिनमें से जहांगीर नामा, मडेल भगिनी, सती प्रताप नाटक (उर्दू) और राजाराम मोहन राय की जीवनी (उर्दू) को सम्मिलित करते हैं। परन्तु ये चार रचनाएँ अभी तक प्रकाश में नहीं आई हैं। पं. झाबरमल शर्मा ने गुप्त जी को लिखे अपने संस्मरण 'उन दिनों के मित्र' में इस अनुवाद के बारे में लिखा है- ''राजाराम मोहन राय की जीवनी का बंग भाषा से और सती प्रताप नाटक का हिंदी से उर्दू में उल्था गुप्त जी ने अपने गुड़ियानी रहने के दिनों में ही किया था। ये दोनों पुस्तकें मुंशी प्रतापकृष्ण के रहबर प्रेस, मुरादाबाद से प्रकाशित हुई थी।''[1]

'हिन्दोस्तान' छोड़ने के पश्चात् 'गुप्त जी' अपने ग्राम गुडियानी गए हुए थे। वहाँ पर 'हिंदी बंगवासी' के संस्करण मंगवाकर पढ़ते थे। 'मडेल भगिनी' का दोषपूर्ण अनुवाद, जब उन्होंने पत्र में पढ़ा तो संपादक को पत्र लिखा। संपादक ने उन्हीं से सही अनुवाद करने की प्रार्थना की। 'गुप्त जी' ने सही अनुवाद करके भेजा तो संपादक पं. अमृतलाल चक्रवर्ती प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके और गुप्त जी को 'हिंदी बंगवासी' में आने का न्यौता दिया। इसी अनुवाद के बारे में पं. झाबरमल्ल शर्मा ने संस्मरण 'बंगवासी का बुलावा' के बारे में लिखा है। संपादक अमृतलाल चक्रवर्ती के द्वारा गुप्त जी को भेजे गए पत्र से गुप्त जी द्वारा 'मडेल भगिनी' का 'शिक्षिता हिन्दूवाला' के नाम से अनुवाद करने की जानकारी मिलती है। अमृतलाल चक्रवर्ती गुप्त जी को पत्र में लिखते हैं- ''आपने पण्डित भुवनेश्वर मिश्र जी के नाम से 'मडेल भगिनी' का जो अनुवाद भेजा है, वह पण्डित जी की गैरहाजिरी में मुझे ही खोलना पड़ा। आपका अनुवाद सब प्रकार से प्रशंसा योग्य हुआ है और हम लोगों ने छापना

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.51

भी आरंभ कर दिया है।''[1] परन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक 'गुप्त जी' का किया हुआ 'मडेल भगिनी' का हिंदी अनुवाद जो 'शिक्षिता हिंदू बाला' के नाम से हुआ था अभी तक सामने नहीं आया है।

'हरिदास' नाम की पुस्तक के बारे में कहा जाता है कि यह बंगला के 'बाबू रंगलाल मुखोपध्याय' की रचना का हिंदी अनुवाद है जो 'बालमुकुंद गुप्त' ने किया था। परन्तु यह पुस्तक अनुवाद न होकर अपनी भाषा में (हिंदी में) लिखी गई गुप्त जी की रचना है। सामग्री अवश्य 'रंगलाल मुखोपध्याय' की है। पहले यह रचना उर्दू में छपी थी, बाद में हिंदी में छपी थी। 'गुप्त जी' ने 'हिंदी बंगवासी' के पाठकों को देने के लिए तथा 'भारतमित्र' के पाठकों को देने के लिए दो संस्करण निकाले। 'हरिदास' और 'रामस्वरूप' नामक संतों का गुप्त जी ने जीवन चरित भी लिखे हैं। परंतु 'हरिदास' के चमत्कारों का वर्णन अति संवेदनशीलता से 'हरिदास' नामक पुस्तक में किया है। साथ-साथ भारतवर्ष में साधुओं के अभाव की चर्चा की है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आने वाले लोगों को अपने सिद्ध पुरुषों पर भी ध्यान देने को कहा है। 'हरिदास' की योग समाधि की आदि से अन्त तक चर्चा की है। महाराजा रणजीत सिंह, ध्यान सिंह, अंग्रेज अधिकारियों द्वारा इनकी सत्यता का प्रमाण दिया है। इन्हीं के साथ के रेवाड़ी के साधु इन्द्रभान और साथ रामस्वरूप सीहा की भी चर्चा की है। इस पुस्तक में गुप्त जी ने जितने भी संदर्भ लिए हैं वे सभी अंग्रेज अधिकारियों की पुस्तकों से लिए हैं। ''गुप्त जी की डायरी के अनुसार उनकी 'हरिदास' नाम की पुस्तक सन् 1896 ई0 तारीख 14 मई को बंगवासी स्टीम प्रेस में छपने को दी गई और वह 23 जुलाई 1896 को छपकर तैयार हुई। उसके भी लोगों ने बड़ा पसन्द किया था। तदंतर

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.63

उर्दूवालों के आग्रह पर गुप्त जी को सन् 1898 में हरिदास का उर्दू में अनुवाद करना पड़ा। हरिदास का वह उर्दू संस्करण 'रहबर' प्रेस से प्रकाशित हुआ था।''[1]

'गुप्त जी' हरिदास जी के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं- ''केवल समाधि ही का गुण हरिदास जी में न था और भी कितने ही महात्माओं के योग्य गुण इन महापुरुष में थे। अपनी आश्चर्य लीलाओं से उन्होंने लोगों को मोहित कर डाला था। भगवान ने उनको जो गुण दिये थे, उनसे वह सर्वत्र पूजनीय थे।''[2]

'हरिदास' के साथ-साथ भारतीय सभ्यता और संस्कृति का भी प्रमाण गुप्त जी ने दिया है। यह पुस्तक गुप्त जी ने इसलिए लिखी ताकि लोग अपने प्रदेश के साधुओं को पहचान सके। ऐसे विलक्षण साधु हमारे बीच हुए हुए हैं जो अपने योग से अंग्रेजों को प्रभावित कर सकते थे, परन्तु हम उनको भूल बैठे हैं। भूमिका में गुप्त जी ने लिखा है- ''अंग्रेजों के 'मिस्मिरिजम्' और 'थियोसोफिवालों' के योगाभ्यास से दबे हरिदास को बंगाल में अंग्रेजी पढ़े बंगाली बाबू की लेखनी से उखड़वाया। मेरी इच्छा हुई कि मैं हिन्दोस्थानी पोशाक में हरिदास जी के पंजाबी और हिन्दुस्थानियों को दर्शन कराऊँ जिससे वह अपने देश के गौरव साधु हरिदास जी को पहचानें तथा अपनी भूल पर कुछ तो लज्जित हों। उसी से यह सब किया है।''[3]

जिससे वे अपनी संस्कृति और सभ्यता को जाने। हिंदी बंगवासी के समय की गुप्त जी की हिंदी सेवा के रुप में 'हरिदास' और 'रत्नावली नाटिका' का नाम लिया जा सकता है। 'रत्नावली नाटिका' प्रसिद्ध संस्कृत कवि श्री हर्ष देव की रचना है। इस संस्कृत रचना का गुप्त जी ने हिंदी अनुवाद किया था। इस रचना के अनुवाद का कार्य भारतेंदु ने आरंभ किया था परन्तु वे इसे पूरा न कर सके। भारतेंदु ने 'नाटक'

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.78

2 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-5, हरिदास (संकलनकर्त्ता- बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर- 18, गुडगांव, 2012, पृ.66

3 वहीं, पृ.17 (भूमिका से)

नाम की पुस्तक में इसका जिक्र किया है। 1889 ई0 में गुप्त जी ने पं. प्रतापनारायण मिश्र से अनुवाद करने का निवेदन किया। परन्तु वे भी इस कार्य को पूरा नहीं कर सके। अंत में 1898 ई0 में सितम्बर के महीने में गुप्त जी ने इस कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया। उस समय गुप्त जी हिंदी बंगवासी में थे। हिंदी बंगवासी के पाठकों को उन्होंने उपहार स्वरूप यह पुस्तक दी थी। परंतु गुप्त जी अपने इस कार्य से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने 1902 में इस पुस्तक का दोबारा अनुवाद किया, यह अनुवाद पहले से अधिक शुद्ध था। फिर 'भारतमित्र' के पाठकों के उपहार स्वरूप वह पुस्तक दी। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा- ''मुझसे जहाँ तक बन पड़ा है अपनी पुस्तक को शुद्ध और सरल बनाने में त्रुटि नहीं की। इस नाटिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था। क्योंकि मैं संस्कृत अच्छी नहीं जानता। तथापि स्वर्गीय भारतेंदु जी पर बहुत भक्ति होने के कारण मैंने यह काम किया। मुझे इससे बड़ा आनन्द है कि भारतेंदु जी द्वारा सबसे पहले छेड़ी हुई यह पुस्तक आज पूरी हो गई।''[1]

गुप्त जी संस्कृत नहीं जानते थे परन्तु फिर भी उन्होंने अपने प्रयास से 'रत्नावली नाटिका' का अनुवाद किया। 'गुप्त जी' के अनुवाद की हिंदी समाज में बहुत प्रशंसा हुई। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के द्वारा गुप्त जी को एक पत्र लिखा है- ''रत्नावली का जो अनुवाद आपने किया है वह हमने देखा है- देखा ही नहीं अच्छी तरह मनन किया है।... इसका जब-जब हमको स्मरण आता है, तब-तब साथ ही साथ आपका अनुवाद भी स्मरण आता है।..... आप कहते हैं कि आप संस्कृत नहीं जानते। न जानते होंगे- जब आप नहीं जानते तो तब तो ऐसा उत्कृष्ट अनुवाद कर सके। यदि जानते होते तो न जाने क्या दशा होगी। निश्चय आपका रत्नावली का अनुवाद बहुत ही सरस है।''[2]

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-4, रत्नावली नाटिका, (अनुवादकः बाबू बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.20

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.77

गुप्त जी ने जो कार्य किया वह जी-जान से किया, चाहे इसके लिए उन्हें अथक प्रयत्न ही क्यों न करना पड़ा। कई बार वे स्वयं के किए हुए कार्य से ही संतुष्ट नहीं होते थे और उसमें जब तक जी-जान नहीं लगा देते थे, चैन नहीं लेते थे। इसी प्रकार गुप्त जी ने अन्य सम्पादन कार्य किए जिनमें से रास-पंचाध्यायी और भंवरगीत भी मुख्य है। मध्यकालीन कवि 'नन्ददास' जो अष्ठछाप के आठ कवियों में से एक थे, उनकी दो मुख्य कविताओं का संकलन गुप्त जी ने किया। इसकी भूमिका में उन्होंने शुद्ध रचना मिलने में होने वाली कठिनाईयों का भी जिक्र किया है। परन्तु जैसा शुद्ध संकलन उन्होंने किया वह भी सराहनीय है।

पुराने कवियों के प्रति गुप्त जी के मन में कितनी श्रृद्धा और प्रेम था। यह बात उनके द्वारा लिखी गई 'रासपंचाध्यायी' और 'भंवरगीत' की भूमिका से पता चलता है। गुप्त जी ने लिखा है- ''नन्ददास की कविता इतनी सुन्दर और स्वच्छ है कि उनके लिए एक कहावत चली आती है- सब गड़िया नन्ददास जड़िया' अर्थात् और सब कवि घड़ने वाले और नन्ददास जड़ने वाले। सब जानते हैं कि घड़ने वालों से जड़ने वालों का काम बहुत सफाई का और बारीक होता है।''[1]

ये दोनों रचनाएँ 'गुप्त जी' ने 'भारतमित्र' के पाठकों को उपहार स्वरूप देने के लिए संकलित की थी। दोनों रचनाएँ ब्रजभाषा की थी। इन रचनाओं का संकलित करने का उद्देश्य अपनी धरोहर, अपनी संस्कृति की रक्षा करना था। गुप्त जी ने 'नन्ददास' की रचनाएँ बचपन में सुनी थीं। भूमिका में गुप्त जी ने लिखा है- ''बहुत सी कविताएँ इसी प्रकार बड़े-बूढ़ों के मुखस्थ थीं उनमें से जो लिखी गई वह बच गई, जो नहीं लिखी गई वो लुप्त हो गई। बहुत सी ऐसी कविताएँ अब भी हैं जो लुप्त हो सकती हैं। अब हिन्दुओं का वह समय भी नहीं है जो उनके बड़े-बूढ़े सवेरे उठकर भगवान का नाम लिया करते थे और भगवदगुणावाद सम्बन्धी कविताएँ पढ़ा करते थे।

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.159

इसमें आजकल के समय में जो कुछ लिखा जाये और छप जाए उसी के रक्षित होने की आशा करनी चाहिए।''[1]

दूसरी रचना 'भंवरगीत' भी नन्ददास की लिखी हुई ब्रजभाषा की कविता है। नन्ददास का लिखा हुआ भंवरगीत बहुत ही प्रसिद्ध रहा था। इस रचना के बारे में गुप्त जी ने लिखा था कि इसे प्राप्त करने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। यह गुप्त जी के पुत्र नवलकिशोर के प्रेस के 'सूरसागर' में दिखाई पड़ती है।

ऐसी रचनाओं के संकलन के बारे में गुप्त जी कितना चिन्तित थे, उनके कथनानुसारः- ''यह दोनों कविताएँ ब्रजभाषा की ऊँचे दरजे की कविता के नमूने हैं। अष्टछाप के कवि नन्ददास बहुत ऊँचे दरजे के कवि थे और उन्हीं के समय में ब्रजभाषा की सबसे अधिक उन्नति हुई थी और उक्त भाषा खूब मंझी और स्वच्छ हुई थी। पर इस देश में हीरे-कंकड़ का एक मोल है। यहाँ इतनी कविताएँ रद्दी में पड़ी फिरती थीं, कोई इनकी ओर ध्यान तक नहीं देता था। आशा की जाती है कि आगे यह दशा न रहेगी।''[2]

'सर्पाघात चिकित्सा' नाम की पुस्तक भी 'बालमुकुंद गुप्त' द्वारा संपादित की गई है। इस पुस्तक पर 'उचितवक्ता सम्पादक' 'दुर्गाप्रसाद मिश्र' का नाम लिखा हुआ था। परन्तु भूमिका को पढ़ने से उलझन दूर होती है। 'शिशिर कुमार घोष' की पुस्तक 'सर्पाघात प्रतिकार' का अनुवाद पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र के हाथों से होना था परन्तु 'दुर्गाप्रसाद मिश्र' के बीमार होने से इस पुस्तक को 'बालमुकुंद गुप्त' ने संपादित किया। यह पुस्तक 'गुप्त जी' के कार्यालय से ही छपी थी, इसलिए गुप्त जी ने

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-6, रास पंचाध्यायी एवं भंवरगीत, (संकलनकर्त्ता- बालमुकुन्द गुप्त) हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.17 (भूमिका से)

2 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-6, रास पंचाध्यायी एवं भंवरगीत, (संकलनकर्त्ता- बालमुकुन्द गुप्त) हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.16-17 (भूमिका से)

शिष्टाचार वश अपना नाम हटा लिया होगा। पर यह पुस्तक गुप्त जी द्वारा ही संपादित हुई है अनुवाद चाहे दुर्गाप्रसाद मिश्र ने किया हो।

इस पुस्तक में साँप के काटने से पहले और बाद की चिकित्सा दी गई है। साँपों की प्रजातियाँ विषैले साँपों की जानकारी, उनके स्वभाव, गुण, रंग आदि के बारे में बताया जाता है। इसमें पन्द्रह अध्याय हैं। क्रम से सभी साँपों के बारे में विस्तार से बताया गया है। अन्त में लेखक ने अपने अनुभव भी साँझे किये हैं कि कैसे मालवैद्य के साथ साँप को पकड़ने का अहसास कैसा रहा? उस समय में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव था। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह पुस्तक साँप के काटने पर बहुत उपयोगी सिद्ध हुई होगी। जानकारी के अभाव में रोग का सही इलाज नहीं हो पाता, परन्तु इस पुस्तक में साँपों से संबंधित सभी जानकारियाँ देने का प्रयास किया गया है।

गुप्त जी द्वारा संपादित और अनूदित पुस्तकें अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। उनकी मौलिक रचनाओं के साथ-साथ इनका भी विशेष महत्त्व है।

उपसंहार

उन्नसवीं सदी के आरंभिक दौर में ही भारत में अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति पैर पसारने लगी थी। धीरे-धीरे इस सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से भारतीय सभ्यता, संस्कृति में परिवर्तन होने लगे। यूरोपीय 'रिनेसॉ' की तर्ज पर इसे 'नवजागरण' का नाम दिया गया। नवजागरण की इस धारा ने सभी क्षेत्रों पर प्रभाव डाला। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। हिन्दी साहित्य में भी ऐसा दौर आया जब नई विधाएं, नई विचारधारा और नए दृष्टिकोण ने जन्म लिया। इन सब पर प्रभाव था राष्ट्रीय चेतना का, जिसने राष्ट्रवाद की बुनियाद डाली थी। अन्य प्रदेशों अथवा क्षेत्रों में जहाँ नवजागरण एक विशेष क्षेत्र में दिखाई पड़ता है, वहीं हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण उसके साहित्य में दिखाई देता है। 1857 के विद्रोह के पश्चात नवजागरण में उत्कर्ष आता है। बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और हिन्दी प्रदेश में भी परिवर्तन के स्वर साहित्य के माध्यम से सुनाई पड़ते हैं। भारतीय नवजागरण की प्रकृति और अंतर्वस्तु में अंतर आया। हिन्दी नवजागरण की संकल्पना को स्थापित करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को जाता है। उससे पहले भारतीय नवजागरण के सन्दर्भ में सिर्फ बंगला नवजागरण की चर्चा की जाती थी। भक्ति आंदोलन से लोकजागरण का आरंभ हो जाता है। राजनीतिक आंदोलन 1857 और उससे भी पहले आरंभ हो चुके थे। 19वीं सदी के नवजागरण का उदय राजनीतिक पराधीनता की छत्र-छाया में हुआ। उस समय की रचनाओं में राजभक्ति के साथ-साथ राष्ट्रभक्ति भी पाई जाती है। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की नींव डालने वाले भारतेन्दु और उसके साथियों ने नवजागरण की धारा को आगे बढ़ाया। राजनीतिक जागरण के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागृति लाने का कार्य भी भारतेन्दु मंडल के रचनाकारों ने किया। साहित्य में एक नए युग का आरंभ होता है। इस नए युग की चेतना को बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुंद गुप्त जैसे रचनाकारों के सृजन ने गति दी। इसी चेतना का विस्तारित रूप महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग के रचनाकारों

की रचनाओं में पाया जाता है। बालमुकुंद गुप्त का रचनाकार्य दोनों युग में विशेष महत्व का है। दोनों युगों में गुप्त जी ने कार्य किया और उनकी रचनाओं का आकलन एक नया द्वष्टिबोध देता है।

प्रथम अध्याय **'हिन्दी नवजागरण की अवधारणा'** के निष्कर्ष स्वरूप नवजागरण के अर्थ, व्युत्पत्ति और परिभाषा का सामंजस्य मिलता है। प्रायः नवजागरण की अवधारणा को यूरोपीय रिनेसां से उद्भूत माना जाता है, परंतु यदि भारतीय सन्दर्भ में यदि देखें तो इसकी अंतर्वस्तु यूरोपीय रिनेसां से भिन्न है। जहाँ यूरोप में यह एक सभ्यता का पुनर्जन्म था वहीं भारत में आदिकाल से चली आ रही परम्परा का विकास था। भारतीय नवजागरण का विकास विदेशी शासन के अन्तर्गत हुआ जबकि यूरोप में ऐसा कुछ भी नहीं था। भारतीय नवजागरण में एक जातीय संस्कृति का भाव दिखाई पड़ता है। नवजागरण का एक चरण लोकजागरण भी रहा है। भक्तिकाल को लोकजागरण डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है। सामान्य लोक से संबंधित होने के कारण इस जागरण में शूद्र, स्त्री, किसान, कारीगर और सभी धर्मों के लोग बड़े पैमाने पर भाग लेते है। विद्यापति, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, रैदास आदि संतों ने जनभाषाओं में पदों की रचना की। भक्ति आंदोलन सम्पूर्ण भारत में व्याप्त था, इसीलिए इसे नवजागरण का मुख्य चरण माना गया था। यह सांस्कृतिक आंदोलन था। नवजागरण की धारा में कुछ कारकों की मुख्य भूमिका रही है जैसे :- अंग्रेजों का आगमन, ईसाई मिश्नरियों का आगमन, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनुवाद कार्य, सुधारवादी आंदोलन 1857 का विद्रोह, मुस्लिम नवजागरण आदि। 1857 के विद्रोह के पश्चात भारतीय नवजागरण ने दिशा परिवर्तित कर ली थी। 1857 से पहले भी कुछ विद्रोह हुए थे परन्तु उनका राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य नहीं बन पाया था।

हिन्दी नवजागरण को भी 1857 के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। हिन्दी साहित्य में 1857 के विद्रोह के पश्चात साम्राज्यवादी विरोधी चेतना उभर कर आती है। आधुनिक गद्य के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीयता की धारा का भी विकास होता है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने हिन्दी नवजागरण के चार चरण माने है। 1857 का विद्रोह, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और निराला का लेखन और उसके बाद का साहित्य। 1857 की क्रान्ति का संबंध भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग से भी है। 1857 की क्रान्ति का संबंध भारतेन्दु युग और हिन्दी जाति से भी है क्योंकि डॉ. शर्मा ने तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इस प्रदेश की क्रियाशीलता अन्य प्रदेशों से अधिक थी। इसलिए इस प्रदेश के साहित्य पर भी नवजागरण की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

दूसरा अध्याय **'हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु युग'** में हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु युग में संबंध दिखाया गया है। नवजागरण के प्रेरक तत्वों में प्रेस की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण रही है। हिन्दी नवजागरण के विकास में भी प्रेस के साधनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रेस के द्वारा ही हिन्दी भाषा का विकसित रूप हमारे सामने है। परन्तु आरंभ में हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। प्रेस की स्थापना से पत्रकारिता का विकास आरंभ हुआ। प्रेस स्थापित करने का प्रयास पुर्तगालियों की तरफ से किए गए। ईसाईयों ने भी अपने धार्मिक ग्रन्थ मुद्रित करने के लिए प्रेस की स्थापना की गई थी। परन्तु धीरे-धीरे अन्य विषयों की सामग्री भी प्रकाशित होने लगी। 1780 से हिके गजट नामक अंग्रेजी अखबार से आरंभ हुआ नवजागरण का पहिया हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं की पत्रकारिता तक जा पहुँचता है। राष्ट्रीय नवजागरण के विराट अभियान में हिन्दी पत्रकारिता के संघर्ष की विशेष भूमिका रही है। राजाराम मोहनराय ने देशी भाषा की पत्रकारिता का श्रीगणेश किया, तो उंदत मार्तण्ड ने हिन्दी पत्रकारिता का पथ प्रकाशित किया। परन्तु नए शोधों के आए परिणाम से उंदत मार्तण्ड का प्रथम हिन्दी पत्र होना संशय में डालता है। 1826 से लेकर 1850 तक की पत्रकारिता की प्रगति मंद ही रही। इस काल की पत्रकारिता का मुख्य प्रयोजन अथवा विशिष्ट उद्देश्य नहीं था। परन्तु 1857 के विद्रोह के पश्चात हिन्दी और देशी भाषाओं की पत्रकारिता एक विशेष प्रयोजन को लेकर चल पड़ी थी। इस काल में पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में

निरंतर वृद्धि होती चली गई। इन पत्रिकाओं ने आरंभ से ही राष्ट्रीय चेतना को अपनाया था। सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विषयों पर इस काल की पत्रिकाओं ने जमकर लिखा। इसी काल में द्विभाषी पत्रों का भी दौर आरंभ हो गया था, परन्तु अंग्रेजी सरकार की भेदभाव नीति के कारण हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता में अलगाव उत्पन्न हो गया था। अंग्रेजी सरकार उर्दू को बढ़ावा दे रही थी। फलस्वरूप लोगों का झुकाव हिन्दी की तरफ बढ़ने लगा। हिन्दी पत्रकारिता के प्रसार-प्रचार के साथ-साथ ही नए पाठक वर्ग और हिन्दी समाज का निर्माण होने लगा था। इस काल के समर्पित लेखकों जो कि पत्रकार और पत्र संपादक भी थे विभिन्न कठिनाईयों का सामना करके भी हिन्दी को जीवित रखा। आर्थिक कठिनाईयां, प्रेस एक्ट का भय, अशिक्षित जनता, हिन्दी की तरफ से रूझान कम होना, अंग्रेजों की भेदभाव नीति के कारण उर्दू को बढ़ावा जैसे बाधाओं से भी हार न मान कर हिन्दी के संघर्ष किया। यह कार्य भारतेन्दु और उसके सहयोगियों ने किया। साहित्यिक विधाओं के नवीनीकरण के साथ विचारों का भी नवीनीकरण साहित्य के माध्यम से किया।

तीसरा अध्याय **'बालमुकुंद गुप्तः व्यक्तित्व और प्रतिरोध का स्वर'** है। इस अध्याय में बालमुकुंद गुप्त का जीवन परिचय कृत्तित्व और भारतमित्र के माध्यम से गुप्त जी द्वारा किए गए कार्यों का महत्त्व दिखाया गया है। उर्दू पत्रकारिता से अपना जीवन आरंभ करने वाले बालमुकुंद गुप्तः हिन्दी पत्रकारिता में अपनी पैठ बनाते हैं। अखबारे चुनार, कोहेनूर जैसे नामी पत्रों के संपादक रहे गुप्त जी हिन्दोस्थान, हिन्दी बंगवासी और भारतमित्र में संपादक कार्य करते थे। भारतमित्र के माध्यम से उन्होंने जो कार्य वह आज भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। शिवशंभु के चिट्ठों के द्वारा जो राजनीतिक जागृति लाने का प्रयास किया वह अंग्रेजी सरकार की साम्राज्यवाद विरोधी चेतना पर प्रहार करने वाला था। गुप्त जी ने बहुत रचनाएं 'हिन्दी बंगवासी' और 'हिन्दोस्थान' में लिखी थी। ये रचनाएं भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितने की 'शिवशंभु के चिट्ठे'। साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के कारण ही 'गुप्तजी' को हिन्दोस्थान के

मालिक 'राजा रामपाल सिंह' ने पत्र के संपादक मंडल से बाहर कर दिया था। भारतमित्र में छपे 'शिवशंभु के चिट्ठे' युग की जातीय भावना को परिलक्षित करते हैं। लार्ज कर्जन को व्यंग्य बनाकर लिखे गए ये चिट्ठे गुप्त जी के स्वदेश प्रेम, स्वाभिमान, साम्राज्यवाद विरोधी चेतना, भारतीय समाज का स्वाभाविक चित्रण करने की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हैं। 'भारतमित्र' में लिखे गए साहित्य की विषय चाहे राजनीतिक हो, सामाजिक हो अथवा आर्थिक हो सभी में एक ही भाव के दर्शन होते हैं, वह था 'मानव कल्याण'। गुप्त जी की रचनाओं में चाहे वह कविता हो, निबंध हो, आलोचना हो या फिर जीवन चरित्र सभी में भारतीय मानस का दुख प्रतिबिंबित होता है। एक मुख्य कार्य भारतमित्र के माध्यम से गुप्तजी ने किया वह था हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के समर्थन में लिखे तर्कपूर्ण लेख। अंग्रेजों की फूट डालो नीति के कारण उर्दू को बढ़ावा मिल रहा था परन्तु समर्पित और जुझारू हिन्दी लेखकों द्वारा चलाए गए आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप सन् 1900 में हिन्दी को कानूनी मान्यता मिल गई थी। उर्दू वालों को लगा जैसे उनके साथ अन्याय हो गया हो। ऐसे में गुप्तजी ने उर्दू और मुसलमानों का विरोध नहीं करते हुए भी बहुत से लेखों और निबंधों के द्वारा हिन्दी की जातीय भावना को अभिव्यक्ति दी।

गुप्त जी का रचनाकाल दो युगों का प्रतिनिधित्व करता है। जब गुप्त जी के लेखन का चरमोत्षर्क था, तब महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखना ही आरंभ किया था। गुप्त जी और द्विवेदी जी के मध्य हुआ 'अनस्थिरता विवाद' उन दिनों चर्चा में रहा। इस विवाद में बहुत से विद्वानों ने भाग लिया। कुछ द्विवेदी जी के समर्थक थे तो कुछ गुप्त जी के।

चतुर्थ अध्याय **'हिन्दी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान'** है। इस अध्याय में हिन्दी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त के साहित्य की भूमिका के महत्व को रेखांकित किया गया है। गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना बलवती थी। इसी कारण से उनके साहित्य में हमें स्वाधीनता की चेतना और अंग्रेजी राज का विरोध दोनों ही मिलते हैं।

शिवशंभु के चिट्ठे के साथ-साथ उनकी अन्य रचनाओं में भी जैसे निबंधों, लेखों और कविताओं के माध्यम से हमें उनकी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के दर्शन हो जाते हैं। भारतमित्र में लिखे राजनीतिक लेखों के कारण ही गुप्त जी उस समय के शीर्ष पत्रकारों की श्रेणी में थे। बंग-भंग के विरोध में गुप्त जी ने बहुत सी रचनाएं लिखी। इसके साथ-साथ स्वदेशी आंदोलन को समर्थन देने के लिए सम्पूर्ण निष्ठा से प्रयास किया। तत्कालीन समय में जेल जाने वाले सेनानियों पर उन्होंने गर्व करते हुए जेल को कृष्ण मन्दिर के समान पावन माना था। प्रत्येक राष्ट्रविरोधी तत्व पर उन्होंने प्रहार किया। राजभक्तों का विरोध और राष्ट्रभक्तों को खुलेआम समर्थन देना उनकी प्रबल राष्ट्रीयता का प्रमाण रहा है। ये सभी कार्य उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया जो कि हिन्दी में लिखी हुई थी। हिन्दी साहित्य का नवजागरण का स्वरूप उसकी इसी बदलती विचारधारा से निर्धारित होता है। जो भारतेन्दु ने आधुनिक गद्य के साथ आरंभ की थी और आगे चलकर द्विवेदी युग में उसकी भाषिक संरचना में परिवर्तन आता है। गुप्त जी रचनाओं का प्राणतत्व तो भारतेन्दु युगीन है, परन्तु शरीर (भाषयी संरचना) द्विवेदी युगीन। गुप्त जी ने भाषा के शुद्ध और व्यवस्थित रूप की तरफ ध्यान देकर उसमें प्रवाह बनाए रखा। उनकी भाषा में व्यंग्य और हास्य का मिश्रण पाया जाता है। इनके व्यंग्य बेधने वाले होते थे। नागरी लिपि की हिमायत में तथा उसे सम्पूर्ण राष्ट्र की लिपि बनाने के लिए उन्होंने अथक प्रयास किए। भाषा संबंधी दोषों को दूर करने के लिए ही द्विवेदी से अनस्थिरता संबंधी विवाद में उलझ पड़े थे।

गुप्त जी की आलोचनाओं की चर्चा प्रायः कम ही की जाती है। भारतेन्दु युग के दो आलोचकों में बालकृष्ण भट्ट और प्रेमधन का ही नाम लिया जाता है। परन्तु शोध के अन्तर्गत आलोचना के क्षेत्र में गुप्त जी का नाम भी आया है। गुप्त जी की कुछ आलोचनाएं प्राप्त हो पाई है जिनका विवरण इस अध्याय में है। तारा, अश्रुमती, अधलिखा फूल, तुलसी सुधाकर आदि की गुप्त जी ने आलोचना की है। इनकी आलोचनाओं में बहुत सी कमियां रह गई है, परन्तु इन्होंने आलोचना तटस्थ भाव से

की थी। नए लेखकों को प्रोत्साहित करना और नकलचियों को फटकार लगाने में उन्होंने देर नहीं लगाई। महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ हुए विवाद में,शेष विवाद में भी ये आरंभ से अंत तक तटस्थ रहे। हिन्दी भाषा की आलोचना के मार्ग को प्रशस्त करने में जो कार्य उन्होंने किया वह तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए आलोचना का मार्ग प्रशस्त करने में बहुत ही उल्लेखनीय है।

पंचत अध्याय **'बालमुकुन्द गुप्त की कविताई और अन्य लेखन'** गुप्त जी की सम्पूर्ण रचनाओं का जो आज उपलब्ध है उनका मूल्यांकन करता है। गुप्तजी स्वयं अपनी रचनाओं को तुकबन्दियां कहा करते थे। इनकी कविताओं में सभी भाषाओं केशब्द पाए जाते थे। कविता का मूल भाव राष्ट्रीय है, परन्तु शब्दगत सौन्दर्य नहीं। कुछ प्रसिद्ध लोकगीतों जैसे टेसू और जोगीड़ा आदि में इन्होंने बहुत से पद लिखे है। इनकी कविताओं में मुख्यतः समाज की विषमता, गरीबी, शोषण, अकाल, पाश्चात्य सभ्यता पर कटाक्ष, गुरू-शिष्य परम्परा पर व्यंग्य आदि विषय मिलते हैं। धार्मिक भावना और देवी-देवताओं की स्तुतिपरक रचनाओं में भी भारत की दीन-हीन प्रजा का भावपूर्वक वर्णन किया है। कुछ रूपगत नवीन प्रयोग भी किए है, परन्तु विषयवस्तु में एक ही भाव वह थी 'राष्ट्रीयता'। कुछ हास्य एवं व्यंग्य की कविताओं की भी रचना की है। एक नवीन विषय जो इन्होंने अपनाया था वह था बाल-शिक्षा के साथ-साथ मनोरंजन। बच्चों के मनोरंजन के लिए इन्होंने बहुत सी कविताएं तो लिखी ही थी साथ-साथ उनकी शिक्षा के लिए 'खिलौना' और 'खेल-तमाशा' नामक पुस्तकें भी लिखी थी। ये पुस्तकें गुप्त जी की दूरदर्शिता की देन थी क्योंकि उस समय में बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकें बनाना आसान कार्य नहीं था। कार्टून फिल्म और पुस्तकें उस युग से कई दशकों आगे थी। गुप्त जी की संपादित अनूदित रचनाओं में कई पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पाई। हिन्दी भाषा, उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, रत्नावली नाटिका, हरिदास, साधु रामस्वरूप सीहा, सर्पाधात चिकित्सा आदि पुस्तकें अपना विशिष्ट महत्व रखती है। उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास आज भी अपना ऐतिहासिक महत्त्व

रखती है। इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए बहुत से हिन्दी-उर्दू लेखकों और विदेशी चितंको के जीवन-चरित लिखे है। अकबर, टोडरमल, शाइस्ताखां जैसे बादशाओं का चरित्र चित्रण भी इनके निष्पक्ष राजनीतिक चेतना को दर्शाता है।

पुस्तकानुक्रमणिका

आधार ग्रंथ

1. (सं.) नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008
2. (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013
3. (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013
4. (सं.) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-4, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013
5. (सं.) के.सी. यादव, (लेखक) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-1, हिन्दी भाषा, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
6. (सं.) के.सी. यादव, (लेखक) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-2, शिवशंभु के चिट्ठे, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
7. (सं.) के.सी. यादव, (लेखक) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-3, चिट्ठे और खत, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
8. (सं.) के.सी. यादव, (अनुवादकर्त्ता) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-4, रत्नावली नाटिका, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012

9. (सं.) के.सी. यादव, (लेखक) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-5, हरिदास, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
10. (सं.) के.सी. यादव, (संकलनकर्त्ता) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-6, रास पंचाध्यायी एवं भंवरगीत, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
11. (सं.) के.सी. यादव, (संकलनकर्त्ता) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-7, सर्पाघात चिकित्सा, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
12. (सं.) के.सी. यादव, (लेखक) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-8, खिलौना, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
13. (सं.) के.सी. यादव, (लेखक) बालमुकुंद गुप्त, गुप्त ग्रंथमाला-9, खेल-तमाशा, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, 76, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012
14. (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुंद गुप्तः संकलित निबंध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014
15. (सं.) निर्मला जैन, रेखा सेठी, निबंधों की दुनियाः बालमुकुंद गुप्त, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009
16. (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2005
17. (सं.) ओंकार शरद, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ चिट्ठे और खत, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981

18. (अनुवादक) मदन गोपाल, भारतीय साहित्य के निर्माता, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1990

19. (सं.) बृजकिशोर वशिष्ठ, हिंदी-उर्दू समाचार पत्रों का इतिहास, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

20. (सं.) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबंधावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994

सहायक ग्रंथ सूची

1. डॉ. रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
2. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
3. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1975
4. डॉ. रामविलास शर्मा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, 2010, नई दिल्ली
5. डॉ. रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
6. डॉ. रामविलास शर्मा, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिंदी माध्यम, कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 1996
7. डॉ. रामविलास शर्मा, स्वाधीनता संग्रामः बदलते परिप्रेक्ष्य, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2003
8. (सं.) डॉ. रामविलास शर्मा, लोकजागरण और हिन्दी साहित्य (रामचन्द्र शुक्ल) वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
9. डॉ. प्रदीप सक्सेना, 1857 और भारतीय नवजागरण, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 1996
10. डॉ. नामवर सिंह, हिंदी का गद्य पर्व, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
11. डॉ. नामवर सिंह, आलोचक के मुख से, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
12. कर्मेन्दु शिशिर, हिंदी नवजागरण और जातीय गद्य परम्परा, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2008
13. कर्मेन्दु शिशिर, नवजागरण और संस्कृति, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2000

14. कर्मेन्दु शिशिर, हिंदी नवजागरण और राधाचरण गोस्वामी, स्वराज प्रकाशन, पंचकूला, 2013
15. मैनेजर पाण्डेय, साहित्य और इतिहास दृष्टि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
16. (सं.) शंभुनाथ, दूसरे नवजागरण की ओर, ज्ञान भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993
17. (सं.) शंभुनाथ, 1857, नवजागरण और भारतीय भाषाएँ, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 2008
18. शंभुनाथ, भारतीय अस्मिता और हिंदी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
19. वीर भारत तलवार, रस्साकशी, सारांश प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2012
20. पार्थ सारथि गुप्ता, आधुनिक पश्चिम का उदय, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2001
21. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2011
22. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्यः उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
23. रमेश कुमार, नवजागरण और हिंदी आलोचना, नेहा प्रकाशन, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2012
24. वैभव सिंह, इतिहास और राष्ट्रवाद, आधार प्रकाशन, पंचकूला, 2000
25. महेन्द्र राजा जैन, नामवर विचार कोश, नयी किताब प्रकाशन, नवीन शाहदरा, दिल्ली, 2012
26. डॉ. मीरा रानी बल, राष्ट्रीय नवजागरण और हिंदी पत्रकारिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
27. डॉ. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिंदी पत्रकारिता (जातीय चेतना और खडी बोली साहित्य की निर्माण भूमि) भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1985

28. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2005

29. चलपत्ति राव (अनुवादक, वासुदेव) समाचार पत्र राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 1977

30. जी.एस. भार्गव (अनुवादक अनंगपाल सिंह) भारत में प्रेसः एक सिंहावलोकन नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2011

31. डॉ. रमेश कुमार जैन, हिंदी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 1987

32. हर प्रकाश गौड़, सरस्वती और राष्ट्रीय जागरण, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1973

33. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, हिंदी पत्रकारिता का इतिहास, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2011

34. (सं.) वेदप्रताप वैदिक, हिंदी पत्रकारिताः विविध आयाम, भाग-1, हिंदी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, 2006

35. (सं.) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालकुमुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965

36. (सं.) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुंद गुप्तः स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशक समिति, कलकत्ता, 1950

37. डॉ. राजेन्द्र सिंह, बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का निबंध साहित्य, कवि सभा, दिल्ली, शाहदरा, 1996

38. (सं.) सत्यप्रकाश मिश्र, भारतेंदु के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002

39. (सं.) रामनिरंजन परिमलेंदु, भारतीय साहित्य के निर्माताः प्रेमघन, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2014

40. (सं.) भारत यायावर, महावीर प्रसार द्विवेदीः रचना संचयन, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
41. (सं.) भारत यायावर, हिन्दी की अनस्थिरताः एक ऐतिहासिक बहस, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993
42. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्यः उद्‌भव और विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
43. डॉ. नगेन्द्र, भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 2009
44. (सं.) डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिसिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2011
45. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
46. डॉ. भोलानाथ तिवारी, हिंदी भाषा का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
47. डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय खंड, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
48. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010
49. डॉ. बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2012
50. (सं.) भोलानाथ तिवारी, बृहत्त हिंदी लोकोक्ति कोश किताबघर, प्रकाशन, 2007
51. (सं.) डॉ. सुरेश गौतम, वीणा गौतम, भारतीय साहित्य कोश, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

52. डॉ. रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 2010

53. (सं.) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2010

54. (सं.) डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल, डॉ. मीना अग्रवाल, शोध संदर्भ, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर (यू.पी.) 2006

55. (सं.) डॉ. दुर्गादास काशीनाथ संत (अनुवाद)डॉ. सुधाकर गोकाककर, डॉ.गो.रा. कुलकर्णी, वाणी प्रकाशन, 2009

56. डॉ. राजवंश सहाय हीरा, भारतीय आलोचना शास्त्र बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2003

57. (सं.) हरिवंशराय शर्मा, राजपाल बृहत् सुभाषित कोश राजपाल प्रकाशन, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2012

58. डॉ. अमरनाथ, हिंदी भाषा की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012

पत्रिकाएँ

1. आजकल, (सं.) सीमा ओझा, आजकलः प्रकाशन विभाग, लोधी रोड़ नई दिल्ली, अंक-5, सितम्बर, 2012
2. समकालीन भारतीय साहित्य, (अतिथि संपादक) रणजीत साहा, रामविलास शर्मा, जन्मशती विशेषांक, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, अंक-167, मई-जून, 2013,
3. उद्‌भावना, (अतिथि संपादक), प्रदीप सक्सेना, अंक-104, रामविलास शर्मा, महाविशेषांक, दिसम्बर, 2012
4. कथादेश, (संपादक) हरिनारायण, सहयात्रा प्रकाशन प्रा0 लि0, जून 2012
5. बाबू जी का भारतमित्र, (संपादक) रघुविन्द्र यादव, बाबू बालमुकुन्द गुप्त पत्रकारिता एवं साहित्य संरक्षण परिषद्‌, रेवाड़ी (हरियाणा) सितम्बर 2004
6. बाबू जी का भारतमित्र, (संपादक) रघुविन्द्र यादव, बाबू बालमुकुन्द गुप्त पत्रकारिता एवं साहित्य संरक्षण परिषद्‌, रेवाड़ी (हरियाणा), अंक-1, सितम्बर 2005
7. हरिगन्धा (संपादक) देश निर्मोही, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, अंक-169, सितम्बर, 2008